आज के उर्दू शायर और उनकी शायरी

सम्पादक
प्रकाश पंडित

जपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
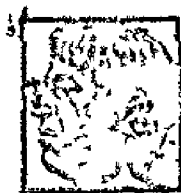
मूल्य : आठ रुपये (८·००)
प्रथम संस्करण : मई, १९५८
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

क्रम

भूमिका

हिन्दी काव्य की तरह उर्दू शायरी का नवीन काल भी १८५७ ई० की क्रांति के बाद शुरु होता है। इससे पूर्व की सो वर्षीय उर्दू शायरी (अपवादों को छोड़ कर) बादशाहो के कसीदों (प्रशंसात्मक काव्य), सूफ़ियाना और इश्क़िया गजलों तक ही सीमित थी। मानसिक विलासप्रियता, नैराश्य, पलायन, व्यक्तिवाद, आध्यात्मिकता, अवसन्नता इत्यादि प्रवृत्तियो को विभिन्न 'रदीफ़ों' और 'क़ाफ़ियों' में व्यक्त करने और शाब्दिक बाज़ीगरी दिखाने को ही (जिसे 'नाज़ुक-ख़्याली' कहा जाता था) काव्य की पराकाष्ठा माना जाता था। ऐसा होना एक रूप से अनिवार्य भी था क्योंकि जब तक शांत तथा स्थिर सामाजिक जीवन में भौतिक तथा चिंतनात्मक परिवर्तन उत्पन्न न हों, साहित्य तथा काव्य के लिए भी, जो जीवन का प्रतीक होता है, नये मार्ग नहीं खुलते। ऐसे परिवर्तनों के लिए किसी बड़ी सामाजिक तथा राजनैतिक क्रान्ति की आवश्यकता होती है जो १८५७ ई० से पूर्व भारत के दीर्घ जागीरदारी-काल में कहीं नजर नहीं आती। परिस्थितियों में परिवर्तन अवश्य हुए। राज्य बदलते रहे, खून की नदियां भी बहीं किन्तु इन समस्त बातों का सामूहिक सामाजिक जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। यह जहाँ था, वहीं रहा। ऐसी स्थिति मे जब कि देश का सामाजिक जीवन शताब्दियों तक एक विशेष वातावरण मे सीमित और एक विशेष डगर पर चुपचाप चलता रहा हो, साहित्य तथा काव्य में अपेक्षित उत्थान की तलाश व्यर्थ होगी। प्राचीन उर्दू शायरों को यदि काल्पनिक 'माशूक़' की जुल्फों से डसे जाने और सीने पर नजरों के तीर खाने से फ़ुर्सत न मिली तो उसमे उनका उतना दोष नहीं जितना उस काल की व्यवस्था का था।

वह व्यवस्था ही ऐसी थी जो शायर को जीवन की मूल समस्याओं के प्रति विमुख हो 'जाम और सबू' में डूबने, मस्त-अलस्त रहने या अधिक से अधिक 'खुदा से लौ लगाने' की प्रेरणा करती थी। अतएव वे शायर जो राजदरबारों से सम्बंधित थे वे :

गर यार मय पिलाये, तो फिर क्यों न पीजिये
जाहिद नहीं, मैं शेख नही, कुछ वली नहीं
(इन्शा)

की रट लगाते रहे और जिनकी पहुँच दरबारों तक न हो सकी थी, आर्थिक दरिद्रता ने उन्हें निराशावादी बना दिया और जीवन उनके समीप 'रात को रो रो सुबह करने' और 'दिन को ज्यों त्यों शाम करने' का विषय बन गया और यह सिलसिला इतनी दूर चला, इतना शक्तिशाली हो गया कि अठारहवीं शताब्दी के मध्य में जब 'नज़ीर' अकबराबादी ने शायरी की इन प्राचीन परम्पराओं के विरुद्ध व्यक्तिगत विद्रोह किया, शायरी को रुबावों की विलासतापूर्ण महफिलों और नीद की पेंग में निमग्न शायरो की पकड़ से निकाल कर बीच चौराहे में खड़ा करने का प्रयत्न किया और :

टुक हिरस-ओ-हवा[1] को छोड़ मियाँ, मत देस विदेस फिरे मारा
कज्ज़ाक़[2] अजल को लूटे हैं, दिन रात बजाकर नक्क़ारा
क्या बधिया, भैंसा, बैल, शुतर, क्या गउएं पल्ला सर भारा
क्या गेहूँ, चावल, मोठ, मटर, क्या आग, धुआं और अंगारा
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा

ऐसे शेर कहकर मनुष्य और उसकी सामाजिकता को काव्य-विषय बनाया तो लकीर के फ़क़ीरों ने उन्हें बाज़ारू और घटिया शायर कहकर नज़र-अंदाज़ कर दिया। यहाँ तक कि उन्नीसवी शताब्दी के प्रारंभ में जब 'गालिब' ने गज़ल के तंग दामन को फैलाने और उसमें दार्शनिकता समोने का प्रयत्न किया तो उन्हीं सज्जनों ने उन पर 'मोहमलगो' (अर्थहीन शेर कहने वाला) होने का आरोप लगाया और उसके चौथाई शताब्दी बाद तक :

---

१. लोलुपता २. डाकू

रुख़-ए-रोशन के आगे शमा रखकर वो यह कहते हैं
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है

(दाग़)

—ऐसे काव्य को ही महान काव्य का स्थान देते रहे।

१८५७ की असफल क्रांति के बाद भारत की राजनीति मे असाधारण और मौलिक परिवर्तन हुआ। शताब्दियो की जागीरदारी व्यवस्था पतनशील हुई और उसके स्थान पर पश्चिम से आई हुई औद्योगिक तथा व्यापारिक व्यवस्था उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। सामान्य राजनैतिक तथा आर्थिक परिवर्तनों से सामाजिक जीवन तथा मानव विचारो म भी परिवर्तन होने लगे। जीवन की जर्जर परम्पराओ पर कुठाराघात हुआ, नये रूप से वर्गीकरण हुआ और मध्यम वर्ग के लोगो ने पश्चिमी विद्या-विज्ञान को अपनाना शुरू किया। प्रत्यक्ष है इस सार्वभौम परिवर्तन का प्रभाव साहित्य पर होना भी अनिवार्य था। इसी सामाजिक परिवर्तन ने कुछ ऐसे व्यक्तियो को भी जन्म दिया जो चैतन्य रूप से साहित्य तथा काव्य को बदलती हुई परिस्थितियो के साथ-साथ चलाना चाहते थे। जिन महान् लेखको और कवियो ने उस समय परिवर्तनशील परिस्थितियो को स्वीकार किया और आगे बढ़ते हुए जीवन का साथ दिया उनमे सर सय्यद, हाली, आज़ाद और शिबली के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। १८६७ मे 'आज़ाद' ने पहलेपहल उर्दू शायरी को 'नज़्म' नामक काव्य-रूप से परिचित कराया और लाहौर मे कर्नल हालरायड (डायरेक्टर, शिक्षा विभाग, पजाब) की सहायता से ऐसे मुशायरो की नींव रखी जिनमे शायर को ग़ज़ल का 'तरह मिसरा' देने की बजाय नज़्म के लिये कोई उपयोगी विषय दिया जाता था। स्वय आज़ाद ने प्राकृतिक दृश्यों पर बहुत-सी कविताएँ लिखी। उनके सम्मुख दो मौलिक सिद्धान्त थे; एक तो काव्य-विषय का अनुक्रम और दूसरे हुस्न व इश्क़' की तग गली से निकलकर अन्य सांसारिक विषयो का प्रयोग। परन्तु 'आज़ाद' का काम अधूरा रहता यदि इस आदोलन का नेतृत्व 'हाली' अपने हाथ मे न लेते। 'हाली' साहित्य द्वारा एक उद्देश्य सिद्ध करना चाहते थे और उन्होंने नि सन्देह उससे बहुत महत्वपूर्ण तथा महान उद्देश्य सिद्ध किया। 'मुसद्दस' द्वारा जैसी कल्याणकारी नज़्म लिखकर उन्होंने प्राचीन शायरी के रूप-रग को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी बदल

डाला और फिर 'मुक़द्दमा शेर-ओ-शायरी' जैसा महान् आलोचना-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर तो रही-सही कसर पूरी कर दी। शायरी को दैवी संकेत और शायर को अमानवीय व्यक्ति कहकर प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हो रहने वाले लोगों को पहली बार ऐसी तर्कपूर्ण बातों से चौंकाया कि :

> "क़ायदा है कि जिस क़दर सोसाइटी के ख्यालात, उसकी रायें, उसकी आदतें, उसकी रग़बतें (रुचियां), उसका मेलान (प्रवृत्ति) और मज़ाक़ बदलता है, उसी कदर शेर की हालत बदलती रहती है और यह तब्दीली बिल्कुल बेमालूम होती है क्योंकि सोसाइटी की हालत देखकर शायर क़सदन अपना रंग नहीं बदलता बल्कि सोसाइटी के साथ-साथ वह खुद भी बदलता है।"
>
> (मुक़द्दमा शेर-ओ-शायरी)

अधिक विस्तार में न जाकर 'हाली' के काम को समझने के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी-काव्य को रीतिकाल की दलदल से निकालकर उपयोगिता तथा राष्ट्रवाद की राह पर लगाया था, उसी प्रकार हाली ने उर्दू की कृत्रिम इश्क़िया शायरी की चूलें हिला दी और न केवल अपने काल के कवियों और साहित्यकारों का बल्कि आने वाली पीढ़ी का भी पथ-प्रदर्शन किया।

'हाली' के बाद उर्दू साहित्य में एक अंतरिम-काल आता है जिसमें पश्चिमी साहित्य से जानकारी बढ़ी। पश्चिम का काव्य साहित्य चूंकि अपने जागीरदारी काल की मंज़िलों से गुज़र कर बहुत आगे निकल चुका था इसलिए उससे प्रभावित होने वाले उर्दू कवियों ने काव्य विषय को विशाल करने के साथ-साथ उर्दू नज़्म को कलात्मक परिपक्वता भी प्रदान की। इस प्रसंग में अज़मत अल्लाह खां का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने शायरी में नये छंदों की आवश्यकता, अंग्रेज़ी काव्य-रूपों के प्रसार, भाषा में हिन्दी शब्दों तथा प्रक्रियाओं के समावेश से स्मृद्धि पैदा करने और विचार और भावों के प्राकृतिक प्रकटीकरण पर ज़ोर दिया और उर्दू शायरी में पहली बार ग़ज़ल के काल्पनिक 'माशूक़' को हाड़-मांस प्रदान कर उसके लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग किया† (इससे पूर्व 'माशूक़' के लिए पुल्लिंग इस्तेमाल होता था जिसे प्रत्यक्ष रूप से फ़ारसी से लिया

---

† इस प्रसंग में आगे चलकर अख़्तर शीरानी ने उर्दू शायरी के माशूक़ पर 'सलमा', 'अज़रा' आदि स्त्री नामों की अमिट मुहर लगा दी।

गया था)। लेकिन असमत अल्लाह खाँ की शायरी केवल इंद्रियां यथार्थवाद (जो अपने आप में बहुत बड़ा कारनामा थी)' तक सीमित रही। सामूहिक रूप से उर्दू शायरी को धरती से उठाकर आकाश तक पहुँचाने का सेहरा 'इकबाल' के सिर आता है।

इकबाल के साथ-साथ या कुछ पहले अकबर इलाहाबादी, चकबस्त, हसरत मोहानी, सरवर जहाँनाबादी, इस्माईल मेरठी इत्यादि अपने समय के उच्चकोटि के कवियों ने साहित्य और समाज तथा साहित्य और राजनीति के सम्बन्ध को काफी सुदृढ़ किया लेकिन उनमें से अधिकांश की कवितायें राजनैतिक नारों से आगे न बढ़ सकी। इकबाल की शायरी का प्रारंभ भी यद्यपि राजनैतिक नज़्मों से हुआ किन्तु अपने समकालीन शायरों की अपेक्षा उनका राजनैतिक बोध काफ़ी आगे था। उन्होंने भारतीय राजनीति के लगभग समस्त पहलुओं को अपनी शायरी में स्थान दिया लेकिन पर्याप्त चिंतन के बाद—इसी विशेषता ने उनमें गहराई उत्पन्न की और वे न केवल अपने युग के महान् कवि बने अपितु एक दार्शनिक भी। उन्होंने हिंदु-मुस्लिम एकता के गीत गाये, देश की मिट्टी का कण-कण उन्हें देवता नजर आया। देश में एक 'नये शिवालें' की नींव रखने के उन्हों ने मनसूबे बांधे, भारतवासियों की मौलिक समस्याओं पर गहरी दृष्टि डाली और श्रमजीवियों को जागरूक होने का संदेश दिया। १९१७ ई० में जब रूस में महान् क्रान्ति हुई और दुनिया के छठे भाग में श्रमिक वर्ग ने साम्राज्य और पूंजीवाद का तख्ता उलट दिया तो इकबाल ने इसे 'बतन-ए-गैबी' (जगत की ढोल) से 'आफ़ताब-ए-ताज़ा' (नवप्रभात) का नाम दिया और इसके साथ ही उस रोमांटिक क्रान्तिवाद की परिपाटी पड़ी जो 'जोश' मलीहाबादी के हाथों निखरती हुई आधुनिक काल के प्रगतिशील कवियों की सम्पत्ति और काव्य-विषय बनी। हाली और इकबाल के बिना आधुनिक उर्दू शायरी को आज की मंज़िल पर पहुँचने के लिए शायद बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती।

१८५७ ई० के बाद आधुनिक उर्दू शायरी देश तथा मानव-प्रेम और साम्राज्य-विरोध की मंज़िलें तय करती हुई जब प्रथम महायुद्ध के बाद नये क्रांतिकारी मोड़ पर पहुँची तो एक बार पुनः उसमे गतिरोध उत्पन्न हो गया। नई राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियाँ शायरों से कुछ ऐसी मांगें करने लगी जिन्हें स्वयं इकबाल भी पूरा न कर सके (और उन्होंने इस्लाम की दुनिया में जा शरण ली)। देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन इतना प्रबल

हो गया और किसानों के विद्रोह और मजदूरों के संगठन के भय से साम्राजी अत्याचार इतना बढ़ गया कि राजनैतिक नेताओं की भाँति लेखक तथा कवि भी इस असमंजस में पड़ गये कि आगे बढ़ें या वहीं रुक जायें—ऐसे नाजुक, महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक मोड़ पर कथा-साहित्य में प्रेमचन्द और काव्य-साहित्य में 'जोश' मलीहाबादी उर्दू साहित्य के नेतृत्व के लिये आगे बढ़े। प्रेमचन्द ने साहित्य में यथार्थवाद की नींव डाली और जोश ने रोमांसवाद को आगे बढ़ाया और अपनी एजीटेशनल नज़्मों द्वारा अंग्रेज़ी शासन और उसके अन्याय तथा अत्याचारों पर आक्रमण किये। स्वतंत्रता संग्राम में मर-मिटने के लिए नौजवानों को ललकारा। हर प्रकार की राजनैतिक समझौताबाज़ी पर लानतें भेजीं और साम्यवाद के उगते हुए सूरज की ओर ऐसा स्पष्ट संकेत किया कि उनके बाद आने वाला प्रत्येक प्रगतिशील कवि उस सूरज के प्रकाश में नहा गया। इन्हीं दो महान् साहित्यकारों के नेतृत्व में लेखक तथा कवि एक यात्री-दल का रूप धारण कर गये और इस दल ने १९३५ ई० में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की नींव डाली।

प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डालने वाले और उसके घोषणा-पत्र के प्रस्तावक सज्जाद ज़हीर, मुल्कराज आनन्द आदि ऐसे तरुण परन्तु शिक्षित लेखक थे जिन्होंने अपने प्राचीन, अर्वाचीन साहित्य के साथ-साथ पश्चिमी साहित्य और उसकी धाराओं का गहरा अध्ययन किया था। 'साहित्य को जीवन का प्रतीक' बनाने के साथ-साथ वे उसे 'भविष्य के निर्माण का प्रभाव-शाली साधन' बनाना चाहते थे और चाहते थे कि 'भारत का नया साहित्य हमारे जीवन की मौलिक समस्याओं को अपना विषय बनाये—ये भूख, निर्धनता, सामाजिक विषमता तथा परतन्त्रता की समस्यायें हैं।'

यह आवाज़ इतनी शक्तिशाली तथा सक्रिय थी कि न केवल तरुण कवि और लेखक इससे प्रभावित हुए बल्कि उस समय के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकारों ने इसका स्वागत किया। काव्य साहित्य को उस समय तक आज़ाद, हाली, शिबली इक़बाल और जोश जो चिंतनशीलता प्रदान कर चुके थे, नई पौध के कवियों ने उसे और विशाल किया और आज जब हम १९३५ ई० के बाद के उर्दू काव्य-साहित्य का निरीक्षण करते हैं तो इसकी असाधारण उन्नति पर आश्चर्य प्रकट किये बिना नहीं सकते। आज की उर्दू शायरी को किसी कोण से देख लीजिये, वह संसार की उन्नत से उन्नत भाषा के काव्य साहित्य का मुक़ाबिला कर सकती है।

—उन शायरों के नाम जो इस पुस्तक की शोभा नहीं बन सके

आरम्भ

पब्लिकेशन्ज़ डिवीज़न, ओल्ड सेक्रेटेरियट, दिल्ली, के एक चौकोर कमरे में, जो मासिक-पत्रिका 'आजकल' (उर्दू) के सम्पादक का कमरा है, सुर्खो-सफ़ेद चेहरे, चौड़े माथे, भारी-भरकम देह और अत्यन्त रौबीले व्यक्तित्व के मालिक एक सज्जन ने पान की डिबिया से पान निकालकर मुंह में डाला, फिर बटुए से छालिया निकालते हुए सामने कुर्सियों और सोफ़ों पर विराजमान आठ-दस व्यक्तियों में से एक से कहा :

"कहिये, ख़ैरियत तो है ?"

"जी, नवाज़िश है। आप फ़र्माइये आपके मिज़ाज कैसे हैं ?"

"मेरे मिज़ाज ?" क़िवाम की शीशी में से थोड़ा-सा क़िवाम मुंह में डालते हुए उस रौबीले व्यक्ति ने कहा, "मेरा तो एक ही मिज़ाज है साहब ! पोते अलबत्ता बहुत से हैं।"

"ओह, मुआफ़ कीजियेगा," संबोधित व्यक्ति ने एक वचन तथा बहुवचन की अपनी भूल को स्वीकार करते हुए कहा।

"कैसे तशरीफ़-आवरी हुई ?" रौबीले व्यक्ति ने फिर पूछा।

"जी, बहुत अर्से से नियाज़ हासिल नहीं हुआ था, सोचा··"

लेकिन इससे पूर्व कि वे कुछ सोचते या सोची हुई बात कहते उस रौबीले व्यक्ति ने उन्हें एक और पटखनी दे डाली :

"अच्छा, अच्छा, बहुत मैदान[1] से नियाज़ हासिल नहीं हुआ।"

"ओह, मुआफ़ फ़र्माइयेगा," सम्बोधित व्यक्ति बौखलाकर चुप हो गया।

---

१. अर्बी शब्द 'अर्स' के शाब्दिक अर्थ 'मैदान' के हैं।

अब उस रोबीले व्यक्ति ने, जो स्वभाव से बहुत मुनक्क मालूम होता था, शायद किसी बात के याद आ जाने से हवा में एक प्रश्न उछाला "आज क्या तारीख है ?"

"उन्नीस ।" उन आठ-दस व्यक्तियों में से उत्तर देने वाले ने भय तथा विश्वास के मिले-जुले स्वर में कहा ।

"शायद उन्नीस से आपकी मुराद उन्नीसवीं तारीख से है ।"

"जी हाँ, जी हाँ," फिर वही पहले व्यक्ति की सी बौखलाहट का प्रदर्शन हुआ ।

"हद है साहब," रोबीले व्यक्ति ने कहना शुरू किया । "यह नई नसल जबान का सत्यानास कर देगी । क्यों जनाब, बीसवीं सदी को आप बीस सदी कहेंगे ?"

"जी गलती हो गई" गलती करने वाले ने और भी लज्जित होकर कहा और चुप हो गया । लेकिन थोड़ी देर के बाद मैंने (मैं भी उसी महफिल में था) जरा साहस से काम लेते हुए कहा, 'लेकिन जोश साहब ! लोग तो उन्नीसवीं तारीख को उन्नीस तारीख ही कहते हैं ।"

उस भारी-भरकम देह और रोबीले व्यक्तित्व के मालिक 'जोश' मलीहाबादी ने व्यंगात्मक स्वर में कहना शुरू किया, "लोग तो इस मुल्क के जाहिल हैं, साहबजादे ! मैं आम लोगों से नहीं, तुम लोगों से मुखातिब हूँ । तुम लोग जो अपने आपको अदीब और शायर कहते हो, मगर तुम लोगों ने ही जबान की हिफाजत करने के बजाय उसे बिगाड़ना शुरू कर दिया तो ·· "

अब 'जोश' साहब बाकायदा भाषण दे रहे हैं । कुछ बातें वे ठीक कह रहे हैं और कुछ ऐसी भी कह रहे हैं जिनमें आक्षेप की गुंजायश निकल सकती है, लेकिन श्रोताओं में से किसी में आक्षेप करने का साहस नहीं । ये बातें भाषा तथा साहित्य, धर्म तथा राजनीति, सामाजिक बन्धनों, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, मानव विकास, समाज में नारी के स्थान, जागीरदारी, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, अर्थात् संसार भर के विषयों पर होती हैं और वे इन पर निरन्तर बोल सकते हैं । वे बोल रहे हैं और श्रोतागण चुप हैं । 'जोश' साहब का साहित्यिक स्थान, बुजुर्गी और रोबीला व्यक्तित्व उनमें उनकी किसी गलत बात पर भी आक्षेप करने का साहस उत्पन्न नहीं होने देता कि एकाएक स्वयं जोश साहब ही अपनी किसी दूसरी बात में अपनी पहली बात का खण्डन करने लगते हैं । एक ओर साम्यवाद को मानव-मुक्ति का एक-मात्र साधन बताते हैं तो

दूसरी ओर मशीन पर हल को और नागरिक जीवन पर ग्राम्य जीवन को प्रधानता देते हैं। ज्ञान को नारी के सौन्दर्य की मृत्यु और नारी को पुरुष के सुख-वैभव का एक साधन मानते हैं।

'जोश' साहब के व्यक्तित्व की यह दोरुख़ी उनकी पूरी शायरी में भी, जो लगभग आधी सदी में फैली हुई है, विद्यमान है। और इसकी पुष्टि करते हैं 'अर्शो-फ़र्श' (धरती और आकाश) 'शोला-ओ-शबनम' (आग और ओस) 'सुंबलो-सलासिल' (सुगन्धित घास और जंजीरें) इत्यादि उनके कविता-संग्रहों के नाम; और उनकी निम्नलिखित रुबाई से तो उनकी पूरी शायरी के नैन-नक़्श सामने आ जाते हैं :

झुकता हूँ कभी रेगे-रवाँ[1] की जानिब,
उड़ता हूँ कभी कहकशाँ[2] की जानिब,
मुझ में दो दिल हैं, एक मायल-ब-ज़मीं[3],
और एक का रुख़ है आसमां की जानिब।

'जोश' की शायरी की इस परस्पर-विरोधी-अवस्था को समझने के लिए जिसमें एक साथ ख़ैयाम, हाफ़िज़, गेटे, नतशे और कार्ल मार्क्स का दर्शन विद्यमान है, आवश्यक है कि उस वातावरण को, जिसमें शायर का पालन-पोषण हुआ, और उन सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों को, जिनमें शायर ने अपनी आंख खोली, सामने रखा जाए, क्योंकि मनुष्य का सामाजिक-बोध सदैव समाज के परिवर्तन-शील भौतिक मूल्यों का बंदी होता है और वह चीज़ जिसे 'घुट्टी' कहा जाता है मनुष्य के जीवन में बहुत महत्व रखती है।

शबीर हसन खां 'जोश' १८९४ में मलीहाबाद (उत्तर-प्रदेश) में पैदा हुए। जाति के पठान और रहन-सहन से लखनवी। परदादा फ़क़ीर मोहम्मद 'गोया' अमीर-उद्दौला की सेना में रिसालदार भी थे और साहित्य-क्षेत्र के महारथी भी। ग़ज़लों का एक संग्रह तथा गद्य की एक प्रसिद्ध पुस्तक छोड़ी। 'गोया' के पुत्र मोहम्मद खां अहमद भी एक प्रतिभाशाली शायर थे। यों 'जोश' ने उस जागीरी वातावरण में पहली सांस ली जिसमें काव्य की रुचि के साथ-साथ घमण्ड, आत्मश्लाघा और अहम्मन्यता की भावना शिखर पर थी। गांव का कोई प्राणी यदि खींचे हुए धनुष की भान्ति शरीर को दोहरा करके सलाम न करता था तो मारे कोड़ों के उसकी खाल उधेड़ दी जाती थी। (स्वयं 'जोश'

१. आंधी-झक्कड़ से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने वाली रेत।
२. आकाश-गंगा ३. धरती की ओर बढ़ने वाला।

साहब भी एक शरीर पर अपनी छड़ी आजमा चुके हैं।) प्रत्यक्ष है कि जन्म लेते ही 'जोश' इस वातावरण से दामन न छुड़ा सकते थे। उनमें भी वही आदतें उत्पन्न हो गईं जो उनके पूर्वजों का स्वभाव बन चुकी थी। अत अपनी मानसिक स्थिति के सम्बन्ध मे एक स्थान पर वे स्वय लिखते हैं "मैं लड़कपन मे अत्यन्त क्रूर था। मेरे हर बोल से जैसे चिंगारियां निकलती थीं ...... मेरे स्वभाव की यही मौलिक कटुता मेरी राजनैतिक शायरी मे तीखा-कड़वा स्वर बनकर आज भी व्यक्त होती है और मेरी शायरी का समालोचक मेरे स्वर की कर्कशता पर चीख उठता है।"

स्वर की इस कर्कशता ने जोश के सामाजिक सम्बधो पर कुठाराघात किया। उन्होंने अपने पिता से विद्रोह किया। पूरे कुल से विद्रोह किया। धर्म, राज्य, समाज अर्थात् हर उस चीज से विद्रोह किया जो उन्हे अपने स्वभाव के प्रतिकूल प्रतीत हुई और विद्रोह के इस सिलसिले ने इतना उग्र रूप धारण कर लिया कि कई स्थानो पर उन्होंने केवल विद्रोह के लिए विद्रोह किया और स्वय को सर्वोपरि तथा सर्वोच्च समझ कर

"दूसरे आलम[1] म हूँ दुनिया से मेरी जग है।"

कहा और

काम है मेरा तग़ावत नाम है मेरा शबाब[2]।
मेरा नारा इकिलाबो-इकिलाबो-इकिलाब[3]॥

का नारा लगाया।

उन्होंने बगावत और इन्क़िलाब (विद्रोह तथा क्रांति) का एक ही अस्तित्व माना और उसी रूप मे उन्हे हमारे सामने पेश किया और देश की जनता ने जो अंग्रेजी राज्य मे बुरी तरह पिस रही थी और देश की स्वाधीनता के लिए सघर्ष कर रही थी, उनके इस नारे को उठा लिया। वह एक विचित्र सघर्षपूर्ण काल था। इधर भारत साम्राज्य की जजीरो मे जकड़ा हुआ स्वतन्त्रता की लड़ाई लड रहा था और उधर रूस की क्राति के बाद एक नया जीवन-दर्शन सारे ससार को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। अंग्रेजो ने इस नये दर्शन की वास्तविक रूप-रेखा भारत तक नही पहुँचने दी और न ही उस समय भारत मे श्रमजीवियो का कोई ऐसा सगठित दल था जो वर्गीय हितो के आधार पर उस स्वतन्त्रता-सग्राम तथा जीवन-व्यवस्था का विश्लेषण करके

---

१ ससार २ यौवन ३ बाद को 'जोश' साहब ने स्वय ही बगावत शब्द के स्थान पर शब्द तग़य्युर (परिवर्तन) कर दिया।

सच्चा पथप्रदर्शन करता । अतएव क्रान्ति को, जिसका वास्तविक अर्थ सामाजिक तथा राजनैतिक परिवर्तन है, देश की केवल राजनैतिक स्वतन्त्रा के अर्थों में लिया गया और विद्रोही शायर 'जोश' को 'शायरे-इंक़िलाब' (क्रांतिकारी कवि) की उपाधि दी गई (हालांकि 'जोश' से पहले 'इक़बाल' एक हद तक क्रान्ति का सही बोध दे चुके थे) ।

'जोश' का यथोचित साहित्यिक स्थान आंकने में, 'सरदार जाफ़री' के कथनानुसार सब से बड़ी चूक 'शायरे-इंक़िलाब' की उपाधि के कारण होती है। 'क्रांति' का शब्द आज के समालोचकों की विचारधारा को गलत मार्ग पर डाल देता है, और वे 'जोश' से ऐसी आशाएं सम्बद्ध कर लेते हैं जो उनकी शायरी पूरी नहीं कर सकती । 'जोश' की प्रत्यक्ष तथा सीधी-सादी एजीटेशनल (आन्दोलनात्मक)[१] कविताओं को, जिन्होंने निःसंदेह अपने युग में बहुत बड़ा कार्य किया, भूल से क्रांतिकारी कविताओं का नाम दिया गया । यह भूल केवल राष्ट्रीय तथा विद्रोहात्मक कविताओं तक ही सीमित नहीं रही, 'जोश' की कुछ क्रांतिवादी कविताओं को परखने में भी यही भूल की गई है । क्रांतिकारी कविताओं में और क्रांतिवादी कविताओं में थोड़े से हेर-फेर के साथ लगभग वही अंतर है जो यथार्थवाद और रोमांसवाद में है; क्रांति के परिपुष्ट बोध और

१. 'ईस्ट-इंडिया कम्पनी के फ़र्ज़ंदों (बेटों) के नाम', 'वफ़ादाराने-अज़ली (अनादिकालिक राज्यभक्तों) का पयाम शहनशाहे-हिन्दोस्तान के नाम' और 'शिकस्ते-ज़िंदां (जेल के टूटने) का ख्वाब' ऐसी कवितायें हैं जिनकी हज़ारों कापियां चोरी-छुपे बंटीं, लाखों ज़बानों पर आईं और बहुत-से लोग स्टेज पर इन्हें पढ़ने से गिरफ़्तार हुए । यहां यह चर्चा असम्बद्ध न होगी कि वास्तविक अर्थों में क्रांतिवादी कवितायें न होने पर भी इन कविताओं ने आज की क्रांतिकारी कविता के लिए मार्ग समतल किया है, और उर्दू में एक नये प्रकार की सांग्रामिक (Militant) शायरी की नींव डाली है । 'जोश' से पूर्व स्वर की यह घन-गरज, पहाड़ी झरने का सा प्रवाह तथा शब्दों की ऐसी जादूगरी उर्दू के किसी शायर को प्राप्त नहीं हुई । अपनी इन कविताओं द्वारा उन्होंने राष्ट्र को अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध उभारा, प्रतिक्रियावादी संस्थाओं का भंडा-फोड़ किया, मूढ़ता, धर्म-सम्बन्धी उन्माद, अन्धविश्वास और परम्परागत नैतिकता की जंजीरें काटने की प्रेरणा दी । उनके अध्ययन से आज भी हमारा लहू गर्म हो जाता है और अपने देश, अपनी जाति, अपनी सभ्यता, संस्कृति और अपने साहित्य तथा कला से हमारा प्रेम दुगना हो जाता है ।

मानवतावाद मे है। लेकिन इसका अभिप्राय यह नही है कि आज यदि क्रांति की उद्भावना सुस्पष्ट हो चुकी है और हम पूरे विश्वास के साथ शुद्ध अशुद्ध की परख कर सकते हैं तो आधी सदी तक पूरे के पूरे राष्ट्र को प्रभावित करने वाली 'जोश' की शायरी अपने स्थान से हट गई है। क्योकि यह एक ऐतिहासिक सचाई है कि किसी भी दुर्व्यवस्थाओ के विरुद्ध घृणा का नकारात्मक भाव ही (जबकि सामाजिक बोध अप्रौढ हो) आगे चलकर स्वीकारात्मक रूप धारण करता है और यह घृणा भाव आप-ही आप वैज्ञानिक दृष्टिकोण मे ढल जाता है। लैनिन ने टाल्स्टाय के सम्बन्ध म कहा था कि टाल्स्टाय अध्यात्मवादी है लेकिन उसने रूसी किसानो को बहुत समीप से देखा और समझा है, अत उसके साहित्य से रूस की क्रांति को पूरी एक सदी की मजिल मारने मे सहायता मिली है। ठीक यही बात 'जोश' की शायरी के बारे मे कही जा सकती है। 'जोश' की शायरी ने भारत के क्रांति आदोलन के लिए न केवल रास्ता साफ किया बल्कि हजारों-लाखो नौजवानो को क्रांति सग्राम के लिए तैयार किया।

'जोश' मलीहाबादी बडे निडर, साहसी तथा भावुक हैं। अभी वे आपकी भाषा तथा शैली की त्रुटियाँ गिनवा रहे हैं और अभी आपके किसी लेख या शेर की प्रशसा कर रहे हैं। अभी नई पीढ़ी के लेखको को कोस रहे हैं और अभी साहित्य की बागडोर उनके हाथो म थामकर निश्चित हो जाते हैं। अभी किसी के दुर्व्यवहार पर अपना रोष प्रकट कर रहे हैं और भरी सभा[1] मे उसे कभी मुँह न लगाने की सौगधें खा रहे हैं कि उस व्यक्ति ने आकर उनके कान मे कुछ कहा और उन्होने लोगो की नजरें बचाकर नोटो की एक गड्डी उसकी जेब म डाल दी। प्रधान-मत्री से लेकर सिटी मजिस्ट्रेट तक और

---

१ शायद ही कोई समय हो जब उन्हें एकात प्राप्त होता हो, अन्यथा क्या घर और क्या दफ्तर, लोगों का एक समूह हर समय उन्हें घेरे रहता है। पिछले दिनो लोगो के आक्रमणों से तग आकर उन्होंने अपने दफ्तर मे एक तख्ती लगवा दी थी जिस पर अग्रेजी अक्षरो मे लिखा था कि 'यदि आप समय बिताने के विचार से यहाँ पधारे हैं तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह स्थान इस प्रयोजन के लिए नही है।' लेकिन दूसरे दिन भी जब एक चौकड़ी सुबह से शाम तक उनके कमरे म जमी रही तो उन्होंने घूम कर तख्ती की ओर देखा। देखा तो तख्ती पर से 'नही' गायब था और अब तख्ती पर की पक्तियो का अर्थ यह था कि यही वह स्थान है जहाँ आप अपना समय बिता सकते हैं। कुछ लोगो का खयाल है कि यह तबदीली स्वय 'जोश' साहब ने ही की थी।

नवाब रामपुर से लेकर उनकी मोटर के ड्राइवर तक प्रत्येक व्यक्ति को उनके प्रति गहरी श्रद्धा है। अतः आपके कहने भर की देर है, वे आपके भाई की सौ-सवा-सौ की नौकरी के लिए शिक्षा-मंत्री या खाद्य-मंत्री को टेलीफ़ोन कर देंगे या स्वयं मिलने निकल खड़े होंगे और आपके किराये के तीन रुपये बचाने के लिए दस मील प्रति गैलन खाने वाली उनकी यह लम्बी ब्यूक आपको अलीगढ़ पहुँचाने के लिए रवाना हो जाएगी। किसी ऐसे मुशायरे में जिसमें मुल्लाओं की संख्या अधिक हो, वे जान-बूझकर ऐसी रुबाइयाँ सुनायेंगे जिनमें मुल्लाओं और खुदापरस्तों को गालियाँ दी गई हों। सरकारी ढंग की महफ़िल होगी तो उन्हें अपनी नज़्म 'मातमे-आजादी' याद आजायेगी और महिलाओं की संख्या अधिक देखेंगे तो मज़े ले-लेकर 'हाय जवानी, हाय ज़माने' अलापना शुरू कर देंगे। मुल्ला लोग नाक-भौं सिकोड़ते हैं, सरकारी दफ़्तरों में टीका-टिप्पणी होती है, और महिलायें 'वॉक-आउट' तक कर जाती हैं, लेकिन जोश की 'क़लंदरी' में फ़र्क नहीं आता। शायद वे जानते हैं (और बिल्कुल ठीक जानते हैं) कि अब वे ख्याति के उस शिखर पर पहुँच चुके हैं जहाँ किसी की अनुचित बातों पर भी क्रोध के बजाय प्यार ही आ सकता है।

ग़द्दार से खिताब

उंगलियां उट्ठेंगी दुनिया में तेरी औलाद पर।
ग़लग़ला होगा वो आते हैं रज़ालत[1] के पिसर[2]।।

तेरी मस्तूरात[3] का बाज़ार में होगा क़याम।
मारिज़े-दुशनाम[4] में तेरा लिया जाएगा नाम।।

उस तरफ़ मुंह करके थूकेगा न कोई नौजवां।
बर की हसरत में रहेंगी तेरे घर की लड़कियां।।

क्या जवानों के ग़ज़ब का ज़िक्र औ इब्ने-खिताब[5]।
सुन के तेरा नाम उड़ जायेगा बूढ़ों का खिज़ाब।।

फ़ाश[6] समझी जायेगी महलों में तेरी दास्तां।
कांप उठेंगी ज़िक्र से तेरे कुंवारी लड़कियां।।

आएगा तारीख़ का जिस वक़्त ज़ुबिश में क़लम।
क़द्र तेरी दे उठेगी लौ जहन्नुम की क़सम।।

---

१ नीचता २ वंशज ३ औरतें ४ गाली देने के सम्बन्ध में
५ उपाधियों के लिए लालायित ६ अश्लील

ये कौन उठा है शर्माता ?

ये कौन उठा है शर्माता रैन का जागा, नींद का माता
नींद का माता घूम मचाता अंगड़ाइयां लेता, बल खाता

ये कौन उठा है शर्माता ?

रुख[1] पे सुर्खी, आंख में जादू मीनी-मीनी बर[2] में खुशबू
बांकी चितवन, सिमटे अबरू[3] नीची नज़रें, बिखरे गेसू[4]

ये कौन उठा है शर्माता ?

नीद की लहरें गंगा जमुनी जिल्द के नीचे हल्की-हल्की
आंचल ढलका, मसकी साड़ी हल्की महंदी, धुंदली बेंदी

ये कौन उठा है शर्माता ?

डूबा हुआ रुख तावानी में[5] अनवारे-सहर[6] पेशानी में
या आबे-गुहर[7] तुग़यानी[8] में या चाँद का मुखड़ा पानी में

ये कौन उठा है शर्माता ?

रुखसार[9] पे मौजे-रंगीनी[10] कच्ची चांदी, सुच्ची चीनी
आंखों में नक़ूशे-खुदबीनी[11] मुखड़े पे सहर[12] की शीरीनी[13]

ये कौन उठा है शर्माता ?

आंख में ग़लतां[14] इशरतगाहें[15] नीद की सांसें जैसे आहें
बिखरी ज़ुल्फ़ें उरियां[16] बांहें जान से मारें जिसको चाहें

ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१. चेहरे २. बग़ल ३. भौंहें ४. केश ५. मुखड़ा प्रकाश मे डूबा हुआ है ६. सुबह का [illegible] ७. [illegible] ८. ज्वार ९. कपोल १०. रंगीन धारा १[illegible] १३. मधुरता १४. डूबे हुए १५[illegible]

फैला-फैला आंख में काजल उलझा-उलझा ज़ुल्फ़ का बादल
नाज़ुक गरदन, फूल-सी हैकल[1] सुर्ख़ पपोटे नींद से बोझल
ये कौन उठा है शर्माता ?

कुछ जाग रही, कुछ सोती है हर मौजे-सबा[2] मुंह धोती है
नाशुस्ता रुख़[3] या मोती है अंगड़ाई से जिज़-बिज़[4] होती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

चेहरा फीका नींद के मारे फीकेपन में शहद के धारे
जो भी देखे जान को वारे धरती माता बोझ सहारे
ये कौन उठा है शर्माता ?

हलचल में दिल की बस्ती है तूफ़ाने-जुनूं में[5] हस्ती है
आंख में शब की मस्ती है और मस्ती दिल को डसती है
ये कौन उठा है शर्माता ?

---

१. गले का तावीज़ २. प्रभात-समीर का झोंका ३. अनधिया (सुकुमार) चेहरा ४. तंग, परेशान ५. उन्माद के तूफ़ान में

इक नफ़स[1] का तार और ये शोरे-उम्रे-जाविदां[2] ।
इक कड़ी और उसमें ज़ंजीरों के इतने कारवां ॥
इक सदा[3] और उसमें ये लाखों हवाई दायरे ।
जिनकी आवाज़ें अगर सुन ले तो दुनियां गूंज उठे ॥
एक बूंद और हफ़्त क़ुलज़म[4] के हिला देने का जोश ।
एक गूंगा ख्वाब, और ताबीर[5] का इतना खरोश[6] ॥
इक कली और उसमें सदियों की मता-ए-रंगो-बू[7] ।
सिर्फ़ इक लम्हे की रग में और क़रनों[8] का लहू ॥
हर क़दम पर नस्ब[9] और इसरार[10] के इतने खयाम[11]!
और इस मंज़िल में मेरी शायरी मेरा कलाम!
जिसमें इल्मे-आस्मां है और न इसरारे-ज़मीं ।
एक खस[12], इक दाना, इक जौ, एक ज़र्रा भी नहीं ॥
नौ-ए-इन्सानी[13] को जब मिल जायेगी रफ़्तारे-नूर[14] ।
शायरे-आज़म का तब होगा कहीं जाकर ज़हूर[15] ॥
खाक से फूटेगी जब उम्रे-अबद[16] की रोशनी ।
झाड़ देगी मौत को दामन से जिस दिन ज़िन्दगी ॥
जब बशर[17] की जूतियों की गर्द होगी कहकशां[18] ।
तब जनेगी नस्ले-आदम शायरे-जादू-बयां ॥
फ़िक्र में कामिल[19], न फ़न्ने-शेर[20] में यकता[21] हूं मैं ।
कुछ अगर हूं तो नक़ीबे-शायरे-फ़र्दा[22] हूं मैं ॥

---

१. सांस २. अमर जीवन का कोलाहल ३. शब्द ४. सात समुद्र ५. स्वप्न-फल ६. शोर, वावेला ७. रंग और सुगंधि की राशि ८. शताब्दियों ९. गड़े हुए १०. भेदों ११. खेमे १२. तिनका १३. मनुष्य जाति १४. प्रकाश की सी तेज़ गति १५. आविर्भाव १६. अमर जीवन १७. मनुष्य १८. आकाश-गंगा १९. चिंतन में पारंगत २०. काव्य-कला २१. अद्वितीय २२. भावी शायर का सूचक

ग़ज़ल

फ़िक्र ही ठहरी तो दिल को फ़िक्रे-ख़ूबा[1] क्यों न हो ?
ख़ाक होना है तो ख़ाके-कूए-जाना[2] क्यो न हो ?

दहर में ऐ ख़्वाजा ! जब ठहरी असीरी नागुज़ीर।
दिल असीरे-हल्क़ा-ए-गेसू-ए-पेचां क्यो न हो[3] ?

ज़ीस्त[4] है जब मुस्तक़िल आवारागर्दी ही का नाम।
अक़्ल वालो फिर तवाफ़े-कूए-जाना[5] क्यो न हो ?

जब नहो मस्तूरियो[6] मे भी गुनाहो से नजात।
दिल खुले-बदो ग़रीक़े-बहरे-इसिया क्यो न हो[7] ?

इक-न-इक हंगामे पर मौक़ूफ़[8] है जब ज़िन्दगी।
मैकदे में रिंद रक़्सानो-ग़ज़लख़्वां क्यो न हो[9] ?

था जब आवेज़िश[10] ही ठहरी है तो ज़र्रे छोड़कर।
आदमी ख़ुरशीद[11] से दस्तो-गरेबां क्यो न हो[12] ?

इक-न-इक ज़ुलमत[13] से जब वाबस्ता[14] रहना है तो 'जोश'।
ज़िन्दगी पर साया-ए-ज़ुल्फ़े-परीशां[15] क्यो न हो ?

---

१. सुन्दरियो की इच्छा २. प्रेयसी की गली की ख़ाक ३. ऐ मालिक ! यदि समार मे बदी होना अनिवार्य है तो फिर मनुष्य (प्रेयसी के) पेचदार केशो की कड़ी मे बदी क्यो न हो ? ४ जीवन ५. प्रेयसी की गली की परिक्रमा ६ गुप्त रूप से किये जाने वाले ७. पाप-सागर मे क्यो न डूबे ? ८ आधारित ९. क्यो न नाचे-गाये ? १०. लाग-डाट ११. सूरज १२. क्यो न जूझे ? १३. अन्धेरा (स्याही) १४. सम्बन्धित १५. (प्रेयसी के) उलझे हुए केशों की छाया

रुबाइयां

हर इल्मो-यक़ीं[1] है इक गुमां[2] ऐ साक़ी,
हर ज़र्रा है इक ख्वाबे-गिरां[3] ऐ साक़ी!
अपने को कहीं रख के मैं भूला हूं ज़रूर,
लेकिन ये नहीं याद कहां, ऐ साक़ी!

◇ ◇ ◇

अलफ़ाज़[4] हैं नागन सी जवानी के डसे,
अनफ़ास[5] महकते हुए होंटों में वसे,
यूं दिल को जगा रहा है तेरा लहजा[6],
जिस तरह सितार के कोई तार कसे।

◇ ◇ ◇

करती है गुहर[7] को अश्कबारी[8] पैदा,
तमकीन[9] को, रूहे-बेक़रारी पैदा,
सौ बार चमन में जब तड़पती है नसीम[10],
होती है कली पर एक धारी पैदा।

◇ ◇ ◇

जाने वाले क़मर[11] को रोके कोई,
शब के पैके-सफ़र[12] को रोके कोई,
थक कर मेरे ज़ानू पे वह सोया है अभी,
रोके, रोके, सहर[13] को रोके कोई।

◇ ◇ ◇

---

१. ज्ञान तथा विश्वास २. भ्रान्ति ३. दीर्घ सपना (भारी भ्रम)
४. शब्द ५. श्वास ६. स्वर ७. मोती ८. आंसुओं की झड़ी ९. सम्मान
१० वायु ११. चांद १२. हरकारा, दूत १३. प्रभात

हर रंग में इबलीस[1] सजा देता है,
इन्सान को ब-हर-तौर[2] दग़ा देता है,
कर सकते नहीं गुनाह जो अहमक़ उनको,
बेरूह[3] नमाज़ों मे लगा देता है।

◇ ◇ ◇

जन्नत के मजों पे जान देने वालो,
गंदे पानी में नाव खेने वालो,
हर खैर[4] पे चाहते हो सत्तर हूरें,
ऐ अपने ख़ुदा से सूद लेने वालो[5]।

◇ ◇ ◇

मुझ से जो फिरेगी तो किधर जायेगी,
ले जायेगी जिस सिम्त[6] उधर जायेगी,
दुनिया के हवादिस[7] से न घबरा कि ये उम्र,
जिस तरह गुज़ारेगा, गुज़र जायेगी।

◇ ◇ ◇

जिस चाल से बढ़ रही है फ़ौजे-बुरहान[8],
औहाम का किला[9] हो रहा है वीरान,
जितना इन्सान बन रहा है अल्लाह,
अल्लाह उतना ही बन रहा है इन्सान।

◇ ◇ ◇

हर गार[10] महो-साल से[11] पट जाता है,
साया हो कि धूप, वक़्त कट जाता है,
गम है मानिंदे-बर्फ़[12] ऐसा इक बोझ,
हर गाम[13] पे जिसका वज़न घट जाता है।

---

१. शैतान २. अवश्य ३. रूखी-फीकी ४. शुभ-कर्म ५ इस्लाम मे सूद लेना गुनाह है। ६. ओर ७. काल-चक्र ८. सिद्धांतों की सेना ९. भ्रमों का दुर्ग १०. खोह ११. महीनों और वर्षों से १२. बरफ की तरह १३. पग

क्या शैख मिलेगा गुलफ़िशानी करके[1],
क्या पायेगा तौहीने-जवानी करके,
तू आतिशे-दोज़ख[2] से डराता है उन्हें,
जो आग को पी जाते हैं पानी करके।

◇ ◇ ◇

क्या फ़ायदा शैख ! तुझ से कीने[3] में मुझे,
खुश्की में तुझे लुत्फ़, सफ़ीने[4] में मुझे,
अय्याश तो दोनों हैं, मगर फ़र्क़ ये है,
खाने में तुझे मज़ा, पीने में मुझे।

◇ ◇ ◇

काकुल[5] खुलकर बिखर रही है गोया,
नरमी से नदी गुजर रही है गोया,
आंखें तेरी झुक रही हैं मुझसे मिलकर,
दीवार से धूप उतर रही है गोया।

◇ ◇ ◇

हम रहते हैं तिश्ना[6] छक के पीने के लिए,
गिर्दाब[7] में फंसते हैं सफ़ीने[8] के लिए,
जीते हैं, तो मरने के लिए जीते हैं,
मरते हैं तो बेदरेग़[9] जीने के लिए।

◇ ◇ ◇

खुद को गुमकर्दा-गुनाह[10] करके छोड़ा,
हव्वा को भी तबाह करके छोड़ा,
क्या-क्या न किया खुदा ने जन्नत में जतन,
आदम ने मगर गुनाह करके छोड़ा।

---

१. (उपदेशों की) पुष्प-वर्षा करके (कुकर्मों से बचने को कहना) २. नरक की आग ३. द्वेष-भाव ४. नाव ५. केश ६. प्यासे ७. भंवर ८. नाव (बचने) ९. निश्चिन्त (भरपूर) १०. पाप-ग्रस्त

दिन होते न ज़र्द रू[1] न रातें ही सियाह,
भूले से भी इक लब[2] पे न आती कभी आह,
इन्सान पे दिल को छू न सकते आलाम[3],
मेरा-सा अगर शफ़ीक़[4] होता अल्लाह।

० ० ०

क्यों मुझ से तक़ाज़ा है कि 'फंदे खोलो',
किस तरह कटे ये पाप, बोलो, बोलो,
बन्दे की तरफ़ शौक़ से आना यारो,
मायूस अल्लाह से तो पहले हो लो।

० ० ०

मर मर के जब इक बला से पीछा छूटा,
इक आफ़ते-ताज़ादम ने[5] आकर लूटा,
इक आबला-ए-नौ से हुआ सीना दोचार[6],
जैसे ही पुराना कोई छाला टूटा।

० ० ०

'ये हुक्म है, चुप साध लो, आँखें न उठाओ,
दो ख़ूब मज़ा, धूम से नाक़ूस[7] बजाओ,
गोबर पे चने चाव से पानी पीलो,
बिस्तर पे गिरो, डकार लो और मर जाओ।

० ० ०

ऐ शबाब बता, यही है बाग़े रिज़वाँ[8]?
हूरों का कहीं पता, न ग़िलमाँ का[9] निशाँ,
इक कुंज में ख़ामोशो मलूलो-तनहा[10],
बेचारे टहल रहे हैं अल्लाह मियाँ।

---

१ पीले चेहरे वाले २ होंट ३ दुःख ४ स्नेही ५ नई मुसीबत ने ६ हृदय में नया छाला उत्पन्न होगया ७ शंख ८ जन्नत (स्वर्ग) ९ लौंडों का १० मौन उदास अकेले

फुटकर शेर

जिस को तुम भूल गये याद करे कौन उसको ?
जिस को तुम याद हो वो और किसे याद करे ?

◇ ◇ ◇

सहर तक चाँद मेरे सामने रखता है अक्स[१] उनका।
सितारे शब को मेरे साथ उनका नाम लेते हैं॥
ये सुनकर हमने मैखाना में अपना नाम लिखवाया।
जो मैकश लड़खड़ाता है वो बाजू थाम लेते हैं॥

◇ ◇ ◇

बर्ताव दोस्ती के हद से निकल गये हैं।
या तुम बदल गये हो या हम बदल गये हैं॥

◇ ◇ ◇

मेरी हालत तेरी फ़ुर्क़त में संभल जायेगी।
क्या ये दुनिया है कि दो दिन में बदल जायेगी॥

◇ ◇ ◇

जो मौक़ा मिल गया तो खिज्र[२] से ये बात पूछेंगे।
जिसे हो जुस्तजू[३] अपनी, वो बेचारे कहां जायें॥

◇ ◇ ◇

वो खुद अता[४] करे तो जहन्नुम भी है बहिश्त।
मांगी हुई निजात[५] मेरे काम की नहीं॥

◇ ◇ ◇

या रब ये भेद क्या है कि राहत[६] की फ़िक्र ने।
इन्सां को और ग़म में गिरफ़्तार कर दिया॥

◇ ◇ ◇

हश्र[७] में भी खुसरवाना[८] शान से जायेंगे हम।
और अगर पुरसिश[९] न होगी तो पलट आयेंगे हम॥

---

१. प्रतिरूप २. एक पैग़म्बर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ३. तलाश ४. प्रदान ५. मुक्ति ६. सुख ७. अन्तिम न्याय-दिवस ८. बादशाही ९. आव-भगत

परिचय

"कोई अच्छा इन्सान ही अच्छा शायर हो सकता है," 'जिगर' मुरादाबादी का यह कथन किसी दूसरे शायर पर लागू हो या न हो, स्वयं उन पर बिल्कुल ठीक बैठता है। यों पहली नज़र में इस कथन में मतभेद की गुंजाइश भी कम ही नज़र आती है लेकिन इसको क्या किया जाए कि स्वयं 'जिगर' के बारे में कुछ व्यक्तियों का मत यह है कि जब वे 'अच्छे इन्सान' नहीं थे, तब बहुत अच्छे शायर थे।

"जब वे अच्छे इन्सान नहीं थे" से उन समालोचकों का अभिप्राय उस काल से है, जिस काल में वे बेतहाशा शराब पीते थे। इस बुरी तरह और इस मात्रा में कि यदि दस व्यक्ति मिलकर आयु भर पीते रहें, तब भी उतनी न पी पायेंगे, जितनी 'जिगर' कुछ एक वर्षों में पी चुके हैं। और उन समालोचकों का अभिप्राय उस 'जिगर' से भी है जो सारे संसार और उसकी नैतिकता को शराब के प्याले में डुबो देते थे और जिन्होंने अपना दाम्पत्य जीवन नरक समान बना लिया था[1] और आठों पहर मस्त-अलस्त रहकर :

---

1. जिगर साहब की शादी उर्दू के प्रसिद्ध कवि स्वर्गीय 'असग़र' गोंडवी की छोटी साली से हुई थी। फिर 'असग़र' साहब ने 'जिगर' साहब से तलाक़ दिलवाकर उनकी पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया था। 'असग़र' साहब के देहांत पर 'जिगर' साहब ने फिर उसी महिला से दोबारा शादी कर ली और कुछ लोगों का ख़याल है कि उनकी इस पहली पत्नी ने ही उनकी शराब पीने की लत छुड़वाई है।

मुझे उठाने को आया है वाइज़े-नादां[1]
जो उठ सके तो मेरा साग़रे-शराब[2] उठा
किधर से बर्क़[3] चमकती है देखें ऐ वाइज़ !
मैं अपना जाम उठाता हूँ तू किताब[4] उठा।

ऐसे उच्चकोटि के शेर कहते थे और उनके तरन्नुम (गान) की हालत यह थी कि बड़े-बड़े उस्तादों का पित्ता उनके सामने पानी हो जाता था।

जहाँ तक मेरे व्यक्तिगत मत का सम्बन्ध है मैं न तो पूर्ण रूप से 'जिगर' साहब के उक्त कथन का पक्षपाती हूँ और न ही उन समालोचकों के इस फैसले से सहमत कि जब से 'जिगर' ने शराब छोड़ी है उनकी शायरी का स्तर नीचा हो गया है। मेरे तुच्छ विचार में 'जिगर' साहब की शायरी का यह अन्तर (यदि कोई अन्तर है तो) शराब पीने या न पीने का अन्तर नहीं है। यह अन्तर दाम्पत्य जीवन के नरक-समान बनने और फिर स्वर्ग समान बन जाने का अन्तर भी नहीं है बल्कि यह अन्तर दो विभिन्न कालों का अन्तर है। दो विभिन्न सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में एक ही ढंग से सोचने, पुराने पर संतोष और नये को अस्वीकार करने का अन्तर है। अतएव आज भी जब वे :

उनका जो फ़र्ज़ है अरबाब सियासत[5] जानें।
मेरा पैग़ाम मुहब्बत है जहाँ तक पहुँचे॥

ऐसे शेर कहते हैं तो हम उनकी 'मोहब्बत' को उस सूफ़ीवाद तथा अध्यात्मवाद से अलग करके नहीं देख सकते जो प्रारम्भकाल से ही उनकी शायरी की विशेषता रही है और जिसमें से

यही हुस्नो इश्क़ का राज़ है कोई राज़ इसके सिवा नहीं।
कि ख़ुदा नहीं तो ख़ुदी[6] नहीं जो ख़ुदी नहीं तो ख़ुदा नहीं॥

ऐसे शेर निकले थे।

लेकिन ऐसा भी नहीं है कि 'जिगर' अपनी जगह से टस से मस न हुए हों। यह प्रत्यक्ष है कि उनकी पूरी शायरी में 'साक़ी' 'मैकदा', 'हुस्न', 'इश्क़', 'जुनून', 'रिंदी' इत्यादि परम्परागत शब्द परम्परागत परिभाषायें और परम्परागत अन्तर्चेतना की गहरी छाप है। वह ग़ज़ल को उर्दू शायरी की पराकाष्ठा

---

१. नादान धर्मोपदेशक २ शराब का प्याला ३ बिजली (एक परम्परा के अनुसार 'तूर' पहाड़ पर बिजली चमकी थी और मूसा (पैग़म्बर) ने ख़ुदा से बातें की थी ४ धर्म-ग्रंथ ५ राजनीतिज्ञ ६ अहंभाव

मानते हैं और उन्होंने कविता के सामाजिक क्रम से सदैव इन्कार किया है, लेकिन मौलिक रूप से एक विमल तथा सत्य प्रेमी कलाकार होने के नाते उन्होंने कभी "आत्मा की आवाज" को दवाने की चेष्टा नहीं की। अतएव बंगाल के अकाल के दिनों में जब उन्होंने ऐसे शेर कहे :

बंगाल की मैं शामो-सहर देख रहा हूँ,
हरचंद कि हूँ दूर मगर देख रहा हूँ।
इन्सान के होते हुए इन्सान का ये हश्र[1],
देखा नहीं जाता है मगर देख रहा हूँ।

तो लोगों ने चौंक कर 'जिगर' साहब की ओर देखा; और फिर साम्प्रदायिक उपद्रव पर तो 'जिगर' साहब इस बुरी तरह तड़प उठे कि ग़ज़ल पर जान देने वाले और ग़ज़ल का बादशाह कहलाने वाले इस शायर ने :

फ़िक्रे-जमील ख्वाबे-परीशां[2] है आजकल।
शायर नहीं है वो जो ग़ज़ल-ख्वाँ[3] है आजकल ॥

कहकर और इस ग़ज़ल में हिन्दू, मुसलमान, इन्सानियत, जमहूरियत, इत्यादि ग़ज़ल की परम्पराओं के प्रतिकूल शब्दों का प्रयोग करके कविता के प्रति अपनी उस महान सत्यप्रियता का प्रमाण दिया, जिसके बिना कोई कवि महान कवि नहीं बन सकता और यह भी कला के प्रति उनकी निष्कपटता ही थी जिसने उनसे :

सलामत तू, तेरा मैखाना, तेरी अंजुमन[4] साक़ी,
मुझे करनी है अब कुछ खिदमते-दारो-रसन[5] साक़ी।
रगो-पै में[6] कभी सहबा[7] ही सहबा रक्स[8] करती थी,
मगर अब ज़िन्दगी ही ज़िन्दगी है मौजज़न[9] साक़ी।

ऐसे शेर कहलवाये। निःसंदेह यह 'जिगर' की आंतरिक मान्यताओं पर बाहरी वास्तविकता की विजय थी—यह ग़ज़ल का एक स्पष्ट मोड़ था जिससे कविता के इस रूप का भविष्य सम्बद्ध है।

अली सिकन्दर 'जिगर' मुरादाबादी १८९० में मौलवी अली 'नज़र' के यहाँ,

---

१. हालत २. सुन्दर कल्पनायें टूटे हुए सपने की तरह छिन्न-भिन्न हैं। ३. ग़ज़ल गा रहा है, अर्थात् परम्परागत् बातों में उलझा हुआ है। ४. महफ़िल ५. सूलियों-फांसियों की सेवा (क्रान्तिकारी कार्य) ६. नस-नस में ७. सुरा ८. नृत्य ९. तरंगित

जो स्वयं एक अच्छे शायर और ख्वाजा वज़ीर अली देहलवी के शिष्य थे, पैदा हुए। एक पूर्वज मौलवी 'समी' देहली के निवासी और शाहजहाँ के उस्ताद थे। लेकिन शाही प्रकोप के कारण दिल्ली छोड़कर मुरादाबाद मे आ बसे थे। यों 'जिगर' को शायरी उत्तराधिकार के रूप मे मिली और तेरह-चौदह वर्ष की आयु मे ही उन्होंने शेर कहने शुरू कर दिये। शुरू-शुरू मे अपने पिता से सशोधन लेते रहे। उसके बाद उस्ताद 'दाग़' देहलवी को अपनी गजलें दिखाई और 'दाग़' के बाद मुन्शी अमीरउल्ला 'तसलीम' और 'रसा' रामपुरी को ग़जलें दिखाते रहे। शायरी मे सूफियाना रग 'असगर' गोडवी की सगत का परिणाम है।

शिक्षा बहुत साधारण, अग्रेजी बस नाममात्र जानते हैं, और शकल-सूरत के लिहाज से तो अच्छे-खासे बदसूरत इन्सानो मे से हैं। लेकिन ये सब कमियाँ अच्छे शेर कहने की क्षमता तले दबकर रह गई हैं और जहाँ तक शक्ल-सूरत का सम्बन्ध है, उर्दू के हास्य-लेखक शौकत थानवी ने शायद बिल्कुल ठीक लिखा है कि शेर पढ़ते समय उनकी शकल बिल्कुल बदल जाती है। उनके चेहरे पर एक लालित्य आ जाता है। एक सुन्दर मुस्कान, एक मनोहर कोमलता तथा सरलता के प्रभाव से 'जिगर' साहब का व्यक्तित्व किरने-सी बिखेरने लगता है—नि सदेह ये किरने हर उस व्यक्ति ने देखी होगी जिसने किसी मुशायरे मे 'जिगर' साहब को शेर पढ़ते सुना है।

'जिगर' साहब का शेर पढ़ने का ढग कुछ ऐसा मोहक और तरन्नुम ऐसा जादू भरा है कि एक युग ऐसा था जब तरुण कवि केवल उन ऐसे शेर कहने और उन्ही के से ढग मे शेर पढ़ने की केवल चेष्टा ही नही करते थे, बल्कि अपनी वेषभूषा भी 'जिगर' ऐसी बना लेते थे—वही लम्बे-लम्बे उलझे हुए बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, अस्त-व्यस्त वस्त्र और उन्हीं की तरह बेतहाशा शराबनोशी।

ऊपर एक स्थान पर मैं कह चुका हूँ कि 'जिगर' साहब बेतहाशा शराब पिया करते थे। लेकिन यह उनके 'अच्छा आदमी' बनने की धुन थी, या न जाने क्या था, कि एक दिन उन्होंने हमेशा के लिए शराब से तौबा कर ली और फिर आजतक शराब को हाथ नहीं लगाया। शराब से तौबा करने के बाद वे बेतहाशा सिग्रेट पीने लगे लेकिन आज वे सिग्रेट को भी हाथ नहीं लगाते। आजकल वे बेतहाशा ताश खेलते हैं और कोई नही कह सकता कि रात से सुबह कर देने वाले ये ताश के रसिया कब ताश से भी तौबा कर लेंगे और किसी दूसरे 'बेतहाशापन' मे जा आश्रय लेंगे।

'जिगर' साहब बड़े हँसमुख और विशाल हृदय के व्यक्ति हैं। धर्म पर उनका गहरा विश्वास है और धर्म और प्रेम को वे मनुष्य के मोक्ष का साधन मानते हैं, लेकिन धर्मनिष्ठा ने उनमें उद्दण्डता तथा घमंड नहीं विनय तथा नम्रता उत्पन्न की है। वे हर उस सिद्धांत का सम्मान करने को तैयार रहते हैं जिसमें सचाई और शुद्धता हो। यही कारण है कि साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन का भरसक विरोध करने पर भी उन्होंने 'मजाज़', 'जज़्बी', मसऊद अख़्तर 'जमाल', 'मजरूह' सुलतानपुरी इत्यादि बहुत से प्रगतिशील कवियों को प्रोत्साहन दिया है और प्रगतिशील लेखक संघ के निमन्त्रण पर अपनी जेब से किराया ख़र्च करके वे उनके सम्मेलनों में योग देते रहे हैं। (यों 'जिगर' साहब किसी मुशायरे में आने के लिए हज़ार-बारह सौ रुपये से कम मुआवज़ा नहीं लेते।) इस समय मुझे उनकी एक मुलाक़ात याद आ रही है जिसमें उन्होंने 'मजरूह' सुलतानपुरी की गिरफ्तारी पर शोक प्रकट करते हुए कहा था "ये लोग ग़लत हों या सही, यह एक अलग बहस है; लेकिन इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये लोग अपने उसूलों के पक्के हैं। इन लोगों में ख़ुलूस कूट-कूट कर भरा हुआ है।" और फिर 'मजरूह' की उस ग़ज़ल (जिसके कारण उसे गिरफ्तार किया गया था) की एक पंक्ति :

'यह भी कोई हिटलर का चेला है, मार ले साथी जाने न पाये'

पर मुस्कराकर व्यंग्य करते हुए उन्होंने कहा था—"लो, देखो, ख़ुद में तो मारने की हिम्मत नहीं, मारने के लिए साथी को आवाज़ दी जा रही है।"

बड़े बुज़ुर्ग होने पर भी 'जिगर' साहब हर समय गम्भीर मुद्रा धारण किये नहीं बैठे रहते। अपने से कहीं कम आयु के कवियों के साथ क़हक़हे लगाने में उन्हें विशेष आनन्द आता है। वे उन्हें खिला-पिलाकर बहुत प्रसन्न होते हैं और 'फ़िकरे-बाज़ी' के किसी अवसर को हाथ से नहीं जाने देते। एक बार एक महफ़िल में 'जिगर' साहब शेर सुना रहे थे। पूरी महफ़िल झूम-झूम कर उनके शेरों पर दाद दे रही थी लेकिन एक व्यक्ति शुरू से आख़िर तक बिल्कुल चुप-चाप बैठा रहा। एकाएक अन्तिम शेर पर उस व्यक्ति ने उचक-उचककर दाद देनी शुरू कर दी। 'जिगर' साहब ने चौंककर उसकी ओर देखा और कहा :

"क्यों साहब ! क्या आपके पास क़लम है ?"

"जी हाँ" उस व्यक्ति ने उत्तर दिया, "क्या कीजियेगा ?"

"मेरे इस शेर में ज़रूर कोई ख़ामी है, वरना आप दाद न देते। इसे मैं

अपनी बयाज (कापी, जिसमे हाथ से शेर लिखे होते हैं) में से काटना चाहता हूँ।"

इसी प्रकार एक बार एक और व्यक्ति ने उनसे कहा कि, " 'जिगर' साहब, एक महफ़िल मे मैं आपके एक शेर पर पिटते पिटते बचा।"

इस पर 'जिगर' साहब बोले, 'मेरा वह शेर असर के लिहाज से जरूर घटिया होगा, वरना आप जरूर पिटते।'

जिगर' साहब का पहला दीवान (कविता-सग्रह) 'दाग़े-जिगर १९२८ मे प्रकाशित हुआ था। उसके बाद १९३२ म शोला-ए-तूर' के नाम से एक सकलन मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ से छपा जिसके पूरे खर्चे की ज़िम्मेदारी साहबजादा रशीदुज्जफर (भोपाल) ने ली थी। नवाब भोपाल के ये भतीजे 'जिगर' साहब के बहुत प्रशसक थे और एक समय तक उन्होने जिगर' साहब को डेढ सौ रुपया मासिक वजीफा दिया। अब तक 'शोला ए तूर' के बहुत से सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। हाल ही में इदारा फरोग़े-उर्दू' (लाहौर) ने इसका एक बहुत ही सुन्दर सस्करण निकाला है।

'जिगर' साहब उन सौभाग्यशाली कवियों म से हैं जिनकी कलाकृतियाँ उनके अपने जीवनकाल मे ही 'क्लासिकल' साहित्य का अग बन जाती हैं।

शिकस्ते-तौबा[1]

साक़ी की हर निगाह पे बल खा के पी गया ।
लहरों से खेलता हुआ, लहरा के पी गया ॥
बेकैफ़ियों के कैफ़ से घबरा के[2] पी गया ।
तौबा को तोड़ ताड़ के, थर्रा के पी गया ॥
ज़ाहिद[3] ! ये मेरी शोख़ी-ए-रिन्दाना[4] देखना ।
रहमत[5] को बातों-बातों में बहला के पी गया ॥
सरमस्ती-ए-अज़ल[6] मुझे जब याद आ गई ।
दुनिया-ए-एतबार को[7] ठुकरा के पी गया ॥
आज़ुर्दगी-ए-ख़ातिरे-साक़ी को[8] देखकर ।
मुझको ये शर्म आई, कि शर्मा के पी गया ॥
ऐ रहमते-तमाम[9] ! मेरी हर ख़ता मुआफ़ ।
मैं इन्तहाए-शौक़[10] में घबरा के पी गया ॥
पीता बग़ैर इज़्न[11], ये कब थी मेरी मजाल ।
दरपर्दा चश्मे-यार[12] की शह पाके पी गया ॥
उस जाने-मैकदा[13] की क़सम, बारहा 'जिगर' ।
कुल आलमे-बसीत[14] पे मैं छा के पी गया ॥

---

१. तौबा को तोड़ना २. आनन्द रहित परिस्थितियों के आनन्द से घबरा कर ३. उपदेशक ४. मद्यपों की चंचलता ५. दया ६. अनादिकालिक उन्माद ७. मान्यताओं के संसार को ८. साक़ी की खिन्नता ९. सब से बड़ा कृपालु (ख़ुदा) १०. इश्क़ (उन्माद) की अधिकता ११. आज्ञा १२. यार (महबूब, ख़ुदा) की आँख का संकेत १३. मधुशाला की जान (साक़ी, ख़ुदा) १४. विशाल विश्व ।

ग़ज़लें

दिल में किसी के राह किये जा रहा हूँ मैं।
कितना हसी[1] गुनाह किये जा रहा हूँ मैं॥
फ़र्दे-अमल[2] सियाह किये जा रहा हूँ मैं।
रहमत को बेपनाह किये जा रहा हूँ मैं[3]॥
ऐसी भी एक निगाह किये जा रहा हूँ मैं।
ज़र्रों को महरो-माह[4] किये जा रहा हूँ मैं॥
उठती नहीं है आँख मगर उसके रूबरू।
नादीदा[5] इक निगाह किये जा रहा हूँ मैं॥
यूँ ज़िन्दगी गुज़ार रहा हूँ तेरे बग़ैर।
जैसे कोई गुनाह किये जा रहा हूँ मैं॥
गुलशन-परस्त[6] हूँ मुझे गुल[7] ही नहीं अज़ीज़।
काँटों से भी निबाह किये जा रहा हूँ मैं॥
मुझ से लगे हैं इश्क की अज़मत[8] के चार चाँद।
ख़ुद हुस्न को गवाह किये जा रहा हूँ मैं॥

०　　　　०　　　　०

हमें मालूम है हमसे सुनो, महशर[9] में क्या होगा।
सब उसको देखते होंगे वो हम को देखता होगा॥
जहन्नुम हो कि जन्नत जो भी होगा फ़ैसला होगा।
ये क्या कम है हमारा और उनका सामना होगा॥
ये माना भेज देगा हमको महशर से जहन्नुम में।
मगर जो दिल पे गुज़रेगी वो दिल ही जानता होगा॥
समझता क्या है तू दीवानगाने-इश्क को[10] ज़ाहिद।
ये हो जायेंगे जिस जानिब उसी जानिब ख़ुदा होगा॥

---

१ सुन्दर २ भगवान के यहाँ वह पुस्तक जिसमें प्राणियों के कार्यों का उल्लेख होता है ३ कृपानिधान की कृपाशक्ति को महान कर रहा हूँ ४ चाँद सूरज ५ न देख पाने वाली ६ बाग़ (संसार) का चाहने वाला ७ फूल ८ महानता ९ प्रलय-क्षेत्र १० इश्क़ के दीवानों को

मेरा जो हाल हो सो हो वर्क़े-नज़र[1] गिराये जा।
मैं यूंही नालाकश[2] रहूं तू यूंही मुस्कराये जा॥
लहज़ा-व-लहज़ा, दम-ब-दम, जलवा-ब-जलवा[3] आये जा।
तश्ना - ए - हुस्ने - ज़ात[4] हूं, तश्नालबी[5] वढ़ाये जा॥
जितनी भी आज पी सकूं, उज्र[6] न कर, पिलाये जा।
मस्त नज़र का वास्ता, मस्ते - नज़र वनाये जा॥
लुत्फ़[7] से हो कि क़हर[8] से, होगा कभी तो रू-व-रू।
उसका जहां पता चले, शोर वहीं मचाये जा॥
इश्क़ को मुतमइन[9] न रख, हुस्न के एतमाद[10] पर।
वो तुझे आज़मा चुका, तू उसे आज़माये जा॥

◇ ◇ ◇

खार[11] को गुल[12] और गुल को खार जो चाहे करे।
तूने जो चाहा किया, ऐ यार जो चाहे करे॥
उसने ये कह कर दिया दिल को फ़रेवे-जुस्तजू[13]।
हश्र तक अब आशिक़े - नाचार[14] जो चाहे करे॥
था अभी जलवा, अभी पर्दा, अभी कुछ भी नहीं।
आपकी ये हसरते-दीदार जो चाहे करे॥
हर हक़ीक़त हुस्न की है वेनियाज़े - एतराफ़[15]।
अब कोई इक़रार या इन्कार जो चाहे करे॥

◇ ◇ ◇

---

१. नज़रों की बिजली २. आर्तनाद करता रहूँ ३. क्षण-प्रतिक्षण नवीनतम छवि के साथ ४. सौन्दर्य का प्यासा ५. पिपासा ६. वहाना, इनकार ७. कृपा ८. प्रकोप ९. सन्तुष्ट १०. विश्वास ११. कांटा १२. फूल १३. तलाश करने का धोखा १४. वेचारा वेवस आशिक़ १५. सौंदर्य की प्रत्येक वास्तविकता स्वीकरण—अस्वीकरण से उच्च है।

जब तक कि ग़मे-इन्सा[1] से 'जिगर' इन्सान का दिल मामूर[2] नहीं।
जन्नत ही सही दुनिया लेकिन, जन्नत से जहन्नुम दूर नहीं॥

जुज़ ज़ौक़े-तलब, जुज़ ज़ौक़े-सफ़र[3] कुछ और मुझे मन्ज़ूर नहीं।
ऐ इश्क़! बता अब क्या होगा कहते हैं कि मंज़िल दूर नहीं॥

वाइज़ का हर इक इरशाद बजा, तक़रीर बहुत दिलचस्प, मगर,
आँखों में सरूरे-इश्क नहीं, चेहरे पे यक़ीं[4] का नूर[5] नहीं॥

इस नफ़अ्-ओ-ज़रर की दुनिया में[6] मैंने ये लिया है दर्से-जुनूँ[7]।
ख़ुद अपना ज़ियाँ[8] तसलीम, मगर, औरों का ज़ियाँ मन्ज़ूर नहीं॥

मैं ज़ख़्म भी खाता जाता हूँ, क़ातिल से भी कहता जाता हूँ।
तौहीन है दस्तो-बाज़ू की[9], वो वार कि जो भरपूर नहीं॥

अरबाबे-सितम की[10] ख़िदमत में इतनी ही गुज़ारिश है मेरी।
दुनिया से क़यामत[11] दूर सही, दुनिया की क़यामत दूर नहीं॥

० ० ०

---

१. मानव प्रेम और दुख-सुख २ परिपूर्ण ३ सफ़र करने और प्राप्त करने की उत्सुकता के अतिरिक्त ४. विश्वास ५. ज्योति ६. लाभ और हानि के संसार में ७ उन्माद की शिक्षा ८ हानि ९. हाथों-बाहों की १०. अत्याचारियों की ११. महाप्रलय।

वो भी है इक मुक़ामे-इश्क़[1] जहां।
हर तमन्ना गुनाह होती है॥

◇ ◇ ◇

मैं तेरा अक्स[2] हूं कि तू मेरा।
इस सवालो-जवाब ने मारा॥

◇ ◇ ◇

रह गया है अब तो बस इतना ही रब्त[3] इक शोख़ से।
सामना जिस वक़्त हो जाता है, भर आता है दिल॥

◇ ◇ ◇

जिसे मैं भी ख़ुद न बता सकूं, मेरा राज़े-दिल है वो राज़े-दिल।
जिसे ग़ैर दोस्त समझ सकें, मेरे साज़ में वो सदा[4] नहीं॥

◇ ◇ ◇

लाखों में इन्तिख़ाब के क़ाबिल बना दिया।
जिस दिल को तुमने देख लिया दिल बना दिया॥

◇ ◇ ◇

दिल को क्या-क्या सुकून[5] होता है।
जब कोई आसरा नहीं होता॥

◇ ◇ ◇

कांटों का कुछ हक़ है आख़िर।
कौन छुड़ाये अपना दामन॥

◇ ◇ ◇

ये इश्क़ नहीं आसां, इतना ही समझ लीजे।
इक आग का दरिया है, और डूब के जाना है॥

◇ ◇ ◇

इस तरह न होगा कोई आशिक़ भी तो पाबंद।
आवाज़ जहां दो उसे वो शोख़ वहीं है।

---

१. प्रेम की स्थिति २. प्रतिरूप ३. सम्बन्ध ४. आवाज़ ५. शान्ति

हरचन्द यक्के-कशा-म-कशे-दो-जहां रहे[1] ।
तुम भी हमारे साथ रहे, हम जहां रहे ॥

○ ○ ○

तौहीने-इश्क न हो, ऐ 'जिगर' ! न हो ।
हो जाये दिल का ख़ून, मगर आंख तर न हो ॥

○ ○ ○

वो हज़ार दुश्मने-जां सही, मुझे फिर भी ग़ैर अज़ीज़ है ।
जिसे ख़ाके-पा[2] तेरी छू गई, वो बुरा भी हो, तो बुरा नहीं ॥

○ ○ ○

पांव रुकते ही नहीं मंज़िले-जानां[3] के ख़िलाफ़ ।
और अगर होश की पूछो तो मुझे होश नहीं ॥

○ ○

दरिया की ज़िन्दगी पे सदक़े[4] हज़ार जानें ।
मुझको नहीं गवारा[5] साहिल की मौत मरना ॥

○ ○ ○

दिल गया रौनक़े-हयात[6] गई ।
ग़म गया सारी कायनात[7] गई ॥

○ ○ ○

इन्हें आंसू समझकर यूं न मिट्टी में मिला ज़ालिम ।
पयामे-दर्दे-दिल है, और आंखों की ज़बानी है ॥

○ ○ ○

क्या आगया ख़याल दिले-बेक़रार में ।
ख़ुद आशियां को आग लगा दी बहार में ॥

○ ○ ○

---

१. यह ठीक है कि हम दो दुनियाओं की कशमकश में गिरफ्तार रहे
२. पांव की धूल ३. प्रेमिका तक पहुँचाने वाली मंज़िल ४ न्योछावर
५. पसंद ६ ज़िंदगी की रौनक़ ७ सृष्टि

इश्क़ है किस क़तार में[1] हुस्न है किस शुमार[2] में।
उम्र तमाम हो चुकी, अपने ही इन्तज़ार में॥

◇ ◇ ◇

आज तो कर दिया साक़ी ने मुझे मस्त अलस्त।
डाल कर खास निगाहें मेरे पैमाने में॥

◇ ◇ ◇

'मौतो-हयात[3] में है सिर्फ़ एक क़दम का फ़ासला।
अपने को जिन्दगी वना, जलवा-ए-ज़िन्दगी[4] न वन॥

'फ़िराक़' गोरखपुरी

यूं ही 'फ़िराक़' ने उम्र बसर की
कुछ ग़मे-जानां, कुछ ग़मे-दौरां

परिचय

किसी पाठशाला में एक मौलवी साहब ने विद्यार्थियों को पढ़ाते समय 'ग़ज़ल' की व्याख्या इन शब्दों में की कि "शायरी के दूसरे असनाफ़ (रूपों) की तरह ग़ज़ल भी एक सनफ़े-सुख़न (काव्य-रूप) है जिसे अमूमन वो लोग अपनाते हैं जिनका चाल-चलन ख़राब होता है।"

और ठीक ही तो है—मौलवी साहब भला इसके अतिरिक्त ग़ज़ल की और क्या व्याख्या कर सकते थे जबकि ग़ज़ल का पूरा भंडार आशिक़ और माशूक़ की चर्चा, हिज्र और विसाल के झगड़ों, मैकदे, साक़ी और शराब के गुणगान और वाइज़, शेख़ और ब्रह्मन की पगड़ी उछालने आदि 'बदचलनियों' से भरा पड़ा है। इस पर ख़ुदा और जन्नत और जहन्नुम से इस प्रकार के मज़ाक़ों को :

हम को मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के ख़ुश रखने को 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है॥
('ग़ालिब')

और

इलाही कैसे होते हैं जिन्हें है बन्दगी ख़्वाहिश।
हमें तो शर्म दामनगीर होती है ख़ुदा होते॥
('मीर')

भला कौन 'शरीफ़' आदमी है जो सहन कर सकता है। लेकिन वह जो किसी ने कहा है कि किसी से सहन हो न हो, होता वही है जो होना होता है।

अतएव मौलवी साहब आज भी ग़ज़ल की वैसी ही व्याख्या कर रहे हैं और ग़ज़लें लिखने वाले शायर बराबर अपनी ढिठाई का प्रमाण देते चले जा रहे हैं।

'फ़िराक़' गोरखपुरी की चर्चा करते समय मुझे मौलवी साहब का यह लतीफ़ा इसलिए याद आया क्योंकि इन दिनों शायरी के प्राचीन स्कूल के एक प्रसिद्ध और माननीय शायर नव्वाब जाफ़र अली खाँ 'असर' बिल्कुल मौलवियों की-सी बातें कर रहे हैं और 'फ़िराक़' गोरखपुरी के

जरा विसाल[1] के बाद आईना तो देख ऐ दोस्त।
तेरे जमाल[2] की दोशीज़गी[3] निखर आई॥

ऐसे सुन्दर शेरों को अश्लील और :

कुछ क़फ़स की[4] तीलियों से छन रहा है नूर सा।
कुछ फ़िज़ा[5], कुछ हसरते-परवाज़[6] की बातें करो॥

और

तमाम शबनमो-गुल है वो सर से ता-ब-क़दम[7]।
रुके-रुके से कुछ आंसू, रुकी रुकी सी हँसी॥

ऐसे अनुभूतिपूर्ण शेरों को काने, लूले और लगड़े शेर कह रहे हैं।

'असर' और 'फ़िराक़' दोनों मेरे लिए बुज़ुर्ग और आदरणीय शायर हैं। न मुझे 'असर' साहब की-सी भाषाविज्ञता और पिंगल-ज्ञान का दावा है, न 'फ़िराक़' साहब ऐसे सुन्दर, सरस तथा संगीतपूर्ण शेर लिखना मेरे बस की बात। फिर भी मैं अपने इन दोनों बुज़ुर्गों को आपसी खेंचा-तानी से हाथ खींचने का परामर्श देते हुए किसी प्रकार का दुःसाहस नहीं कर रहा। 'फ़िराक़' साहब अपनी ग़ज़लों में 'असर' साहब पर इस प्रकार कीचड़ उछालते हैं :

वो मेरे मशफ़िक़ 'असर' साहब हैं जिन पर मोतरिज़[8]
कुछ समझ में आ तो सकते हैं लियाक़त चाहिये॥
जैसी तनक़ीदें[9] 'असर' लिखते हैं ऐसी तो हर एक।
फेंक देगा लिख के तौफ़ीक़े-हमाक़त[10] चाहिये॥

और उत्तर में 'असर' साहब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, 'फ़िराक़'

---

१ प्रेमी और प्रेमिका का मिलन २. सौंदर्य ३ कवारापन ४. पिंजरे की ५ शून्य (आकाश) ६ उड़ने की अभिलाषा ७ सिर से पाँव तक वह (महबूब) ओस और फूलों का प्रतिरूप है ८ एतराज करते हैं ९ आलोचनायें १०. मूर्खता की सामर्थ्य

अनभिज्ञ हैं। और अँग्रेज़ी साहित्य में तो इसका सबसे बड़ा प्रमाण शेक्सपियर है जिसके सम्बन्ध में अब भी समालोचकों का मत है कि वे व्याकरण बिल्कुल नहीं जानते थे और अशुद्ध भाषा लिखते थे। लेकिन······

'रूहे-कायनात', 'शोला-ए-साज़', 'मशग़ल', 'रूप', 'गबनमिस्तान', 'रमज़ो-कनायात' इत्यादि कविता-संग्रहों के रचयिता 'फ़िराक़' गोरखपुरी आधुनिक काल के उन बड़े उर्दू शायरों में से हैं जिनकी संख्या अधिक नहीं, जिन्हें प्रगतिशील कवि कहलवाने का गौरव प्राप्त है, और जिनका नाम मीर, ग़ालिब, इक़बाल, जोश और जिगर के साथ लिया जाता है।

ग़ज़लें

डरता हूँ कामयाबी-ए-तक़दीर[1] देख कर।
यानी सितमज़रीफ़ी-ए-तक़दीर[2] देख कर॥
क़ालिब[3] में रूह फूंक दी या ज़हर भर दिया।
मैं मर गया हयात[4] की तासीर[5] देखकर॥
हैराँ हुए न थे जो तसव्वुर[6] में भी कभी।
तस्वीर हो गये तेरी तस्वीर देखकर॥
ख्वाबे-अदम[7] से जागते ही जो थे बन गई।
ज़हराबा-ए-हयात[8] की तासीर देखकर॥
ये भी हुआ है अपने तसव्वुर में होके महव[9]।
मैं रह गया हूँ आपकी तस्वीर देखकर॥
सब मरहले हयात के तै करके अब 'फ़िराक़'।
बैठा हुआ हूँ मौत में ताख़ीर[10] देखकर॥

० ० ०

उम्मीदे-मर्ग[11] कब तक, ज़िन्दगी का दर्दे-सर कब तक ?
ये माना सब्र करते हैं मोहब्बत में, मगर कब तक ?
दियारे-दोस्त[12] हद होती है यूं भी दिल बहलने की !
न याद आयें ग़रीबों[13] को तेरे दीवारो-दर कब तक ?

---

१. भाग्य की सफलता २ भाग्य का मज़ाक़ ३. शरीर ४. जीवन ५. गुण, प्रभाव ६. कल्पना ७ नास्तित्व ८. जीवन का विष ९. निमग्न १० विलम्ब ११. मृत्यु की आशा १२. मित्र का देश १३. प्रवासी

रुबाइयां

घर छोड़े हुओं की कोई मंजिल न सही।
होती नहीं सहल कोई मुश्किल न सही ॥
हस्ती[1] की ये रात काट देने के लिए।
वीराना सही, किसी की महफ़िल न सही ॥

◇ ◇ ◇

खोते हैं अगर जान तो खो लेने दे।
जो ऐसे में हो जाये वो हो लेने दे ॥
एक उम्र पड़ी है सब्र भी कर लेंगे।
इस वक़्त तो जी खोल के रो लेने दे ॥

◇ ◇ ◇

क़तरे अरक़े-जिस्म के[2] मोती की लड़ी।
है पैकरे-नाज़नीं[3] कि फूलों की छड़ी ॥
गर्दिश में निगाह है कि बटती है हयात[4]।
जन्नत भी है आज उम्मीदवारों में खड़ी ॥

◇ ◇ ◇

संजोग वियोग की कहानी न उठा।
पानी में भीगते कंवल को देखा ॥
बीती होंगी सुहाग रातें कितनी।
लेकिन है आज तक कंवारा नाता ॥

◇ ◇ ◇

---

१. जीवन २. शरीर के पसीने के ३. प्रेयसी का वदन ४. जीवन

फुटकर शेर

ग़रज़ कि काट दिये ज़िन्दगी के दिन ऐ दोस्त ।
वो तेरी याद में हों या तुझे भुलाने में ॥

० ० ०

मंज़िलें गर्द[1] के मानिंद उड़ी जाती हैं ।
वही अन्दाज़े-जहाने-गुज़राँ[2] कि जो था ॥

० ० ०

हज़ार बार ज़माना इधर से गुज़रा है ।
नई-नई सी है कुछ तेरी रहगुज़र फिर भी ॥

० ० ०

ये ज़िन्दगी के कड़े कोस, याद आता है ।
तेरी निगाहे-करम[3] का घना-घना साया ॥

० ० ०

मुनासबत[4] भी है कुछ ग़म से मुझको और ऐ दोस्त ।
बहुत दिनों से तुझे मेहरबां नहीं पाया ॥

० ० ०

कुछ आदमी को हैं मजबूरियां भी दुनिया में ।
अरे वो दर्द-मुहब्बत सही, तो क्या मर जाएँ ॥

० ० ०

मुझे ख़बर नहीं है ऐ हमदमो, सुना ये है ।
कि देर-देर तक अब मैं उदास रहता हूँ ॥

० ० ०

एक तेरे छुटने का ग़म, एक ग़म उनसे मिलने का ।
जिनकी इनायतों[5] से जी और उदास हो गया ॥

० ० ०

१ धूल २. काल-चक्र की रीति ३ कृपा-दृष्टि ४ सम्बंध, लगाव
५. कृपाओं

देखिये कब इस निज़ामे-ज़िन्दगी[1] सुबह हो।
आसमानों को भी जैसे आ रही है नींद सी॥

◇ ◇ ◇

मुद्दतें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें।
और हम भूल गये हों तुझे, ऐसा भी नहीं॥

◇ ◇ ◇

कहां का वस्ल[2] तनहाई ने शायद भेस बदला है।
तेरे दम भर के आ जाने को हम भी क्या समझते हैं॥

◇ ◇ ◇

न कोई वादा, न कोई यक़ीं, न कोई उमीद।
मगर हमें तो तेरा इन्तज़ार करना था॥

◇ ◇ ◇

उस रहगुज़ार पर है रवां कारवाने-इश्क़।
कोसों जहां किसी को खुद अपना पता नहीं॥

◇ ◇ ◇

ज़िन्दगी क्या है आज इसे ऐ दोस्त।
सोच लें और उदास हो जायें॥

◇ ◇ ◇

---

१. जीवन के विधान २. मिलाप

'हफ़ीज़' जालंधरी

तशकीलो-तकमीले-फ़न में जो भी 'हफ़ीज़' का हिस्सा है
निस्फ़ सदी का क़िस्सा है दो-चार बरस की बात नहीं

हफ़ीज़

आपने अपनी आयु में इस प्रकार की कथायें अवश्य सुनी होंगी कि एक बार जब मारे गर्मी के चील अंडा छोड़ रही थी और मनुष्य, पशु सब की ज़बानें बाहर निकल आई थी तो बैजूबावरा ने मल्हार गा दिया और देखते-देखते मूसलाधार वर्षा होने लगी। या तानसैन ने आधी रात को दीपक-राग छेड़ दिया और शहर भर के बुझे हुए दीपक आप ही आप जल उठे।

ऐसी कथाओं को आप मनघड़ंत और कल्पित बातें कह सकते हैं लेकिन इन कथाओं मे काव्य-विषय और उसके रूप (संगीत धर्म) के परस्पर सम्बन्ध की ओर जो स्पष्ट संकेत मिलता है, उसकी किसी प्रकार अवहेलना नही की जा सकती और यही कारण है कि किसी महान् कवि की किसी रचना के बारे में कभी इस प्रकार की बातें सुनने में नही आई कि कविता का विषय तो शृंगाररस का है और शब्द भक्तिरस के प्रयुक्त किये गये है।

मोहम्मद हफ़ीज़ 'हफ़ीज़' जालंधरी की शायरी का अध्ययन करने से जो बात सबसे पहले हमें अपनी ओर खींचती है, वह यही विषय और रूप का परस्पर सम्बन्ध है। उसके यहाँ एक शब्द पर दूसरा शब्द, एक पंक्ति पर दूसरी पंक्ति और एक शेर पर दूसरा शेर इस प्रकार ठीक बैठा हुआ और उसे आगे बढ़ाता हुआ मिलता है, मानो किसी चित्र पर पड़ा हुआ पर्दा सरक रहा हो। और फिर जब पूरा चित्र हमारे सामने आता है तो जाना-पहचाना होने पर भी हमें उसमें कुछ ऐसा नया अर्थ, नया प्रसंग और नया सौंदर्य नज़र आने लगता है कि हम उस पर से नज़रें हटाना पसंद नही करते। नये और पुरानेपन के इस

समावेश से 'हफ़ीज' ने अपने यहाँ जो निरालापन उत्पन्न किया है, वह आधारित है उसके छोटे-छोटे संगीतधर्मी छन्दों के चुनाव पर (जिसके लिए उसने हिन्दी पिंगल का भी आश्रय लिया है), विचारों की एकाग्रता पर, चित्र चित्रण के लिए चित्र से मेल खाती हुई उपमाओं पर। अतएव जब हम उसकी कविता 'वसंत' या 'अभी तो मैं जवान हूँ' पढ़ते हैं (या उसके मुँह से सुनते हैं) तो हम पर एक विचित्र प्रकार की मस्ती और उन्माद सा छा जाता है। 'जलवा ए-सहर' के विषय-वस्तु की ओर ध्यान दिये बिना केवल शब्दों के उतार-चढ़ाव से ही ऐसा मालूम होता है, जैसे नींद में डूबा हुआ पूरा संसार जाग उठा हो और एक अंतिम अंगड़ाई के साथ सारी शिथिलता को परे झटक कर दिनचर्या के लिये तैयार हो रहा हो। 'तारों भरी रात' सुनते समय न केवल पूरे विश्व के सो जाने का विश्वास हो जाता है, बल्कि स्वयं सुनने वाले पर निद्रा आक्रमण करने लगती है, और जब हम 'बरसात' सुनते हैं तो लगता है, वर्षा ऋतु में हम किसी बाग़ की सैर कर रहे हैं, झूला झूलने वाली मल्हार गा रही हैं और उनके अरमानों भरे गीत हमारे दिल में हूक-सी उत्पन्न कर रहे हैं।

'उसके मुँह से सुनते हैं' लिखने की आवश्यकता मुझे इसलिए हुई कि एक बड़ा शायर होने के साथ-साथ 'हफ़ीज' एक बड़ा अभिनेता भी है। आज तक कोई ऐसा मुशायरा (कवि-सम्मेलन) दूसरे शायरों के लिये 'शुभ' सिद्ध नहीं हुआ जिसमें 'हफ़ीज' मौजूद हो। अपनी एक-दो तानों से ही वह पूरे मुशायरे पर छा जाता है और लोग-बाग बार-बार उसी के शेर सुनने की फ़र्माइश करने लगते हैं। लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं है कि वह केवल मुशायरों का शायर है और उसकी सफलता का भेद उसकी गलेबाजी या उसकी विभिन्न शारीरिक हरकतों में निहित है और इसलिये उसे गायक या मसखरा कहकर टाला जा सकता है। (शुरू-शुरू में ऐसी कोशिशें जरूर की गई थीं) नहीं, गायक या मसखरे की बजाय मौलिक रूप से वह न केवल एक बड़ा शायर है बल्कि उर्दू शायरी में वह एक कड़ी का सा महत्व रखता है और मेरे इस कथन में शायद संदेह की कम गुंजाइश होगी कि 'इक़बाल' के तुरंत बाद जिन उर्दू-शायरों ने शायरी को जीवन के निकटतर लाने, विषय से सम्बन्ध खाते हुए छन्दों का 'आविष्कार' करने और खूब सोच-समझ कर भाषा तथा शैली को सरल बनाने के सफल प्रयास किये हैं और इस प्रकार नये शायरों के लिये नई राहें खोली हैं, उनमें 'अख़्तर' शीरानी और 'हफ़ीज' जालंधरी का नाम सबसे ऊपर आता है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक और प्राचीन घटनाओं को 'शाहनामा

इस्लाम' (चार संस्करण) के नाम से काव्य का रूप देने और शुष्कता तथा गद्य से स्वच्छ रखने में 'हफ़ीज़' ने जिस कलात्मक निपुणता का प्रमाण दिया है, निःसंदेह वह उसी का काम था। फ़िर्दौसी (प्रसिद्ध ईरानी कवि) ने महमूद ग़ज़नवी के कहने पर 'शाहनामा' लिख कर ईरान के बादशाहों की महानताओं को फिर से जीवित करने का जो अद्वितीय काम किया था, ठीक उसी प्रकार 'हफ़ीज़' ने अपनी धार्मिक भावनाओं से प्रभावित होकर इस्लामी इतिहास और इस्लाम की आन-बान को ज़िन्दा करने की कोशिश की है।

'शाहनामा इस्लाम' के अतिरिक्त उसकी कविताओं के कई और संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें 'नगमा-ए-ज़ार', 'सोज़ो-साज़' और 'तलख़ावा-ए-शीरीं' उल्लेखनीय हैं। इन संग्रहों की नज़्मों, गज़लों और गीतों की विशेषता वही असाधारण प्रभाव है, जिसमें पाठक आप ही आप बहता चला जाता है।

१९२१ में जब उसने पहले-पहल परम्परागत शायरी से हटकर नया रंग अपनाया तो, जैसा कि सदैव होता है, रूढ़िवादियों ने उस पर अपने छुरी-काँटे तेज़ किये। इस बारे में हफ़ीज़ एक स्थान पर स्वयं लिखता है :

"मुझे ऐसे लोगों की भीड़-भाड़ में से राह निकालनी पड़ी है जिनका बोध अभी दबोच लेने, तिक्का-बोटी कर डालने और खा जाने से आगे नहीं बढ़ा। साहित्य-वाटिका उनकी शिकारगाह है। मुझे उनके इक्के-दुक्के से भी वास्ता पड़ा और उनकी टोलियाँ भी मुझ पर लपकी—झपटी। पहले ये भभकी देते है, कोई डर जाये या उलझ पड़े तो उसकी खैर नहीं। उनसे बचने के लिए केवल एक शस्त्र उपयोगी है—बेपरवा मुस्कराहट।"

अतएव उसने अपने इसी शस्त्र का प्रयोग किया और कान लपेटकर, मुस्कराता हुआ, अपनी डगर पर चलता रहा और अब तक चल रहा है।

उर्दू शायरी के इस निराले पथिक का जन्म १४ जनवरी १९०० को जालंधर (पंजाब) में हुआ। इस प्रसंग से यह शताब्दि और वह साथ-साथ चल रहे हैं। स्वयं उसके कथनानुसार कोई अन्य होता तो एक इसी आधार पर शायर से कहीं उच्च पदवी की मांग कर बैठता—"यह मेरा अहसान है कि मैं शायर होने का ज़िक्र भी दबी ज़बान से करता हूँ।"

वह अभी बहुत छोटा था जब उसे मोहल्ले की मस्जिद में बिठा दिया गया, जहाँ ९ वर्ष की आयु में ही उसने क़ुरान शरीफ़ पढ़ लिया, बहुत से सूरे (क़ुरान शरीफ़ के खंड) कंठस्थ कर लिए और करीमा और मामकीमा (शेख सादी (ईरानी कवि) की बच्चों की नज़्में) रट ली। लेकिन इससे आगे वह मस्जिद

म न चल सका, जिसका कारण उसके कथनानुसार नैतिक भी था और भौतिक भी। फिर उसे मिशन स्कूल मे भरती कराया गया, लेकिन वहाँ मे वह दूसरी कक्षा ही से भाग निकला। सरकारी पाठशाला मे प्रविष्ट हुआ चौथी कक्षा मे था कि वहा से भी भाग लिया। आर्य पाठशाला म और फिर मिशन हाई स्कूल म ले जाया गया लेकिन 'गणित' से उसकी जान जाती थी और 'गणित' के घटे म वह प्रतिदिन भाग निकलता था, अत दूसरे दिन उसकी खूब पिटाई होती थी। भागने और पिटने के इस सघर्ष म आखिर भागने की विजय हुई और वह सातवी कक्षा से ऐसा भागा कि फिर कभी पाठशाला का मुँह न देखा।

यह बात सचमुच आश्चर्यजनक है कि इतनी कम शिक्षा और घर के अत्यत असाहित्यिक वातावरण के होते हुए उसने सात वर्ष की छोटी-सी आयु म तुकबन्दी शुरू कर दी और फिर ग्यारह वर्ष की आयु म बाकायदा शेर कहने लगा। अपने उन दिनो के बारे म स्वय उसका बयान देखिये

'मेरे घराने पर मौत झपट रही थी। मेरे भाइयों को प्लेग और हैजा लिये जा रहे थे और मुझे काफ़िये और गज़ल।

क़ाफ़िये और ग़ज़ल के लिए नियमानुसार उसे किसी 'उस्ताद' की जरूरत पडी। अतएव उसने करीबी बस्ती के एक शायर सरफराज खा सरफ़राज़ (जो उसके कथनानुसार उस ज़माने म जैसे शेर कहते थे आज बुढ़ापे म भी वैसे ही कहते हैं) की शरण ली। लेकिन सौभाग्यवश उन्होंने कोई विशेष परामर्श न दिया। फिर फ़ारसी के एक महा पडित और कवि मौलाना गुलाम क़ादिर 'गिरामी' को कुछ गजलें दिखाई जिस पर 'गिरामी' साहब ने मश्वरा दिया कि किसी का शिष्य बनने की बजाय उसे स्वय ही अपनी रचनाओ पर बार-बार आलोचनात्मक दृष्टि डालनी चाहिये। अत इस मश्वरे पर अमल करते हुए उसने फिर किसी 'उस्ताद' के आगे घुटने नहीं टेके और अन्त म इस दावे का हकदार हो गया कि

अहले-ज़बा तो हैं बहुत, कोई नही है अहले दिल।
कौन तेरी तरह 'हफ़ीज़' दर्द के गीत गा सका ?

और

'हफ़ीज़' अहले-ज़बा कब मानते थे।
बड़े ज़ोरो से मनवाया गया हूँ॥

आज 'हफ़ीज़' जालधरी जिस 'अब्बुलअसर' (प्रभावशालियों का पिता) कहा जाता है जिसकी कविता सम्बन्धी सेवाओ के आधार पर (कदाचित् युद्ध के पश

(२)

इबादतों का ज़िक्र है निजात[1] की भी फ़िक्र है,
जनून है सवाब[2] का ख़याल है अज़ाब[3] का,

मगर सुनो तो शैख़ जी !
अजीब शै हैं आप भी !
भला शबाबो - आशिक़ी,
अलग हुए भी हैं कभी ?

हसीन जलवारेज़ हों[4] अदायें फ़ितनाखेज़[5] हों,
हवायें इत्रबेज़[6] हों तो शौक़ क्यों न तेज़ हों,

निगार-हाये फ़ितनागर[7] ,
कोई इधर कोई उधर,
उभारते हैं ऐश पर,
तो क्या करे कोई बशर[8] ?

चलो जी क़िस्सा मुख़्तसर तुम्हारा नुक़्ता-ए-नज़र[9] ,

दुरुस्त है तो हो, मगर,
अभी तो मैं जवान हूँ !

---

१. मुक्ति २. पुण्य ३. पापों का दण्ड ४. जलवे दिखा रहे हों ५. फ़ितने खड़े करने वाली ६. सुगंधियां बिखेर रही हों ७. फ़ितने उठाने वालों (माशूक़ों) के मुखड़े ८. प्राणी ९. दृष्टिकोण (विचार)

(३)

ये गश्त[1] कोहसार[2] की ये सैर जूएबार[3] की,
ये बुलबुलों के चहचहे ये गुलरुखों के[4] कहकहे,

किसी से मेल हो गया,
तो रंजो-फ़िक्र खोगया,
कभी जो बख़्त[5] सो गया,
ये हँस गया वो रोगया,

ये इश्क़ की कहानियां ये रस भरी जवानियां,
उधर से मेहरबानियां इधर से लनतरानियां[6]

ये आसमान ये जमीं,
नज़्ज़ाराहाये दिलनशीं[7],
इन्हें हयात - आफ़रीं[8],
भला मैं छोड़ दूं यहीं।

है मौत इस कदर करीं[9] मुझे न आयेगा यकीं,

नहीं-नहीं, अभी नहीं,
अभी तो मैं जवान हूं।

---

१ सैर २ पहाड़ी स्थान ३ नदी किनारा ४ फूलों जैसे चेहरे वालों के ५ भाग्य ६ डींगें ७ सुन्दर दृश्य ८ जी— ९ निकट

गीत

जाग सोज़े-इश्क़[1] जाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग !!

जाग काम देवता फ़ितना - हाए नौ[2] जगा ।
बुझ गया है दिल मेरा फिर कोई लगन लगा ॥

सर्द हो गई है आग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

पड़ गई दिलों में फूट क्या विजोग पड़ गया ।
पृथ्वी पे चार खूंट एक सोग पड़ गया ॥

सर नगूं[3] है शेशनाग !
जाग सोज़े - इश्क़ जाग ॥

तूने आंख बंद की कायनात[4] सोगई ।
हुस्ने - खुदपसंद[5] की दिन से रात हो गई ॥

ज़र्द पड़ गया सुहाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

अब न वो सफ़र न सैर रहबरी न रहज़नी ।
कुछ नहीं तेरे बग़ैर दोस्ती न दुश्मनी ॥

अब लगाव है न लाग !
जाग सोज़े-इश्क़ जाग ॥

---

१. प्रेम-ज्वाला २. नये फ़ितने ३. सिर झुकाये हुए ४. ब्रह्मां[illegible]
५. आत्मप्रशंसक सौंदर्य

ऐ मुग़न्नी-ए-शबाब[1] जाग ख़्वाबे-नाज़ से।
दिन शिकस्ता है ख़्वाब अर्सा-ए-दराज़ से[2]॥

मर गये क़दीम[3] राग।
जाग सोज़े इश्क़ जाग॥

तू जो चश्म वा करे[4] हर उमंग जाग उठे।
आहो-नाला जाग उठे राग रंग जाग उठे॥

जोग से मिले विहाग।
जाग सोज़े इश्क़ जाग॥

फिर उसी उठान से तीर उठे कमां उठे।
साज़ की ज़बान से शोर अलअमां[5] उठे।

जाग उठे दिलों के भाग।
जाग सोज़ इश्क़ जाग॥

जाग ऐ नज़र फ़िरोज़[6] जाग ए नज़र नवाज़[7]।
जाग ऐ ज़माना सोज़[8] जाग ए ज़माना साज़॥

जाग नींद को तियाग[9]।
जाग सोज़ इश्क़ जाग॥

---

१ यौवन के गायक २ बहुत समय से ३ प्राचीन ४ आँख खोले ५ हे भगवान! ६ ७ नज़र को रौनक प्रदान करने वाला ८ ज़माने को जला देने वाला ९ त्याग

हुस्न पाबंदे-रज़ा[1] हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं।
मैं कहूं, तुम मुझे चाहो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
फिर कभी खब्ते-वफ़ा[2] हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं।
फिर कोई दोस्त खफ़ा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
जिस ने इस दौर के इन्सान किये हैं पैदा।
वही मेरा भी खुदा हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
हश्र के दिन मुझे सच कहने की तौफ़ीक़ न दे।
कोई हंगामा बपा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
हुस्न वाले मेरे क़ातिल हैं ये दावा है मेरा।
हुस्न वालों को सजा हो, मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
दोस्तों को भी मिले दर्द की दौलत या रब!
मेरा अपना ही भला हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥
ऐ बुतो तुम पे अंबाधुंद मरे खल्क़े-खुदा[3]।
और खुदा देख रहा हो मुझे मन्ज़ूर नहीं॥

---

१. इच्छा में आबद्ध २. वफा करने का उन्माद ३. दुनिया

फुटकर शेर

दीवानगी-ए-इश्क़[1] के बाद, आ ही गया होश।
और होश भी वो होश कि दीवाना बना दे॥
हम ख़ून-जिगर पी के चले जायेंगे साक़ी।
ले शीशा-ए-दिल[2] तोड़ दे पैमाना बना दे॥

◊ ◊ ◊

इश्क़ न हो तो दिल्लगी, मौत न हो तो ख़ुदकुशी।
ये न करे तो आदमी आख़िर-कार क्या करे?

◊ ◊ ◊

हाय किस दर्द से की अक़्ल की तलक़ीन[3] मुझे।
हँस पड़े दोस्त जो मैंने कभी रोना चाहा।
आने वाले किसी तूफ़ान का रोना रोकर।
नाख़ुदा[4] ने मुझे साहिल पे डुबोना चाहा॥

◊ ◊ ◊

फ़रिश्ता था न मैं शैतान समझा।
नतीजा ये कि बहकाया गया हूँ॥
मुझे तो इस ख़बर ने खो दिया है।
सुना है मैं कहीं पाया गया हूँ॥

◊ ◊ ◊

हो गया जब इश्क़ हम आग़ोशे-तूफ़ाने शबाब[5]।
अक़्ल बैठी रह गई साहिल पे शरमाई हुई॥

◊ ◊ ◊

अब इब्तिदा-ए-इश्क़ का आलम[6] कहाँ 'हफ़ीज़'।
कश्ती मेरी डुबो के वो दरिया उतर गया॥

◊ ◊ ◊

१. इश्क़ का दीवानापन २. दिल रूपी शीशा ३. हिदायत ४. मांझी
५. यौवन के तूफ़ान में बग़लगीर ६. इश्क़ के आरंभ की स्थिति

परिचय

'अख्तर' शीरानी का नाम ज़बान पर आते ही 'गेटे' का वह कथन याद आ जाता है जिसमें इस जर्मन दार्शनिक ने प्रेम तथा वेदना की भावना का ज़िक्र करते हुए कहा था कि प्रेम और वेदना की भावना विश्व की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है, लेकिन इसका सजीव रूप नारी है।

जहाँ तक नारी को और उसके कारण प्रेम तथा वेदना को अपना काव्य-विषय बनाने का प्रश्न है, गेटे के इस 'सजीव रूप' को हम वर्ड्सवर्थ के यहाँ 'लूसी' के रूप में देखते हैं, कीट्स की कविता में वह 'फ़ैनी ब्रौनी' बनकर हमारे सामने आता है और उर्दू का सब से बड़ा रोमांसवादी शायर 'अख्तर' शीरानी उसे 'सलमा' कहकर पुकारता है।

उर्दू के कुछ समालोचकों की दृष्टि में 'अख्तर' की 'सलमा' भी वर्ड्सवर्थ की 'लूसी' और कीट्स की 'फ़ैनी' की तरह कवि की कल्पित प्रेयसी है—एक पवित्र परछाईं, एक अलौकिक सुन्दरी—क्योंकि 'सलमा' के अतिरिक्त 'अख्तर' के यहाँ 'रेहाना', 'अज़रा,' 'शीरीं', 'सलमा' इत्यादि कई नायिकाओं का उल्लेख मिलता है और समान मधुरता और भावुकता के साथ मिलता है।

'अख्तर' अपनी 'सलमा' की प्रशंसा करते हुए कहता है :

बहारे-हुस्न[1] का तू गुन्चा-ए-शादाब[2] है सलमा,
तुझे फ़ितरत ने अपने दस्ते-रंगीं से[3] सँवारा है,
बहिश्ते-रंगो-बू का[4] तू चपपा इक नज़ारा है,

१. सौन्दर्य के वसन्त २. पल्लवित कलि ३. रंगीन हाथों से ४. रंग और सुगंधि के स्वर्ग का

तेरी सूरत सरासर पैकरे-महताब[1] है सलमा,
तेरा जिस्म इक हुजूमे-रेशमो-कमख्वाब[2] है सलमा,
शबिस्ताने-जवानी[3] का तू इक जिन्दा सितारा है,
तू इस दुनिया में बहरे-हुस्ने-फितरत[4] का किनारा है,
तू इस संसार में इक आसमानी ख्वाब है सलमा।

और 'अजरा' के सम्बन्ध में वह कहता है

परी-ओ-हूर की तस्वीरे-नाजनी 'अजरा'।
शहीदे-जलवा-ए-दीदार[5] कर दिया तू ने।
नजर को महशरे-अनवार[6] कर दिया तू ने॥
बहारो-ख्वाब की तनवीरे-मरमरी[7] 'अजरा'।
शराबो-शेर की तफसीरे-दिलनशी[8] 'अजरा'।

और 'रेहाना' के बारे में लिखता है

उसे फूलों ने मेरी याद में बेताब देखा है।
सितारों की नजर ने रात भर बेख्वाब देखा है॥
वो शम्मए-हुस्न[9] थी, पर सूरते-परवाना[10] रहती थी।
यही वादी है वो हमदम[11] जहाँ 'रेहाना' रहती थी॥

लेकिन 'अख्तर' के एक परम मित्र हकीम नय्यर वास्ती ने अभी हाल में 'अख्तर व सलमा' नामक एक पुस्तक में बड़े विस्तार से बताया है कि 'सलमा' शायर की कोई कल्पित प्रेयसी नहीं बल्कि इसी संसार की एक जीवित सुन्दरी थी जो लाहौर में रहती थी और जिससे शायर को असीम प्रेम था और जो स्वयं भी उसे जी-जान से चाहती थी। दोनों में बराबर पत्र-व्यवहार होता था, लेकिन सामाजिक प्रतिबन्धों के कारण वे जीवन में केवल दो-तीन बार ही एक दूसरे से मिल पाये, और जब 'सलमा' का विवाह हो गया और वह लाहौर से गुजरात चली गई तो शायर के लिए उसका विछोह असह्य हो उठा। वह दिन-रात शराब के नशे में गर्क रहने लगा और उसके दिल के तारों से ऐसे नगमे फूट निकले जो उर्दू की रोमांसवादी शायरी के लिए अन्तिम शब्द बन गये।

वास्तविकता जो भी हो, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 'सलमा'

---

१. चाँद की मूर्ति २ रेशम का ढेर ३ जवानी के शयनागार ४. प्रकृति के सौन्दर्य के सागर का ५ दर्शन के जलवे का शहीद ६ प्रलयक्षेत्र की ज्योति ७ मरमरी आलोक ८ हृदय-स्पर्शी व्याख्या ९ सौन्दर्य का दीपक १०. पतंगे की तरह ११ साथी

ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

ऐ इश्क़ न छेड़ आ-आके हमें, हम भूले हुओं को याद न कर,
पहले ही बहुत नाशाद[1] हैं हम, तू और हमें नाशाद न कर,
क़िस्मत का सितम ही कम तो नहीं ये ताज़ा सितम ईजाद न कर,
यूं जुल्म न कर बेदाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

जिस दिन से मिले हैं दोनों का सब चैन गया आराम गया,
चेहरों से बहारे-सुबह गई आंखों से फ़रोग़े-शाम[2] गया,
हाथों से ख़ुशी का जाम छुटा होंटों से हंसी का नाम गया,
ग़मगीं न बना नाशाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

रातों को उठ-उठ रोते हैं, रो-रो के दुआयें करते हैं,
आंखों में तसव्वुर[3] दिल में ख़लिश[4] सर धुनते आहें भरते हैं,
ऐ इश्क़, ये कैसा रोग लगा जीते हैं न ज़ालिम मरते हैं,
ये ज़ुल्म तू ऐ जल्लाद न कर,
ऐ इश्क़ हमें बर्बाद न कर !

ये रोग लगा है जब से हमें, रंजीदा हूं मैं बीमार है वो,
हर वक़्त तपिश, हर वक़्त ख़लिश बेख़्वाब[5] हूं मैं बेदार[6] है वो,
जीने से इधर बेज़ार हूं मैं मरने पे उधर तैयार है वो,
और ज़ब्त कहे फ़र्याद न कर,
बर्बाद न कर !

अख्तर शीरानी

खलवते - रूह मे[1] आबाद है उल्फत उसकी।
मेरे जज्बात पे तारी[2] है लताफत[3] उसकी।
और कुछ याद नही इसके सिवा आज की रात!
लेकिन इज़हारे - खयालात[4] करेंगे क्योकर?
शर्म आती है मुलाकात करेंगे क्योकर?
बात करनी है मगर बात करेंगे क्योकर?
खत्म ये ख्वाब की सी रात करेंगे क्योकर?
आह ये आज की ये ख्वाबनुमा[5] आज की रात!
ऐ दिल ऐसा न हो कुछ बात बनाये न बने।
हाले - दिल जो भी सुनाना है सुनाये न बने।
पास आयें तो मगर पास बिठाये न बने।
शर्म के मारे उन्हे हाथ लगाये न बने।
कि तसव्वुर[6] से भी आती है हया[7] आज की रात!
यूं तो हर तरह अदब[8] मद्दे - नज़र रखना है।
हसरते - दिल का[9] लिहाज़ आज मगर रखना है।
बेखुदी! देख, तुझे मेरी खबर रखना है।
नाजनी कदमो पे[10] यूं नाज से सर रखना है।
कि तड़प उट्ठे दिले-अर्जो-समा[11] आज की रात!
हम में कुछ जुर्रते-गोयाई[12] भी होगी कि नही?
हिम्मते - नासियाफर्साई[13] भी होगी कि नही?
शर्म से दूर शिकेबाई[14] भी होगी कि नही?
यूसुफे-दिल जुलेखाई भी होगी कि नही[15]?
यूसुफे-दिल जुलेखाई भी होगी कि नही[15]?
आज की रात उफ, ओ मेरे खुदा आज की रात!

---

१. आत्मा के एकान्त मे २. छाई हुई ३ लालित्य, माधुर्य ४. विचारों का प्रकटीकरण ५. स्वप्निल रूपी ६. कल्पना ७ लज्जा ८. शिष्टाचार ९. दिल की हसरत का १० (प्रेयसी के) सुकोमल पैरों पर ११. धरती तथा आकाश का हृदय १२. बोलने का साहस १३ माथा टेकने का साहस १४ झिझक १५ जुलेखा के प्रेमी यूसुफ की ओर संकेत है कि तू प्यार कर सकेगा या नही?

अब्दुलहमीद 'अदम'

मैं मैकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का काफ़ी तवील था

मरदान (सरहद प्रान्त, पाकिस्तान) में हुआ। दरअस्ल, शिक्षा आदि के जानने की बहुत कोशिश करने पर भी मुझे केवल इतना मालूम हो सका है कि उसकी शिक्षा बी० ए० तक की है। पिछले दिनों एक इंडो-पाकिस्तान मुशायरे के सिल-सिले में वह दिल्ली आया था और मेरा इरादा था कि उससे भी खोलकर बातें करूँगा और वह सब कुछ पूछ लूँगा जिसकी मुझे इस पुस्तक के लिए आव-श्यकता थी, लेकिन उस मुशायरे में तो क्या लाख ढूँढने पर वह पूरी दिल्ली में भी कहीं नज़र न आया और केवल उस समय उसकी खबर मिली जब वह वापस कराची पहुँच चुका था तो प्रत्यक्ष है कि मुझे सुनी-सुनाई बातों का सहारा लेना पड़ा। इस प्रसंग में मुझे उसके एक मित्र और उर्दू के तरुण शायर नरेशकुमार 'शाद' से यथेष्ट सहायता मिली क्योंकि दिल्ली में एक 'शाद' ही था जिसे मालूम था कि 'अदम' सचमुच दिल्ली में है। 'शाद' से मुझे मालूम हुआ कि अपनी नौकरी के बारे में ('अदम' पाकिस्तान सरकार के आडिट एण्ड अकाउंट्स विभाग में गज़ेटिड अफ़सर हैं) बहुत होशियार और ज़िम्मेदार है। हाँ, यह अलग बात है कि किसी दिन यदि उसका दफ़्तर जाने को जी न चाहे तो दफ़्तर के अन्य कर्मचारी श्रद्धावश या न जाने किस कारण से उसका सारा काम स्वयं ही कर देते हैं। कराची में नियुक्त होने से पहले वह काफ़ी समय तक रावलपिंडी और लाहौर में भी रह चुका है और स्वर्गीय 'अख़्तर' शीरानी से उसकी गाढ़ी छनती थी (शायद मदिरापान की शौक़ के कारण)। अस्तु, उस 'अदम' में जो अपनी शायरी में नज़र आता है और उस 'अदम' में जिसे उसके घनिष्ठ मित्र जानते हैं, रत्ती बराबर फ़र्क़ नहीं है। अतः उसके व्यक्तित्व और शायरी की इस प्रवृत्ति का यह समन्वय अपनी समस्त त्रुटियों और हीनताओं के बावजूद उस विशेष लक्षण का साधक बना जिसे आम परिभाषा में 'कवि की उच्छृंखलता अथवा निर्लज्जता' कहा जाता है—अर्थात् कवि का वही बात कहना जो माँग तर्क की न होकर उसकी अपनी अनुभूतियों से उत्पन्न होती है और सैद्धांतिक मतभेद के बावजूद अपने में अपनी महानता मनवाने की क्षमता रखती है। एक शेर देखिये :—

नाज़ाँ मेरे जुनूँ[1] की शिद्दत[2] को देखना।
फिर आ रहा हूँ गर्दिशे-दौराँ[3] को टालकर

---

१. उन्मत्तता २. आधिक्य ३. संसारचक्र।

लेकिन शुद्धहृदयता-मात्र से भी बात नहीं बनती। शायरी में बात बनाने के लिए शुद्धहृदयता के साथ-साथ और भी बहुत कुछ आवश्यक है।' इस बोध की आवश्यकता होती है कि 'गर्दिशे-दौराँ' को टालना उतना ही कठिन है जितना शायर ने उसे इस शेर में सहल बताया है। अतएव क्रियात्मक जीवन के प्रति अवहेलना तथा चिन्तन की कमी ने उसे मयमस्ततावादी शायर बना दिया और उसने अपने इर्द गिर्द एक चारदीवारी खड़ी कर ली जिससे न वह स्वयं बाहर निकलना चाहता है और न यह चाहता है कि बाहर की गर्म हवा उसे लगे। लेकिन यहाँ फिर किसी व्यक्ति के चाहने या न चाहने का प्रश्न खड़ा होता है। और चूँकि कोई चाहे कितना ही घोर मयमस्ततावादी क्यों न हो आखिर को मनुष्य होता है और मनुष्य चाहे अपने गिर्द कितनी ऊँची और मजबूत दीवारें खड़ी कर ले बाहर की गर्मी सर्दी उसे ढूँढ ही लेती है अतः जब अदम ढूँढ लिया जाता है तो बेकसी के साथ ही सही सोचने पर वह अवश्य विवश हो जाता है

कभी-कभी तो मुझे भी ख्याल आता है।
कि अपनी सूरते-हालात[1] पर निगाह करूँ॥

और इस प्रकार जब वह उसी शुद्धहृदयता के साथ सूरते हालात पर निगाह करता है तो उसके कलम से

ये भवन के सहमे हुए बीमार इशारे।
क्या चारा-ए-नासाज़िये-हालात करेंगे[2]?

ऐसे शेर निकलने लगते हैं और कभी-कभी तो वह सूरते-हालात और नासाज़िये-हालात पर सोचने-सोचते मदिरा-स्तुति की सीमा से निकलकर एक दम विचारक और दार्शनिक बन जाता है

दूसरों से बहुत आसान है मिलना साकी।
अपनी हस्ती से मुलाकात बड़ी मुश्किल है॥

और

जहने फ़ितरत में थीं जितनी नाकशूदा उलझनें[3]।
एक मरकज़[4] पर सिमट आईं तो इन्साँ बन गईं॥

---

१ स्थिति २ दुःखपूर्ण परिस्थितियों का उपाय ३ प्रकृति के में कभी न सुलझने वाली जितनी उलझनें थीं ४ केन्द्र

सर रह गया है दोश पर ओ दिल नहीं रहा।
क्या इस जहान में कोई क़ातिल नहीं रहा ?
ऐ चश्मे - यार[1] अब न तग़ाफ़ुल[2] न इल्तफ़ात[3]।
क्या मैं किसी सलूक के क़ाबिल नहीं रहा ?
ऐ नाख़ुदा[4] ! सफ़ीने[5] का अब कोई ग़म न कर।
हम फ़र्ज़ कर चुके हैं कि साहिल नहीं रहा॥
पर्दा उठा कि अब मेरी मस्ती है मैं नहीं।
जिस से तुझे हया[6] थी वो हायल[7] नहीं रहा॥
कुछ तो तेरे ख़ुलूस की ताज़ीम[8] थी 'अदम'।
वरना वो जान - बूझ कर ग़ाफ़िल नहीं रहा॥

◇ ◇ ◇

दिल है बड़ी ख़ुशी से इसे पायमाल कर।
लेकिन तेरे निसार[9] ज़रा देख-भाल कर॥
इतना तो दिलफ़रेब न था दामे-ज़िन्दगी[10]।
ले आए एतबार के सांचे में ढाल कर॥
साक़ी मेरे ख़ुलूस की शिद्दत[11] को देखना।
फिर आगया हूँ गर्दिशे-दौरां[12] को टाल कर॥
ऐ दोस्त तेरी ज़ुल्फ़े-परीशां[13] की ख़ैर हो।
मेरी तबाहियों का न इतना ख़याल कर॥
लाया हूँ यूँ बचा के हवादिस से[14] ज़ीस्त[15] को।
लाते हैं जैसे कोह[16] से चश्मा निकाल कर॥
थोड़े से फ़ासले में भी हायल[17] हैं लग़ज़िशें[18]।
साक़ी संभाल कर, मेरे साक़ी संभाल कर॥
हम से 'अदम' छुपाओ तो ख़ुद भी न पी सको।
रक्खा है तुमने कुछ तो सुराही में डालकर॥

---

१. मित्र की दृष्टि २. बेपरवाही ३. कृपादृष्टि (प्रेम) ४. मांझी ५. नाव ६. लाज ७. बाधक ८. आदर, सम्मान ९. बलिहारी १०. जीवन का जाल ११. आधिक्य १२. संसार-चक्र १३. बिखरे केश १४. दुर्घटनाओं से १५. जीवन १६. पहाड़ १७. बाधक १८. लड़खड़ाहटें

जो लोग जान-बूझकर नादान बन गये।
मेरा खयाल है कि वो इन्सान बन गये॥
हम हश्र[1] मे गए थे मगर कुछ न पूछिये।
वो जान-बूझकर वहा अनजान बन गये॥
हसते हैं हमको देखकर अरबाबे-आगही[2]।
हम आपके मिजाज[3] की पहचान बन गये॥
मझधार तक पहुचना तो हिम्मत की बात थी।
साहिल के आस-पास ही तूफान बन गये॥
इन्सानियत की बात तो इतनी है शेख जी।
बदकिस्मती से आप भी इन्सान बन गये॥
काटे थे चद दामने-फितरत मे[4] ऐ 'अदम'।
कुछ फूल और कुछ मेरे अरमान बन गये॥

° ° °

मेखाना-ए-हस्ती मे अक्सर हम अपना ठिकाना भूल गये।
या होश से जाना भूल गये या होश मे आना भूल गये॥
असबाब[5] तो बन ही जाते हैं तकदीर की जिद को क्या कहिये?
इक जाम तो पहुचा था हम तक, हम जाम उठाना भूल गये॥
आये थे बिखेरे जुल्फो को इक रोज हमारे मरकद[6] पर।
दो अश्क[7] तो टपके आखो से, दो फूल चढाना भूल गये॥
चाहा था कि उनकी आखो से कुछ रगे-बहारा[8] ले लीजे।
तकरीब[9] तो अच्छी थी लेकिन, वो आख मिलाना भूल गये॥
मालूम नही आईने मे चुपके से हसा था कौन 'अदम'?
हम जाम उठाना भूल गये, वो साज बजाना भूल गये॥

° ° °

---

१. वह स्थान जहा प्रलय के बाद मनुष्य भगवान को अपने कर्मो का उत्तर देगा। २. होश वाले (बुद्धिमान्) ३ स्वभाव ४ प्रकृति की झोली मे ५. कारण ६. कब्र ७ आसू ८. बहारो का रग ९ शुभ

इक सितारा, इक कली, इक मै का क़तरा, एक ज़ुल्फ़।
जब इकट्ठे हो गये तामीरे-जन्नत[1] हो गई॥

◇ ◇ ◇

फ़ुर्सत का वक़्त ढूंढ के मिलना कभी अजल[2]।
मुझको भी काम है, अभी तुझको भी काम है॥

◇ ◇ ◇

महशर का खैर कुछ भी नतीजा हो ऐ 'अदम'!
कुछ गुफ़्तगू तो हम भी करेंगे ख़ुदा के साथ॥

◇ ◇ ◇

इश्क़ ने सौंपा है काम अपना, अब तो निभाना ही होगा।
मैं भी कुछ कोशिश करता हूं, आप भी कुछ इमदाद करें॥

◇ ◇ ◇

तख़लीक़े-कायनात[3] के दिलचस्प जुर्म पर।
हंसता तो होगा आप भी यज़दां[4] कभी-कभी॥

◇ ◇ ◇

पहुंच सका न मैं बरवक़्त अपनी मंज़िल पर।
कि रास्ते में मुझे रहबरों ने घेर लिया॥

◇ ◇ ◇

सिर्फ़ इक क़दम उठा था ग़लत राहे-शौक़[5] में।
मंज़िल तमाम उम्र मुझे ढूंढती रही॥

---

१. स्वर्ग का निर्माण २. मृत्यु ३. विश्व-निर्माण ४. भगवान
५. प्रेम-मार्ग

'साग़र' निज़ामी

आसान नहीं इस दुनिया में ख़्वाबों के सहारे जी सकना
संगीन हक़ीक़त है दुनिया ये कोई सुनहरी ख़्वाब नहीं

बचपन ही में किया मुझे ग़म ने शिकस्तापा[1] ।
तै होंगी कैसे मंज़िलें या रब शवाब की[2] ?
गर्दिश रही नसीब में या रब तमाम उम्र ।
'साग़र' बना के क्यों मेरी मिट्टी ख़राब की ॥

उस मुशायरे में तो 'साग़र' की मिट्टी खराब होने की बजाय उसे खूब-खूब दाद मिली, अलबत्ता घर पहुँचने पर उसकी मिट्टी ज़रूर खराब हुई। पिता डाक्टर थे और उन्हें बेटे की शायरी सुनने का नहीं, शायरी के कारण बेटे को पीटने का शौक़ था, अतएव 'साग़र' की खूब पिटाई हुई। लेकिन ज्यों-ज्यों 'साग़र' की पिटाई होने लगी त्यों-त्यों शायरी से 'साग़र' का सम्बन्ध और भी गहरा होता गया और उसके बाद कुछ वर्षों में ही अलीगढ़ से निकलकर उसका नाम पूरे भारत में फैल गया और हर मुशायरे के लिए बुलावे आने लगे।

स्वभाव में उद्दण्डता का तत्व तो बचपन ही से था, अतएव होश सम्भालने पर जब अपने कुल का इतिहास* सामने आया तो खून के आँसू रुला गया। अंग्रेज़ी शासन और देश की परतन्त्रता के प्रति घृणा-भाव तीव्रतर हो उठा और न केवल उसकी क़लम ने अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध विष उगलना शुरू किया बल्कि शिक्षा को नमस्कार कर वह क्रियात्मक रूप से स्वतन्त्रता-आंदोलन में शामिल हो गया। देश की स्वतन्त्रता और देश-प्रेम के सम्बन्ध में उसका यह फ़ैसला :

"जहाँ तक हिन्दोस्तान की आज़ादी, हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद (ऐक्य) और एक मुत्तहद (अखंड) आज़ाद मुल्क का सवाल है, मैं इनके मुक़ाबले में दुनिया की बादशाहत को ठुकरा दूँगा। मुझे हिन्दोस्तान और उसकी आज़ादी, अपने माँ-बाप, अपने भाई, अपनी बीबी और अपनी जान से भी ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) हैं। मैं मर जाना पसंद करूँगा लेकिन उन तबक़ों (वर्गों) का साथ न दूँगा जो हिन्दोस्तान की आज़ादी के दुश्मन हैं। यह मेरा महफ़ूज़ (सुरक्षित) और मज़बूत (सुदृढ़) ईमान है, जो कभी मुतज़लज़ल (प्रकम्पित) नहीं हुआ और कभी नहीं होगा।"

उस समय भी अटल रहा जब उसके कथनानुसार उसके 'बुरे दिन' थे और

---

१. पांव तोड़ डाले (थका दिया)। २. जवानी की।

* परदादा सरदार शहबाज़ खाँ 'झज्झर के नवाब की सेना में सेनापति थे और चूँकि मुग़ल बादशाह के पक्ष में अंग्रेज़ों से लड़े थे इसलिए उनके पूरे ख़ानदान को सूली पर लटका दिया गया था। उनके केवल एक पुत्र जो उन दिनों बहुत छोटे थे किसी प्रकार बच गये और उन्हीं से यह कुल आगे चला।

यदि वह चाहता तो पलक झपकने की देर मे 'बुरे दिन' बहुत अच्छे दिनों मे परिवर्तित हो सकते थे। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया और विभिन्न स्थानो से विभिन्न पत्र-पत्रिकायें निकालकर (जिनमे 'एशिया' सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ), कभी किसी प्रेस में नौकरी करके, कभी फिल्म जगत मे जाकर और कभी केवल मुशायरो की थोडी-सी आय पर निर्वाह करते हुए उन बुरे दिनो को धक्के दिये और हर कदम और हर मोड पर इस प्रतिज्ञा को छाती मे लगाता रहा कि

जब तिलाई[1] रंग सिक्कों को नचाया जायगा।
जब मेरी ग़ैरत[2] को दौलत से लड़ाया जायगा ॥
जब रगे इफ्लास[3] को मेरी दबाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा ॥
और अपने पाँव से अम्बारे-ज़र[4] ठुकराऊँगा ॥
जब मुझे पेड़ो से उरियाँ[5] करके बाँधा जायेगा।
गर्म आहन[6] से मिरे होंटो को दागा जायेगा ॥
जब दहकती आग पर मुझको लिटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा ॥
तेरे नग्मे गाऊँगा और आग पर सो जाऊँगा ॥
हुक्म आख़िर क़त्लगह[7] मे जब सुनाया जायेगा।
जब मुझे फाँसी के तख्ते पर चढ़ाया जायेगा ॥
जब यकायक तख्ता-ए-ख़ूनीं[8] हटाया जायेगा।
ऐ वतन! उस वक्त भी मैं तेरे नग्मे गाऊँगा ॥
अह्द[9] करता हूँ कि मैं तुझ पर फ़िदा[10] हो जाऊँगा ॥

आज देश स्वतन्त्र है। आज उसकी यह प्रतिज्ञा इतिहास का अंग बन चुकी है। मुशायरों मे भी आज गलेबाजी का वह पहले ऐसा जोर-शोर नहीं रहा, लेकिन 'साग़र' को अपनी इस प्रतिज्ञा और इस प्रकार की अन्य प्रतिज्ञाओ पर आज भी गौरव है और यथोचित गौरव है। अतएव पिछले दिनो जब दिल्ली के एक मुशायरे मे वह गाना लेने आया तो उपस्थित जनो म से किसी मसखरे ने उस पर यह वाक्य कसा कि "लीजिये एक भाँड भी तशरीफ ला रहे हैं' तो लज्जित होने की बजाय 'साग़र' ने तुरन्त इसका उत्तर यो दिया, "हाँ, मैं भाँड हूँ और मुझे फख्र है कि मैं कौम का भाँड हूँ।'

१ सुनहरी २ स्वाभिमान ३ दरिद्रता की नस ४ धन का ढेर ५. नग्न ६ लोहे ७ वध-स्थान ८ फाँसी का तख्ता ९. प्रतिज्ञा १० न्यौछावर

पाप की मीठी अंधियारी हो या मस्ती का सवेरा।
मौत की रौशन-तारीकी[1] हो या जीवन का अंधेरा॥
उम्मीदों का दीप जला लूं!
ऐ बाम्बी के वासी!
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के वासी॥

ऐ बाम्बी के बसने वाले तुम क्या हो ज़हरीले।
लाखों नाग हैं इन्सानों में गोरे, काले, पीले॥
मुल्ला, नेता, पीर और पण्डित, राजे, पांडे, लाले।
बस्ते हैं दुनिया में तुमसे बढ़कर डसने वाले॥
तुमसे मैं क्या मन को डसा लूं?
ऐ बाम्बी के वासी!
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के वासी॥

विष है तुम्हारा बूंद बराबर, इनका ज़हर समन्दर।
डंक तुम्हारा वीरानों तक, इनका डसना घर-घर॥
तेरा काटा एक दिन जीवे, इनका काटा पल भर।
सहर[2] तुम्हारा सर पर बोले, इनका जादू मन पर॥
मन से इनका ज़हर हटा लूं!
ऐ बाम्बी के वासी!
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के वासी॥

इन्सानी नागों के बयां[3] हों क्या ज़हरी अफ़साने।
तेरा डसना छुप-छुपकर है, इनका खुले-खज़ाने॥
डसते हैं और फिर कहते हैं मौत न आने पाये।
तेरा विष तो रखता है हर ज़ख्मी दिल पर फाये॥
दारु-ए-आलाम[4] चुरा लूं!
ऐ बाम्बी के वासी!
आओ मैं तन मन में बसा लूं, ऐ बाम्बी के वासी॥

---

१. प्रकाशमान अन्धकार २. जादू ३. वर्णन ४. दुखनाशक औषधि

बुझा हुआ दीपक

जीवन की कुटिया मे हूँ मैं बुझा हुआ सा दीपक।
आशा के मन्दिर मे हू मैं बुझा हुआ सा दीपक ॥
बुझा हुआ सा दीपक हू मैं, बुझा हुआ सा दीपक।

कजराये - दीवट पे धरा हू यूँ कुटिया में हाए।
जैसे कोयल सीस नवाकर अम्बुआ पर सो जाए ॥
जैसे श्यामा गाते - गाते कुहरे में खो जाए।
जैसे दीपक आग मे अपनी आप भस्म हो जाए ॥
बिरह में जैसे आख किसी क्वारी की पथरा जाए।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

आतम, हिरदय, जीवन, मृत्यु सतयुग, कलियुग, माया।
हर रिश्ते पर मैंने अपने नूर[1] का जाल बिछाया ॥
चारो ओर चमक कर अपनी किरनो को दोडाया।
जितना ढूँढा उतना खोया, खोकर खाक न पाया ॥
बीत गये जुग लेकिन 'सागर' मुझ तक कोई न आया।
बुझा हुआ सा दीपक हूँ मैं, बुझा हुआ सा दीपक ॥

आखिर बिल्कुल बुझ जाने की हो ली जब तैयारी।
आकर मेरे कान में बोली इक शब[2] यूँ अंधियारी ॥
जग मे जिसको कोई न पूछे वो क़िस्मत की मारी।
मन मन्दिर मे मुझ को बिठा लो ऐ ज्योति के रसिया ॥

---

१. प्रकाश २ रात

रोकती ही रह गई मासूम दूर-अंदेशियां[1]।
उन के लब[2] पर मेरा ज़िक्रे-नातमाम[3] आ ही गया॥
है जहां इश्क़ो-हविस[4] को एतराफ़े-बेकसी[5]।
तलख़ी-ए-हस्ती के[6] क़ुर्बां वो मुक़ाम आ ही गया॥
जैसे साग़र से छलक जाये मचलती मौजे-मैं[7]।
कांपते होंटों पे उनके मेरा नाम आ ही गया॥

◇ ◇ ◇

ये तेरा तसव्वुर है या मेरी तमन्नाएं।
दिल में कोई रह-रह के दीपक से जलाये है॥
जिस सिम्त[8] न दुनिया है, ऐ दोस्त न उक़्बा[9] है।
उस सिम्त मुझे कोई खींचे लिए जाये है॥

◇ ◇ ◇

तेरे सर की क़सम गर तू न हो मेरे तसव्वुर[10] में।
मेरी नाज़ुक तबीयत पर ये दुनिया बार[11] हो जाये॥

◇ ◇ ◇

ख़िरद[12] को ये ज़िद भी न लुटती ये दौलत।
इसी ज़िद पे हमने जवानी लुटा दी॥

◇ ◇ ◇

कैफ़े-ख़ुदी[13] ने मौज को कश्ती बना दिया।
फ़िक्रे-ख़ुदा है अब न ग़मे-नाख़ुदा[14] मुझे॥

---

१. दूरदर्शितायें २. होंठ ३. समाप्त न होने वाली चर्चा ४. प्रेम तथा कामवासना ५. विवशता का स्वीकरण ६. जीवन की कटुता के ७. शराब की लहर ८. ओर ९. परलोक १०. कल्पना ११. भार १२. ज्ञान १३. अहम्मन्यता के उन्माद १४. मल्लाह की चिंता

तो उनकी क्या हालत हुई ? जब शराब की अधिकता के कारण पहली बार उनका मानसिक संतुलन बिगड़ा तो स्वस्थ होने के बाद उनकी क्या हालत थी ? जब उन्हें आल-इंडिया रेडियो उर्दू मासिक-पत्रिका 'आवाज़' (यह नाम 'मजाज़' ही का दिया हुआ है) का सम्पादन छोड़ना पड़ा तो उनकी क्या हालत थी ? और दोबारा शराब की अधिकता के कारण रांची मैंटल हस्पताल में रहने के बाद, जब पिछले दिनों वह बाहर निकला है तो इन दिनों उसकी क्या हालत है ?—जानने वाले जानते हैं कि उस को अपनी बर्बादी का कितना ग़म है और यही ग़म प्रकाश की वह हल्की-सी किरन है जो हम से कहती है कि "इन्तज़ार करो, 'मजाज़' अब भी सँभल सकता है।"

'मजाज़' से मेरी पहली मुलाक़ात बड़े नाटकीय ढंग से हुई। यह १९४८ की एक रात के दस-ग्यारह बजे की बात है कि महीनों की दौड़धूप के बाद किसी प्रकार मैंने और 'साहिर' लुध्यानवी ने नया मोहल्ला, पुल बंगश (दिल्ली) में एक खाली मकान ढूँढ निकाला था। मोहल्ला मुसलमानों का था और उन दिनों शहर का वातावरण मुसलमानों के पक्ष में अच्छा न था। अर्थात् एक चीज़ 'साहिर' के पक्ष में थी और दूसरी मेरे; अतएव हम दोनों विचित्र प्रकार का डर तथा झिझक महसूस कर रहे थे और चाहते थे कि हमारे मकान में प्रवेश करने की किसी को कानों-कान ख़बर न हो। 'साहिर' तांगा ढो रहा था और मैं गली के बाहर सामान की रखवाली कर रहा था कि एक ओर से एक दुबला-पतला, लम्बे तन-बदन का व्यक्ति बुरी तरह लड़खड़ाता और बुड़बुड़ाता हुआ मेरे निकट आ खड़ा हुआ।

" 'अख़्तर' शीरानी मर गया—"

"—हाय 'अख़्तर' शीरानी तू उर्दू का बहुत बड़ा शायर था—बहुत बड़ा।"

वह बार-बार यही वाक्य दोहरा रहा था और हाथों से शून्य में टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें बना रहा था और न जाने किसे कोसने दे रहा था कि मैं घबरा गया और अपनी उस समय की घबराहट में मैं न जाने उसने क्या कुछ कह डालता कि ठीक उसी समय कहीं से 'जोश' मलीहाबादी निकल आये (उन दिनों वे उसी मोहल्ले में रहते थे) और मुझे पहचान कर बोले "इन्हें संभालो प्रकाश ! ये 'मजाज़' हैं।"

'मजाज़' की शायरी का प्रशंसक और उससे मिलने का इच्छुक होने पर भी उस समय 'मजाज़' को संभालने की बजाय अपने-आपको संभालना अधिक आवश्यक था। फिर भी 'साहिर' के लौटने तक मैं 'मजाज़' के अनुरोध पर उसी की

तरह शून्य मे टेढ़ी-मेढ़ी रेखायें खींचता रहा और उसके उस मेज़बान को उसी तरह बुरा-भला कहता रहा, जिसने घर मे शराब होने पर भी उसे और शराब न पीने दी थी और अपनी मोटर मे बिठा कर रेलवे पुल के पास छोड़ दिया था।

[ये पंक्तियाँ लिखते समय मुझे 'मजाज़' की वह कुंठा याद आ रही है जिसका उल्लेख उसने 'साहिर' लुध्यानवी के नाम अपने एक पत्र मे किया था और अपनी निष्कपटता के बावजूद मैं डरता हूँ कि कहीं 'मजाज़' पर मेरे इस लेख की प्रतिक्रिया भी वही न हो। 'सवेरा' (लाहौर) के सम्पादन काल मे 'साहिर' ने 'मजाज़' का परिचय कराते हुए यह लिख दिया था कि 'मजाज़' पर दो बार दीवानगी का दौरा पड़ चुका है और वह दिन-रात शराब पीता है और गली-कूचों मे मारा-मारा फिरता है—'मजाज़' ने इस परिचय के उत्तर मे गिला किया था कि :

कुछ तो होते हैं मुहब्बत मे जनूँ[1] के आसार[2]
और कुछ लोग भी दीवाना बना देते हैं ॥४

मेरी अभिलाषा है कि 'मजाज़' को मेरे इस लेख से इस प्रकार का आभास न हो।]

'मजाज़' से अपनी इस मुलाक़ात का ज़िक्र करने की आवश्यकता मुझे इस लिए हुई क्योंकि इससे मुझे उसकी शायरी की पृष्ठभूमि को समझने मे बड़ी सहायता मिली है। उसके बाद भी मैं प्रायः मजाज़ से मिलता रहा हूँ और मुझे दो तीन मास तक उसका मेज़बान होने का सौभाग्य भी प्राप्त हो चुका है और होश मे भी और नशे मे भी मैं उसकी ज़बान से तरह-तरह की बातें सुन चुका हूँ, लेकिन उसकी वह पहली मुलाक़ात मुझे कभी नहीं भूलती जब वह नशे मे धुत होने पर भी 'अख्तर शीरानी', 'अख्तर शीरानी' पुकार रहा था और उसे उर्दू का बहुत बड़ा शायर कह रहा था।

वास्तविकता यह है कि 'अख्तर' शीरानी और 'मजाज़' की शायरी की पृष्ठ-भूमि एक है अर्थात् मौलिक रूप से दोनों रोमांटिक शायर हैं। वहाँ भी बेकार जीवन की उदासी का निखार है और यहाँ भी। वहाँ भी शराब है और यहाँ भी। वहाँ भी कोई न कोई 'सलमा' और 'अज़रा' है (अख्तर शीरानी की काल्पनिक प्रियतमाएं) और यहाँ भी कोई 'ज़ोहरा जबीं'। वहाँ भी ग़ालिब,

१. उन्माद २. लक्षण

सैंकड़ों चंगेज़ो-नादिर[१] हैं नज़र के सामने।
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ[२] ? (१९३७)

ज़हने-इन्सानी[३] ने अब औहाम[४] की जुलमात[५] में,
ज़िन्दगी की सख्त, तूफ़ानी, अंधेरी रात में,
कुछ नहीं तो कम से कम ख्वाबे-सहर[६] देखा तो है,
जिस तरफ़ देखा न था अब तक, उधर देखा तो है। (१९३९

बोल री ओ धरती बोल।
राज सिंहासन डांवांडोल॥ (१९४५

ये इंक़लाब का मुज़दा[७] है इंक़लाब नहीं।
ये आफ़ताब[८] का परतौ[९] है आफ़ताब नहीं॥ (१९४७)

सब्ज़ा-ओ-बर्गो-लाला-ओ-सर्वो-समन[१०] को क्या हुआ ?
सारा चमन उदास है हाए चमन को क्या हुआ ?
कोई बताए अज़मते-खाके-वतन[११] को क्या हुआ ?
कोई बताए ग़ैरते-अहले-वतन को[१२] को क्या हुआ ? (१९५०)

इन शेरों में आपको जन-चेतना, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, जन-आन्दोलन में कलाकारों की ज़िम्मेदारी, स्वतन्त्रता तथा स्वतन्त्रता की प्रतिक्रिया इत्यादि हर चीज़ की झलकियां मिल जाएँगी। 'झलकियां' मैं इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि 'मजाज़' कितना ही बड़ा और कैसा ही सामयिक विषय क्यों न प्रस्तुत कर रहा हो कविता के मूल्यों को कभी हाथ से नहीं जाने देता; और चूंकि उसका दृष्टिकोण मूलरूप से रोमांसवादी है, और इसलिए उसकी सौंदर्य-प्रियता हर समय उसके साथ रहती है और उसने क्लासिकल शायरी से विमुख होने की बजाय पुरानी उपमाओं, संकेतों तथा शब्दों को नये अर्थ पहनाना ही उचित समझा है, इसलिए कुछ-एक स्थानों को छोड़कर, जहाँ सामाजिक तथा राजनीतिक त्रुटियों के प्रति उत्तेजित हो वह कुछ भावुक तथा ध्वंसात्मक हो गया है, सामूहिक रूप

---

१. आक्रमणकारी बादशाह जिन्होंने भारत में लूट-मार मचाई थी
२. ऐ मेरे हृदय की व्यथा तथा ऐ मेरे हृदय के उन्माद ! मैं क्या करूँ ?
३. मानव-मस्तिष्क ४. भ्रम ५. अंधकार ६. सुबह होने का सपना
७. शुभ समाचार ८. सूरज ९. प्रतिबिम्ब १०. हरियाली, फूल, पत्ते, सर्व तथा चमेली ११. देश की मिट्टी की महानता १२. देशवासियों के आत्म-गौरव को

से वह सामाजिक तथा राजनीतिक क्रांति के लिए गरजता नहीं, गाता है। और मेरे लिए यही उसकी शायरी का सबसे बड़ा गुण है।

'मजाज़' के कविता-संग्रह 'आहंग' की भूमिका में फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' ने भी उसे क्रांति के ढंढोरची की बजाय क्रांति के गायक की उपाधि देते हुए बिल्कुल ठीक लिखा था कि :

" 'मजाज़' की इन्क़िलाबियत आम इन्क़िलाबी शायरों से मुख़्तलिफ़ है। आम इन्क़िलाबी शायर इन्क़िलाब के बारे में गरजते हैं, ललकारते हैं, सीना कूटते हैं इन्क़िलाब के मुतअल्लिक़ गा नहीं सकते" वे सिर्फ़ इन्क़िलाब की हौलनाकी (भयानकता) देखते हैं, उसके हुस्न को नहीं पहचानते। यह इन्क़िलाब का तरक़्क़ीपसंद (प्रगतिशील) नहीं रजअत-पसंद (प्रतिक्रियावादी) तसव्वुर (दृष्टिकोण) है।"

" 'मजाज़' उर्दू शायरी का कीट्स (Keats) है।"

" 'मजाज़' सही अर्थों में प्रगतिशील शायर है।"

" 'मजाज़' शृंगार रस तथा मदिरा का शायर है।'

" 'मजाज़' नीम-पागल लेकिन निष्कपट व्यक्ति है।"

" 'मजाज़' बड़ा हाज़िरजवाब और लतीफ़ागो है।'

" 'मजाज़' शराबी है।"

" 'मजाज़' केवल शायर है।'

'मजाज़' को पढ़ने वाले, 'मजाज़' से मिलने वाले, 'मजाज़' को जानने वाले घूम-फिरकर 'मजाज़' के सम्बन्ध में इन्हीं बिन्दुओं पर पहुँचते हैं, लेकिन यही बिन्दु मिल-जुलकर एक ऐसे उज्ज्वल केन्द्र पर अवश्य मिल जाते हैं जहाँ 'मजाज़' और केवल 'मजाज़' लिखा हुआ है।

अपनी शायरी तथा व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मतों का मालिक यह शायर २ फ़रवरी १९०९ के दिन लखनऊ में पैदा हुआ। बी० ए० तक की शिक्षा लखनऊ, आगरा और अलीगढ़ में प्राप्त की और आगरा निवास के दिनों में उसने उर्दू के प्रसिद्ध शायर स्वर्गीय 'फ़ानी' बदायूनी के नेतृत्व में अपनी उस प्रकाशमान शायरी का प्रारम्भ किया जिसकी चमक आगरा, अलीगढ़, दिल्ली और फिर पूरे भारत में फैल गई।

आज 'मजाज़' चुप है। काश कि उसकी यह चुप्पी तूफ़ान से पहले की उमस सिद्ध हो और वह एक बार फिर नये रंग-रूप के साथ हमारी महफ़िल पर छाने के लिए इधर आ निकले।

० ० ०

रास्ते में रुक के दम ले लूं मेरी आदत नहीं,
लौटकर वापस चला जाऊं मेरी फ़ितरत नहीं,
और कोई हम-नवा[1] मिल जाये ये क़िस्मत नहीं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं !

मुन्तज़िर है एक तूफ़ाने-बला[2] मेरे लिए,
अब भी जाने कितने दरवाज़े हैं वा[3] मेरे लिए,
पर मुसीबत है, मेरा अहदे-वफ़ा[4] मेरे लिए,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं !

जी में आता है कि अब अहदे-वफ़ा भी तोड़ दूं,
उनको पा सकता हूं मैं, ये आसरा भी तोड़ दूं,
हां मुनासिब है, ये ज़ंजीरे-हवा[5] भी तोड़ दूं,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं !

इक महल की आड़ से निकला वो पीला माहताब[6] ,
जैसे मुल्ला का अमामा[7] , जैसे बनिये की किताब,
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब[8] ,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं

दिल में एक शोला भड़क उट्ठा है, आखिर क्या करूँ ?
मेरा पैमाना छलक उट्ठा है, आखिर क्या करूं ?
ज़ख्म सीने का महक उट्ठा है, आखिर क्या करूं ?
ऐ ग़मे-दिल क्या करूं, ऐ वहशते-दिल क्या करूं ?

---

१. साथी २. विपत्तियों का तूफ़ान ३. खुले ४. प्रेम निभाने की प्रतिज्ञा ५. हवा की जंजीर (कभी न निभने वाली बात) ६. चाँद ७. पगड़ी ८. विधवा का यौवन। इस पद्य में चाँद की तुलना सभी ऐसी चीजों से की गई है, जो जर्जर तथा बुझी-बुझी-सी हैं क्योंकि कवि की मनःस्थिति इस समय ऐसी है कि उसे चाँद तक अप्रिय लग रहा है।

जी मे आता है ये मुर्दा चाँद तारे नोच लूँ,
इस किनारे नोच लूँ और उस किनारे नोच लूँ,
एक दो का जिक्र क्या, सारे के सारे नोच लूँ,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते-दिल क्या करूँ ?

मुफलिसी और ये मजाहिर[1] हैं नजर के सामने,
सैकड़ों सुलताने-जाबिर[2] हैं नजर के सामने,
सैकड़ों चगेजो-नादिर हैं नजर के सामने,
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ ?

ले के इक चंगेज के हाथों से खंजर तोड़ दूँ,
ताज पर उसके दमकता है जो पत्थर तोड़ दूँ,
कोई तोड़े या न तोड़े मैं ही बढ़कर तोड़ दूँ,
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ ऐ वहशते दिल क्या करूँ ?

बढ़ के इस इन्दरसभा का साजो-सामाँ फूँक दूँ,
इसका गुलशन[3] फूँक दूँ उसका शबिस्ताँ[4] फूँक दूँ,
तख्ते सुल्ताँ[5] क्या, मैं सारा कसरे-सुल्ताँ[6] फूँक दूँ,
ऐ ग़मे-दिल क्या करूँ, ऐ वहशते दिल क्या करूँ ?

ग़ज़ल

ख़ातिरे-अहले-नज़र[1] हुस्न को मन्ज़ूर नहीं।
इसमें कुछ तेरी खता दीदा-ए-महजूर[2] नहीं॥

लाख छुपते हो मगर छुप के भी मसहूर[3] नहीं।
तुम अजब चीज़ हो नज़दीक नहीं, दूर नही॥

जुर्रते-अर्ज पे[4] वो कुछ नहीं कहते लेकिन।
हर अदा से ये टपकता है कि मन्ज़ूर नहीं॥

दिल धड़क उठता है खुद अपनी ही हर आहट पर।
अब क़दम मंज़िले-जानां से[5] वहुत दूर नहीं।

हाय वो वक़्त कि जब वे-पिये मदहोशी थी।
हाय ये वक़्त कि अब पी के भी मखमूर नहीं॥

देख सकता हूं जो आंखों से वो काफ़ी है 'मजाज़'।
अहले-इरफ़ां की[6] नवाज़िश मुझे मन्ज़ूर नहीं॥

◇ ◇ ◇

---

१. नज़र रखने वालों (प्रेमियों) की खातिर २. विछोह की मारी हुई आँखें ३. छुपे हुए ४. निवेदन के दुःसाहस पर ५. प्रेमिका के निवास-स्थान से ६. महात्मा लोगों की।

फ़ैज़ अहमद

'शेर लिखना जुर्म न सही लेकिन बिना वजह शेर लिखते रहना कुछ ऐसी अक़्लमंदी भी नहीं है।" फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' के पहले कविता-संग्रह 'नक़्शे-फ़रियादी' में उनके इस कथन को पढ़कर मुझे 'ग़ालिब' का वह वाक्य याद आता है जिसमें उर्दू के उस महान शायर ने कहा था कि "जब से मेरे सीने का नासूर बन्द हो गया है, मैंने शेर कहना छोड़ दिया है।"

'सीने का नासूर' चाहे प्रेम की भावना हो चाहे स्वतन्त्रता, देश और जन-मित्रता की, शेर (कविता) ही के लिए नहीं, समस्त ललित कलाओं के लिए अनिवार्य है। अध्ययन, परिश्रम तथा तपस्या से हमें बात कहने का ढंग तो आ सकता है लेकिन अपनी बात को सार्थक बनाने और दूसरे के दिल में उतारने के लिए हमें स्वयं अपने दिल में उतरना पड़ता है। संसार भर के साहित्य में हमें ऐसे कई उदाहरण मिल जाएँगे कि किसी कवि या लेखक ने कुछ-एक बहुत अच्छी कविताएँ, एक बहुत अच्छा उपन्यास और दस-पन्द्रह बहुत अच्छी कहानियाँ लिखने के बाद लिखने से तौबा कर ली और फिर समालोचकों और पाठकों के अनुरोध पर जब उसने नये सिरे से अपना क़लम उठाया तो वह बात पैदा न हो सकी जो उसके 'कच्चेपन' के ज़माने में आप ही आप पैदा हो गई थी। कदाचित् इसी बात के वशीभूत 'नक़्शे-फ़रियादी' की भूमिका में 'फ़ैज़' ने अपनी दो-चार कविताओं को 'क़ाबिले-बर्दाश्त' कहते हुए लिखा था कि "आज से कुछ वर्ष पहले एक विशेष भावना के मातहत शेर आप ही आप दिल से निकलते थे लेकिन अब विषयों की तलाश करनी पड़ती है…हम में से अक्सर

कवियो की कविता किसी आत्मगत् या परगत् प्रेरणा पर आश्रित होती है और यदि उन प्रेरणाओ के वेग मे कमी आजाय या उनके प्रकटीकरण के लिए कोई सहल रास्ता सुझाई न दे तो या तो भावनाओ की तोड-फोड करनी पडती है या कहने के ढग की·· ऐसी हालत पैदा होने से पहले कवि का कर्तव्य है कि जो कुछ उसे कहना हो कह ले, महफ़िल का शुक्रिया अदा करे और आज्ञा चाहे।"

'फ़ैज़' की आत्मगत् तथा परगत् प्रेरणाओ मे सब से उग्र प्रेरणा 'सौन्दर्य' है (थी), बल्कि उसने तो यहाँ तक कह दिया था कि

लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होंट।
हाय उस जिस्म के कम्बख्त दिलावेज़[1] खतूत[2]॥
आप ही कहिये कहीं ऐसे भी अफ़सूँ[3] होंगे?
अपना मौज़ू ए-सुखन[4] इनके सिवा और नहीं।
तबअ्ए-शायर[5] का वतन इनके सिवा और नही॥

लेकिन इस बन्द के शुरू के 'लेकिन' से पहले उसने जिन चीज़ो को अपना 'मौज़ू-ए-सुखन' बनाना पसद नही किया था और -

इन दमकते हुए शहरो की फ़रावा[6] मखलूक[7]।
क्यो फ़क़त मरने की हसरत मे जिया करती है?
ये हसी खेत फटा पडता है जोबन जिनका।
किस लिए इनमे फ़क़त भूख उगा करती है?

ऐसे प्रश्न उत्तर दिये बिना छोड दिये थे वही 'साधारण और महत्वहीन' प्रश्न बाद मे उसकी आत्मगत् और परगत् प्रेरणाओ का स्रोत बने और इन्ही प्रश्नो ने उसे महफ़िल का शुक्रिया अदा करके उठ आने से रोका और उर्दू शायरी को एक बडा शायर प्रदान किया।

फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' उर्दू के उन गिनती के बडे शायरो मे से है जिन्होंने काव्य-कला मे नये प्रयोग तो किये लेकिन उनकी नींव पुराने प्रयोगो पर रखी, और इस अटल सच्चाई को कभी विस्मृत नही किया कि हर नई चीज़ पुरानी कोख से जन्म लेती है। यही कारण है कि उसकी शायरी का अध्ययन करते हुए हमे किसी प्रकार की अपरिचितता का अनुभव नहीं होता। अस्पष्ट और मस्तिष्क की पहुँच से परे की उपमाओ से वह हमे उलझन मे नही डालता बल्कि

---

१ मनमोहक २ रेखाये ३ जादू ४. काव्य विषय ५. कवि की प्रकृति का ६ असख्य ७. जनता

अपने कोमल तथा मृदु स्वर में हम से सरगोशियाँ करता है और उसकी सरगोशी इतनी अर्थपूर्ण होती है कि कुछ-एक शब्द कान में पड़ते ही हम उसकी पूरी बात समझ जाते हैं। ज़रा 'नक़्शे-फ़र्यादी' का पहला पन्ना उलटिये :

रात यूं दिल में तेरी खोई हुई याद आई।
जैसे वीराने में चुपके से, बहार आजाए॥
जैसे सहराओं में हौले से चले बादे-नसीम[1]।
जैसे बीमार को बेवजह क़रार[2] आ जाए॥

प्रेमिका की याद आना कोई नया विषय नहीं है लेकिन इन सुन्दर उपमाओं और अपनी भावाभिव्यक्ति द्वारा उसने इसे बिल्कुल नया और अनूठा बना दिया है। इस एक 'क़तए' ही की नहीं, यह उसकी सारी रचनाओं की विशेषता है कि वे नई भी हैं और पुरानी भी। आधुनिक काल की उत्पत्ति हैं लेकिन अतीत की उपज हैं। नये विषय पुराने नख-शिख में और पुराने विषय नई शैली में प्रस्तुत करने की जो क्षमता 'फ़ैज़' को प्राप्त है आधुनिक काल के बहुत कम उर्दू शायर उस तक पहुँचते हैं। ज़रा 'ग़ालिब' का यह शेर देखिये :

दिया है दिल अगर उसको बशर[3] है क्या कहिये ?
हुआ रकीब तो हो, नामावर है क्या कहिये ?

और अब इसी विषय को 'फ़ैज़' की कविता 'रक़ीब' के दो शेरों में देखिए :

तू ने देखी है वो पेशानी, वो रुख़सार, वो होंट,
ज़िन्दगी जिनके तसव्वुर में मिटा दी हमने।
हमने इस इश्क़ में क्या खोया है क्या पाया है ?
जुज़[4] तेरे और को समझाऊँ तो समझा भी न सकूँ।

महबूब, आशिक़, रक़ीब तक ही सीमित नहीं, 'फ़ैज़' ने हर समय नई और पुरानी बात और नई और पुरानी शैली का बड़ा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। 'ग़ालिब' का एक और शेर देखिये :

लिखते रहे जुनूं की हिकायाते-ख़ूंचकां[5]।
हरचन्द इसमें हाथ हमारे क़लम हुए[6]॥

और 'फ़ैज़' का शेर है :

---

१. प्रभात समीर २. चैन ३. मनुष्य ४. सिवा ५. ख़ून-भरी गाथा ६. कट गये

हम परवरिशे-लौहो-कलम[1] करते रहेंगे।
जो दिल पे गुज़रती है रक्म करते रहेंगे[2] ॥[16]

इन उदाहरणों से मेरा अभिप्राय फ़ैज़ और ग़ालिब की शायरी के समान मूल्यों को दिखाना नहीं है और मेरा मन्तव्य यह भी नहीं है कि हम समस्त प्राचीन परम्पराओं को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेना चाहिये। कुछ परम्पराएँ चाहे वे साहित्य की हों, संस्कृति की या अन्य सामाजिक बातों की, अपना ऐतिहासिक मन्तव्य पूरा करने के बाद अपनी मौत आप मर जाती हैं। उन्हें नये सिरे से जिलाने का मतलब गड़े मुर्दे उखाड़ना और ऐतिहासिक विकास से अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण देना है। लेकिन इससे भी खतरनाक भ्रम यह है कि नयेपन की दौड़ में पुरानी चीज़ों को केवल इसलिये घृणित समझ लिया जाए कि वे पुरानी हैं। धरती, आकाश चाँद सितारे सूरज समुद्र पहाड़ सब पुराने हैं लेकिन ये सब हमें पसन्द हैं और इसलिये पसन्द हैं क्योंकि प्रतिक्षण हम इन्हें बदलते रहते हैं अर्थात् इनके बारे में हमारा दृष्टिकोण बदलता रहता है। हम इनके बारे में नई बात मालूम कर लेते हैं और इस प्रकार ये समस्त चीज़ें सदैव नई बनी रहती हैं।

यही विचित्र लेकिन प्रशंसनीय वास्तविकता है कि प्राचीन और आधुनिक उर्दू शायरी की महफ़िल में खपकर भी फ़ैज़ अपना एक अलग व्यक्तिगत चरित्र (Individuality) रखता है। उसने तुक छन्द पिंगल आदि में कोई उल्लेखनीय प्रयोग नहीं किया और न कभी अपना व्यक्तिगत चरित्र प्रकट करने के लिये स्वर्गीय मीरा जी (उर्दू के प्रयोगवादी शायर) की तरह यह कहा है कि बहुसंख्यक शायरों की नज़्म अलग हैं और मेरी नज़्में अलग, और चूँकि दुनिया की हर बात हर किसी के लिये नहीं होती, इसलिये मेरी नज़्म भी सिर्फ़ उनके लिये हैं जो उन्हें समझने के योग्य हों। (यह व्यक्तिगत चरित्र शायर का व्यक्तिगत-चरित्र है उसकी शायरी का नहीं।) फ़ैज़ की शायरी के व्यक्तिगत चरित्र का भेद निहित है उसकी शैली के लोच और सरसता में, कोमल मृदुल लेकिन सौ सौ जादू जगाने वाले शब्दों के चुनाव में; 'बेख्वाब किवाड़', 'तरसी हुई निगाहें' और आवाज़ में सोई हुई शीरीनी ऐसे वर्णनों और विशेषणों में, और इन समस्त गुणों के साथ गहरी से गहरी बात कहने के सुन्दर सलीके में।

अपनी शायरी की तरह अपने जीवन में भी किसी ने उसे ऊँचा बोलते

---

१ लौह (तलवार) और कलम का पोषण २ लिखते रहेंगे

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

मैंने समझा था कि तू है तो दरख्शां[1] है हयात,
तेरा ग़म है तो ग़मे-दहर का[2] झगड़ा क्या है ?
तेरी सूरत से है आलम[3] में बहारों को सबात[4],
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रक्खा क्या है ?
तू जो मिल जाये तो तकदीर नगूं[5] हो जाये।

यूं न था - मैंने फकत[6] चाहा था यूं हो जाये,
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
अनगिनत सदियों के तारीक बहीमाना तलिस्म[7],
रेशमो - अतलसो - कमख्वाब में बुनवाये हुए,
जा-ब-जा बिकते हुए कूचा-ओ-बाजार में जिस्म,
खाक में लिथड़े हुए, खून में नहलाये हुए,
जिस्म निकले हुए अमराज़ के[8] तन्नूरों से,
पीप बहती हुई गलते हुए नासूरों से,
लौट जाती है उधर को भी नज़र क्या कीजे ?

अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजे ?
और भी दुख हैं जमाने में मुहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा,
मुझ से पहली-सी मुहब्बत मेरी महबूब न मांग !

---

१. दीप्तिमान २ संसार के गम का ३. संसार ४. स्थायित्व
५. बदल जाये ६. केवल ७ अंधकारमय जादू ८ रोगों के

मौज़ू-ए-सुख़न*

गुल हुई जाती है अफ़सुर्दा, सुलगती हुई शाम,
धुल के निकलेगी अभी चश्मा-ए-महताब[1] से रात,
और—मुश्ताक़[2] निगाहों की सुनी जायेगी,
और—उन हाथों से मस होंगे ये तरसे हुए हात।

उन का आंचल है, कि रुख़सार, कि पैराहन[3] है?
कुछ तो है जिस से हुई जाती है चिलमन रंगीं,
जाने उस ज़ुल्फ़ की मौहूम[4] घनी छांओं में,
टमटमाता है वो आवेज़ा अभी तक कि नहीं?

आज फिर हुस्ने-दिलआरा की वही धज होगी,
वही ख़्वाबीदा[5] सी आँखें, वही काजल की लकीर,
रंगे-रुख़सार पे हल्का-सा वो ग़ाज़े का गुबार,
संदली हाथ पे धुंदली-सी हिना[6] की तहरीर[7]।

अपने अफ़कार[8] की अशआर की दुनिया है यही,
जाने-मज़मूं[9] है यही, शाहिदे-मानी[10] है यही!

आज तक सुर्ख़ो-सियाह सदियों के साये के तले,
आदमो-हव्वा की औलाद पे क्या गुज़री है?
मौत और ज़ीस्त[11] की रोज़ाना सफ़-आराई[12] में,
हम पे क्या गुज़रेगी, अजदाद[13] पे क्या गुज़री है?

---

* काव्य का विषय

१. चाँद का चश्मा २. उत्सुक ३. लिबास ४. कल्पित ५. निद्रित ६. महंदी ७. लिखावट, चित्रण ८. चिन्तन ९. विषय की जान १०. अर्थों की साक्षी ११. जीवन १२. मुक़ाबले १३. पितृगण

इन दमकते हुए शहरो की फरावा[1] मखलूक[2],
क्यो फकत मरने की हसरत में जिया करती है ?
ये हसी खेत, फटा पडता है जोबन जिन का,
किस लिए इन में फकत भूख उगा करती है ?
ये हर इक सिम्त[3] पुर-असरार[4] कडी दीवारें,
जल बुझे जिन मे हजारो की जवानी के चिराग,
ये हर इक गाम[5] पे उन ख्वाबो की मकतलगाहे[6],
जिन के परतौ[7] से चिरागा[8] हैं हजारो के दिमाग,
ये भी हैं, ऐसे कई और भी मजमू होगे,
लेकिन उस शोख के आहिस्ता से खुलते हुए होट,
हाए उस जिस्म के कमबख्त दिलावेज[9] खतूत[10],
आप ही कहिये कही ऐसे भी अफ़सू[11] होगे ?
अपना मौजू़ए-सुखन इन के सिवा और नही,
तबअ-ए-शायर का[12] वतन इनके सिवा और नही !

---

१ असख्य २ जनता ३ ओर ४ भेदपूर्ण ५ कदम ६ कत्ल-घर ७ प्रतिबिम्ब ८ प्रकाशमान ९ आकर्षक १० रेखायें
११ जादू १२ कवि की प्रकृति का

नून० मीम० 'राशिद'

ऐ मेरी हम-रक़्स मुझको थाम ले
ज़िन्दगी से भागकर आया हूँ मैं

परिचय

कितनी विचित्र बात है कि 'राशिद' की शायरी में एशिया और एशियाई देशों का काफ़ी से अधिक वर्णन होने पर भी उसकी शायरी एशियाई नहीं, यूरोपियन है। और शायद इसीलिए १९४१ में उसके कविता-संग्रह 'मावरा' की भूमिका लिखते हुए कृष्णचन्द्र ने कहा था कि 'राशिद' ने अपनी शायरी का प्रारम्भ वहां से किया है जहाँ बहुत से शायर अपनी शायरी समाप्त कर देते हैं।

आज चौदह-पन्द्रह वर्ष बाद कृष्णचन्द्र के इस वाक्य को दोहराने की आवश्यकता बाक़ी नहीं रह जाती क्योंकि नई पीढ़ी के बहुत से उर्दू शायर 'राशिद' की डगर पर चलते-चलते कहीं से कहीं पहुँच चुके हैं, लेकिन जहां तक मुक्तछन्द (Free verse) टैक्नीक का सम्बन्ध है 'मावरा' (दूसरा संस्करण) की कुल ४२ नज़्मों में से केवल २६ निर्बंध नज़्मों द्वारा (बल्कि मेरी तुच्छ राय में तो केवल 'दरीचे के क़रीब', 'इन्तक़ाम', 'बेकरां रात के सन्नाटे में' और 'पहली किरन' ऐसी नज़्मों द्वारा) वह सदैव उर्दू की 'प्रयोगवादी' शायरी का प्रवर्तक तथा अगुवा बना रहेगा।

'राशिद' से पहले 'इस्माइल' मेरठी और तसद्दुक हुसैन 'ख़ालिद' ने निर्बंध तथा अतुकान्त छन्द के लिये भूमि समतल करने की कोशिशें की थीं, लेकिन उनकी कोशिशें अधूरी और असफल रहीं और यद्यपि उर्दू की नाज़ुक-मिज़ाज ग़ज़ल को 'हाली' और 'अकबर' इलाहाबादी ने काफ़ी सख़्तजान बना दिया था और 'इक़बाल' और 'जोश' ने तो ग़ज़ल पर नज़्म को प्रधानता देकर उर्दू

शायरी में एक नई महानता और विशालता उत्पन्न कर दी थी लेकिन पिंगल तथा शैली में चौंका देने वाले प्रयोग का सेहरा 'राशिद' ही के सिर रहता है।

उर्दू शायरी में इस अपरिचित तथा बाहरी रूप को परिचित कराने में 'राशिद' का ध्येय उसके अपने कथनानुसार केवल 'नवीनता' नहीं था बल्कि

'यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि न केवल एक जाति की मानसिक प्रवृत्तियां दूसरी जाति की मानसिक प्रवृत्तियों से भिन्न होती हैं बल्कि एक ही जाति विभिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की साहित्यिक प्रवृत्तियां प्रस्तुत करती है। अतः एक काल में जो शैली या काव्यधारा या जीवन-दर्शन पसन्द किया जाता रहा हो, आवश्यक नहीं कि किसी अन्य काल में भी वह इतनी ही सर्वप्रियता प्राप्त कर सके। समय के ज्वारभाटे से जातियों के सोच-विचार, रूप-उद्भावना तथा नैतिकता के नियमों में आप ही आप अन्तर पड़ता रहा है। यह परिवर्तन जातियों की साहित्यिक प्रवृत्तियों पर भी उसी प्रकार प्रभाव डालता है जिस प्रकार उन की दिनचर्या पर। इन परिस्थितियों में कभी-कभी जाति अपने साहित्यकारों से विभिन्न प्रकार की कृतियों की आशा करने लगती है और जाति की इस मौन-माग से साहित्य में परिवर्तन होने लगते हैं। लेकिन जब कोई जाति अपनी मानसिक हीनता के कारण यह मांग करने का साहस नहीं रखती तो कोई साहित्य-रत्न स्वयं ही प्रकट होकर इस गतिरोध को छिन्न-भिन्न कर देता है।

उर्दू शायरी का यह 'साहित्य-रत्न' जिसने स्वयं ही प्रकट होकर इस 'गतिरोध' को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया और सफल रहा, पहली अगस्त १९१० को पंजाब में पैदा हुआ और जब उसने होश संभाला तो प्रथम महायुद्ध के बाद भारत के सम्मुख नाना प्रकार की परिस्थितियां थीं। शताब्दियों की निद्रा तथा नैराश्य के बाद पराधीनता तथा अन्याय के विरुद्ध और घृणा जाग उठी थी और धर्म, नैतिकता तथा अंध विश्वासों की गिरहें खुल रही थीं। अतएव मध्यवर्ग के निराशाग्रस्त युवकों की भांति पंजाब के घुटे-घुटे वातावरण और रूढ़ि-परम्पराओं के पाले हुए, सामाजिक बंधनों में बेतरह जकड़े हुए, और काम के भूत से डराये तथा मनोदमन की शिक्षा पाये हुए युवक नूर मोहम्मद 'राशिद' को इन परिवर्तनशील परिस्थितियों में जिन्दगी 'एक जहर भरा जाम' नजर आने लगी और जिन्दगी की हमाहमी से भागकर उसने काम की ठंडी छाया में सो जाना चाहा। विदेशी शासन-कर्ताओं के प्रति मन-मस्तिष्क में घृणा

का भाव उत्पन्न हुआ तो उसे कोई स्वस्थ रूप देने की बजाय उसने फ़िरंगी औरत के शरीर से खेलकर उसे फ़िरंगी जाति से 'इंतक़ाम' लेने का नाम दिया। औरतों के शरीरों से बार-बार लिपटने के बावजूद जब उसकी तृप्ति न हुई और अनगिनत चुम्बनों की मिठास भी उसे सन्तुष्ट न कर सकी तो उसे संसार की प्रत्येक वस्तु में कामवासना का पहलू नज़र आने लगा, यहाँ तक कि अपनी नज़्म 'अजनबी औरत' की नायिका भी उसे अपनी ही तरह कामग्रस्त नज़र आई, जो रोमांस की तलाश में हज़ारों मील दूर एशिया में आती है। और इस प्रकार उसकी ये मानसिक उलझनें इतनी कटु हो गई कि वह 'ख़ुदकशी' पर उतर आया।

नैराश्य, उद्वेग तथा अवसन्नता की ये घातक प्रवृत्तियाँ टी० एस० इलियट ऐसे पश्चिम के पतनशील कवियों की विशेषतायें हैं और जिस प्रकार काव्य मूल्यों से हटी होने के कारण इनके वर्णन के लिए इलियट को फ्रांस से निर्बन्ध तथा अतुकांत छन्द लेने पड़े थे, उसी प्रकार इस छन्द को उपयुक्त देख 'राशिद' ने इसे अंग्रेज़ी से उर्दू में खपाया। इसमें संदेह नहीं है कि किसी विशेष छंद के अनुसार शेर गढ़ लेना काफ़ी आसान काम है लेकिन विचारों की गति के अनुसार छंद का निर्माण करना, विचारों के उतार-चढ़ाव के अनुसार पंक्तियों की लम्बाई-चौड़ाई निश्चित करना, ठीक स्थान पर तुक बिठाना और इन सब के सुन्दर समन्वय से एक सच्चा छंदबद्ध प्रभाव उत्पन्न करना इतना कठिन है कि यह हर किसी के बस की बात नहीं। इसके लिए 'राशिद' ऐसे कलाकार ही की आवश्यकता होती है जो प्रत्येक पंक्ति बल्कि प्रत्येक शब्द को नगीने की तरह जड़ सके।

लेकिन मनःस्थिति को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने के लिए पुरानी शैली के खड़खड़ाते राग को किसी नई लय में बदल देने से ही कोई शायर महान् शायर नहीं बन सकता। महान् शायरी रूप तथा विषय-वस्तु के संतुलन के साथ-साथ रूप की सुन्दरता तथा विषय-वस्तु के स्वास्थ्य की पाबंद होती है। 'राशिद' के यहाँ एक चीज़ कमाल की सीमा पर है लेकिन दूसरी नहीं के बराबर।

आल-इंडिया रेडियो दिल्ली के बाद आजकल 'राशिद' पाकिस्तान रेडियो पेशावर में है और एक कविता-संग्रह देने के बाद लगभग सो गया है।

इतक़ाम

उसका चेहरा, उसके खद्दोखाल[1] याद आते नही,
इक शबिस्तां[2] याद है,
इक बरहना[3] जिस्म आतिशदां के पास,
फर्श पर कालीन, कालीनो पे सेज,
धात और पत्थर के बुत,
गोशा-ए-दीवार में[4] हंसते हुए,
और आतिशदां मे अगारो का शोर,
उन बुतो की बेहिसी पर खश्मगीं[5] !
उजली-उजली ऊंची दीवारो पे अक्स[6] ,
उन फिरगी हाकिमो की यादगार
जिनकी तलवारों ने रक्खा था यहां,
संगे-बुनियादे-फिरंग[7] ।

उसका चेहरा उसके खद्दोखाल याद आते नही,
एक बरहना जिस्म अब तक याद है,
अजनबी औरत का जिस्म,
मेरे 'होटो' ने लिया था रात भर,
जिससे अरबाबे-वतन की[8] बेबसी का इतकाम,
वो बरहना जिस्म अब तक याद है ।

---

१ नैन-नक्श २ शयनागार ३ नग्न ४ दीवार के कोने मे ५ क्रोधित ६ प्रतिबिम्ब ७ अंग्रेजी राज्य की नींव-शिला ८ देशवासियो की

दरीचे के क़रीब

जाग ऐ शम्म-ए-शबिस्ताने-विसाल[1] ,
मख़मले-ख़्वाब के इस फ़र्शे-तरबनाक[2] से जाग !
लज़्ज़ते-शब से[3] तेरा जिस्म अभी चूर सही,
आ मेरी जान मेरे पास दरीचे के क़रीब,
देख किस प्यार से अनवारे-सहर[4] चूमते हैं,
मस्जिदे-शहर के मीनारों को,
जिनकी रफ़अ़त[5] से मुझे,
अपनी बरसों की तमन्ना का खयाल आता है।

सीमगूं[6] हाथों से ऐ जान ज़रा,
खोल मै-रंग[7] जुनूंखेज़[8] आंखें,
इसी मीनार को देख,
सुबह के नूर से शादाब सही,
इसी मीनार के साये तले कुछ
अपने बेकार खुदा के मानिन्द
ऊंघता है किसी तारीक नि
एक इफ़लास[10] का मार
एक इफ़रियत[12]——
तीन सौ साल की ज़िल्ल
ऐसी ज़िल्लत कि नहीं

---

१. मिलन के शयनगृह
३. रात के आनन्दों से ४.
(गोरे) ७. शराबी ८.
११. ग़मगीन मुल्ला १२.

देख बाज़ार मे लोगो का हुजूम,
बेपनाह सेल[1] की मानिंद रवां,
जैसे जन्नात[2] बियाबानो में,
मशअलें लेके सरे-शाम निकल आते हैं।
इनमें हर शख्स के सीने के किसी गोशे में,
एक दुल्हन सी बनी बैठी है,
टमटमाती हुई नन्ही सी खुदी[3] की क़दील[4]।
लेकिन इतनी भी तवानाई[5] नही,
बढ़के इनमें से कोई शोला-ए-जव्वाला बने,
इनमें मुफलिस भी हैं बीमार भी हैं,
ज़ेरे-अफलाक[6] मगर ज़ुल्म सहे जाते हैं।

एक बूढ़ा सा थकामादा सा रहवार[7] हू मैं
भूख का शाहसवार,
सख्तगीर और तनोमद भी है।
मैं भी इस शहर के लोगो की तरह,
हर शबे-ऐश गुज़र जाने पर,
बहरे-जमग्र खसो-खाशाक निकल जाता हू[8],
चर्खे-गर्द[9] है जहा,
शाम को फिर उसी काशाने[10] में लौट आता हूं।
बेबसी मेरी ज़रा देख कि मैं,
मस्जिदे शहर के मीनारो को,
इस दरीचे में से फिर झाकता हूं,
जब इन्हे आलमे-रुख्सत[11] में शफक[12] चूमती है।

---

१. सेलाब २ भूत ३ स्वाभिमान ४ दीपक ५ बल ६ आकाश की छत्र-छाया म ७ घोड़ा ८ घोंसला बनाने के निमित्त तिनके इकट्ठे करने के लिए ९ घूमने वाला आकाश १० घर ११ विदा होते समय १२ सध्या की लालिमा

मैं उसे वाक़िफ़े-उलफ़त न करूं !

सोचता हूं कि बहुत सादा-ओ-मासूम है वो,
मैं अभी उस को शनासा-ए-मुहब्बत[1] न करूं,
रूह को उस की असीरे-ग़मे-उलफ़त[2] न करूं,
उस को रुसवा न करूं वक़्फ़े-मुसीबत[3] न करूं।

सोचता हूं कि अभी रंज से आज़ाद है वो,
वाक़िफ़े - दर्द नहीं, ख़ूगरे - आलाम[4] नहीं,
सहरे - ऐश[5] में उसकी असरे - शाम[6] नहीं,
ज़िन्दगी उसके लिए ज़हर भरा जाम नहीं।

सोचता हूं कि मुहब्बत है जवानी की ख़िज़ां,
उसने देखा नही दुनियां में बहारों के सिवा,
नकहतो - नूर[7] से लबरेज़[8] नज़ारों के सिवा,
सब्ज़ाज़ारों के[9] सिवा और सितारों के सिवा।

सोचता हूं कि ग़मे-दिल न सुनाऊं उस को,
सामने उसके कभी राज़ को उरियां[10] न करूं,
ख़लिशे-दिल[11] से उसे दस्तो-गरेबां न करूं[12],
उसके जज़्बात को मैं शोला-बदामां[13] न करूं।

---

१. प्रेम से परिचित २. प्रेम के दुखों में बन्दी ३. मुसीबतों के हवाले ४. दुखों-पीड़ाओं की अभ्यस्त ५. ऐश की सुबह ६. शाम का समय ७. सुगन्धि तथा प्रकाश ८. परिपूर्ण ९ फुलवाड़ियों के १०. प्रकट ११. हृदय की कसक १२. झुकने न दूं १३. शोले की तरह भड़कना

बेकरां रात के सन्नाटे में !

तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरां[1] रात के सन्नाटे में,
जज़्बा-ए-शौक़ से हो जाते हैं ऐज़ा[2] मदहोश ।
और लज़्ज़त की गिरांबारी[3] से,
जहन बन जाता है दलदल किसी बीराने की ।
और कहीं उसके क़रीब,
नींद, आग़ाज़े-ज़मिस्तां[4] के परिंदे की तरह,
ख़ौफ़ दिल में किसी मौहूम[5] शिकारी का लिये,
अपने पर तोलती है, चीख़ती है ।
बेकरां रात के सन्नाटे में !
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
आरज़ूएँ तेरे सीने के कुहिस्तानों में[6] ,
ज़ुल्म सहते हुए हब्शी की तरह रेंगती हैं !
एक लमहे के लिए दिल में ख़याल आता है,
तू मेरी जान नहीं,
बल्कि साहिल के किसी शहर की दोशीज़ा[7] है ।
और तेरे मुल्क के दुश्मन का सिपाही हूं मैं,
एक मुद्दत से जिसे ऐसी कोई शब न मिली,
कि ज़रा रूह को अपनी वो सुबकबार[8] करे !
बेपनाह ऐश के हेजान[9] का अरमां लेकर,
अपने दस्ते से कई रोज़ से मफ़रूर हूं मैं !
ये मेरे दिल में ख़याल आता है,
तेरे बिस्तर पे मेरी जान कभी,
बेकरां रात के सन्नाटे में !

---

१. अथाह २. अंग ३. बोझ ४. शरद ऋतु की शुरुआत ५. कल्पि
६. पहाड़ी स्थानों मे ७. सुकुमारी ८. हल्का ९. आवेग

परिचय

नई दिल्ली के एक शानदार होटल में एक कोने की मेज पर पांच-छः व्यक्ति बैठे चाय पी रहे थे और आपस में हंसी-मज़ाक कर रहे थे कि एकाएक इर्द-गिर्द की मेजों पर बैठे हुए भद्र लोगों ने उस मेज़ पर एक हंगामा-सा होते देखा। पांच-छः व्यक्तियों की वह टुकड़ी किस बात पर आपस में उलझ पड़ी थी, यह तो खैर किसी को मालूम न हो सका क्योंकि ऊंचे स्वर के बावजूद उनकी बातें लोगों की समझ में नहीं आ रही थीं, अलबत्ता यह ज़रूर दिखाई दिया कि नौबत हाथापाई तक पहुंचे बिना नहीं रहेगी। विशेष रूप से गंजे सिर, ऊबड़-खाबड़ भवों और मजबूत जबड़े वाला एक नाटे क़द का व्यक्ति अपने सामने के साथी के मुंह पर घूंसा जमाये बिना नहीं टलेगा। लेकिन लोग आश्चर्य से एक दूसरे का मुंह देखने लगे जब कुछ क्षणों के बाद ही वे सब पुनः घी-शक्कर हो गये और उस टुकड़ी के वे दोनों मुख्य पात्र जो अभी-अभी मरने मारने पर उतारू थे, एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर एक-दूसरे की आंखों में झांकने और मुस्कराने लगे।

गंजे सिर, ऊबड़-खाबड़ भवों, मजबूत जबड़े और नाटे क़द का यह व्यक्ति उर्दू का प्रसिद्ध शायर 'जज़्बी' था। टुकड़ी में सबके सब उर्दू के माने हुए शायर और अदीब (लेखक) थे और उसका अभी कुछ समय पहले का प्रतिद्वन्द्वी 'जज़्बी' ही की तरह एक प्रसिद्ध शा[illegible] और उसका घनिष्ठ मित्र था और वे काव्य-चर्चा करते-करते एक बात प[illegible] उलझ पड़े

'जज़्बी' ने अपने

शेर कहना छोड दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फायदा जो दोस्ताना ताल्लुकात भी कायम न रहने दे।"

और उसके प्यारे मित्र और समकालीन शायर ने सिगरेट का धुआँ उसके चेहरे पर बिखेरते हुए और गुर्राते हुए कहा 'अगर तुम ने शायरी छोड दी जज्बी! तो याद रखो, मैं तुम्हें कत्ल कर दूंगा।' और फिर सब से सम्बोधित हो उसने बडी उत्सुकता से कहा, "अब हम 'जज्बी' से उनकी नई ग़ज़ल सुनेंगे।"

"यहाँ ?" जज्बी ने बडे आश्चर्य से आस-पास बैठे हुए भद्र लोगो की ओर देखा।

"हा, यहीं," उसका मित्र पुन गुर्राया। और कुछ इन्कार और कुछ इसरार के बाद पाच-छ लेखकों, शायरो और समालोचको की वह टुकडी 'जज्बी' के शेरो पर दाद देने और सिर धुनने म व्यस्त हो गई।

'जज्बी' और उसके उस समकालीन शायर की यह झडप काव्य विषय और उसके रूप के सम्बन्ध मे हुई थी। उसका मित्र विषय को रूप पर प्रधानता दे रहा था और 'जज्बी' रूप और विषय दोनो को बराबर का दर्जा देने के पक्ष मे था। दोनो प्राचीन शायरो की कला कृतिया के उदाहरण दे देकर अपनी बात मनवाने का प्रयास कर रहे थे कि एक शेर पर तक़रार हो गई। 'जज्बी' के समीप वह शेर कला की दृष्टि से घटिया श्रेणी का था और उसके मित्र के विचार मे वह शेर इसलिए उच्चकोटि का था कि उसमे शायर ने बडी दो टूक बात की थी और उसका विचार प्रगतिशील था।

'जज्बी' की शायरी के सम्बन्ध म आम धारणा यह है कि वह केवल आत्मगत अनुभूतियो का शायर है और जान बूझ कर अपनी 'कला' को परिस्थितियों की पकड से बचाये रखना चाहता है। उसके यहा विषय पर रूप को महत्व दिया जाता है और इस सम्बन्ध म एक बार एक समालोचक ने उसे 'केवल शब्दो का जौहरी' कहकर उसकी शायरी की निंदा की थी। एक और समालोचक ने उसे निराशावादी शायर सिद्ध करके 'फानी' (उर्दू का एक प्रसिद्ध निराशावादी शायर) का चर्बा कहा था और एक और महाशय ने उसे प्रतीकवादी शायर की उपाधि दी थी।

यह सही है कि ऊपरी ढग से देखने से हमे 'जज्बी' के यहा इन अवगुणों की झलक मिलेगी लेकिन यदि हम उस की शायरी का क्रमानुसार मूल्याङ्कन करें और जैसा कि शायर का अधिकार है [illegible] (Imaginative Sympathy) से काम लें तो हमे 'जज्बी' की शायरी पर उक्त प्रकार के फ़तवे न

केवल अनुचित नज़र आयेंगे वल्कि निराधार भी। हमें उसके यहां अन्तर्गति और कला का एक ऐसा सुन्दर समावेश मिलेगा जो उर्दू की नई पीढ़ी के बहुत कम शायरों के हिस्से में आया है और जिसके लिए एक दो दिन की नहीं वर्षो की तपस्या चाहिये। काव्य-रूप के साथ उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार (Friendly terms with the form), अतीत की उत्तम परम्पराओं को अपने सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्वित देखने का बोध और जीवन की परगत् प्रेरणाओं की भट्टी में से तप कर निकला हुआ आत्मानुभव और आत्मगत्त अनुभूतियां उसकी शायरी में इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उसका हर शेर हमें रुक जाने और सोचने पर विवश कर देता है और मेरे ख़याल से यह दलील उसके एक सफल और बड़ा शायर होने के लिए काफी है।

मुईन अहसन 'जज़्बी' का जन्म २१ अगस्त १९१२ को जिला आज़मगढ के एक गाँव में हुआ। दादा डाक्टर अब्दुल गफ़ूर स्वयं शायर थे और 'मतीर' उपनाम से गज़लें कहते थे। फूफी खातून अकरम उर्दू के प्रसिद्ध लेखक 'राज़िक-उलख़ैरी' की पत्नी थीं और स्वयं भी निवन्ध, कहानियाँ आदि लिखती थी। इस प्रकार वचपन में ही घर के साहित्यिक वातावरण ने 'जज़्बी' पर अपना प्रभाव डाला और नौ-दस वर्ष की अल्प आयु में ही उसने तुक-बन्दी शुरू कर दी और सोलह वर्ष की आयु में तो बाक़ायदा ग़ज़लें कहने लगा।

'जज़्बी' का जीवन असह्य परिस्थितियों की एक लम्बी दास्तान है। उसने अपने जीवन में ऐसे दिन भी देखे जब उसे सुवह की चाय तो किसी तरह प्राप्त हो गई लेकिन दोपहर के खाने के लिए उसे छः-छः मील पैदल चलकर किसी मित्र-मुलाक़ाती का मुँह देखना पड़ा और कभी-कभी तो फ़ाके तक की नौवत आई। ट्यूशनें कर-करके और पेट पर पत्थर वाँध कर उसने एम० ए० किया और नौकरी के सिलसिले में वरसों एक जिले से दूसरे जिले में, और एक शहर से दूसरे शहर में मारा-मारा फिरता रहा। प्रत्यक्ष है कि उसकी शायरी इस प्रकार की परिस्थितियों से प्रभावित हुए विना नही रह सकती थी और वह जो कुछ समालोचक उसे निराशावादी शायर सिद्ध करने के लिए उसके निम्न प्रकार के शेरों का उदाहरण देते हैं:

मरने की दुआयें क्यों मांगूं, जीने की तमन्ना कौन करे?
ये दुनिया हो या वो दुनिया, अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे?

जब कश्ती साबितो-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी ?
अब ऐसी शिकस्ता[1] कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?
दुनिया ने हमे छोडा 'जज्बी', हम छोड न दें क्यों दुनिया को ?
दुनिया को समझकर बैठे हैं अब 'दुनिया दुनिया' कौन करे ?

—तो एक तो वे शायर के पाँव पर खडे होकर आलोचना करने का कष्ट नही करते और दूसरे उसके उसी काल के निम्न प्रकार के शेरो पर आँखें मीच लेते हैं

किसी से हाले-दिले-बेकरार कह न सका।
कि चश्मे-यास[2] में आँसू भी आ के बह न सका॥
न आये मौत खुदाया तबाह हाली में।
ये नाम होगा ग़म-रोज़गार[3] सह न सका॥

यों तो 'जज्बी' १६२६ से शेर कह रहा था और

अल्लाह री बेखुदी कि चला जा रहा हूँ मैं।
मंजिल को देखता हुआ, कुछ सोचता हुआ॥

और

हुस्न हूँ मैं कि इश्क की तस्वीर।
बेखुदी[1] मुझ से पूछता हूँ मैं॥

ऐसे सुन्दर शेर कह रहा था, लेकिन १६३४ तक उच्चकोटि के पत्रो के सम्पादक धन्यवाद सहित उसकी ग़ज़लें लौटाते रहे। फिर १६३४ मे जब किसी प्रकार 'हुमायूँ' (प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका—लाहौर) म उसकी वही—'मरने की दुआयें क्यो मागूँ' वाली ग़ज़ल प्रकाशित हो गई तो एकदम पाठक और लेखक सभी चौंक उठे और उस गज़ल के बाद से उसकी गणना आधुनिक काल के प्रथम श्रेणी के उर्दू शायरो मे होने लगी। उस ज़माने मे उसने 'एक दोस्त से' और 'ऐ दोस्त' एसी सुन्दर नज़म भी लिखी, लेकिन सही मानों मे उसकी प्रगतिशीलता का प्रारम्भ १६३७ मे हुआ। उसके करुणा भाव मे सर्वव्यापकता उत्पन्न हुई और उसने 'फ़ितरत एक मुफलिस की नजर म' (इस सकलन मे शामिल है) जैसी अर्थपूर्ण और जीवन्त नज़म लिखी। और उसकी इस काल की ग़ज़लो मे भी नई दिशायें और नई अदायें मिलने लगी। दो शेर देखिये -

---

१ टूटी फूटी २ शोक-पूर्ण आँख ३ ससार के ग़म।

इक यास भरे[1] दिल पर न हुई तासीर[2] तुम्हारी नज़रों की।
इक मोम के बेहिस टुकड़े पर ये नाज़ुक खंजर टूट गये॥
मेरी ही नज़र की मस्ती से सब शीशा-ओ-साग़र रक़्सां थे[3]।
मेरी ही नज़र की गर्मी से सब शीशा-ओ-साग़र टूट गये॥

तात्पर्य यह है कि 'जज्बी' की शायरी बराबर विकास करती रही है। उसकी व्यक्तिगत करुणा सामूहिक करुणा में परिवर्तित होती रही है। उसके यहाँ जो अनुभूतियाँ और भावावेग थे वे आज भी मौजूद हैं लेकिन आज उन अनुभूतियों और भावावेग पर बुद्धि का पहरा है और बुद्धि के पहरे तले उसकी अनुभूतियाँ तथा भावावेग जहाँ हमें जीवन को समझने में सहायता देते हैं, वहाँ उसके लिए उत्तम काव्य-विषय और काव्य-रूप जुटाते हैं। काव्य-रूप के सम्बन्ध में 'जज्बी' बहुत चौकन्ना है। अपने एक-एक शेर को वह महीनों मांजता रहता है और उसे उस समय तक प्रकाशनार्थ नहीं भेजता जब तक उसे पूरा विश्वास नहीं हो जाता कि कला की दृष्टि से उस शेर में अधिक कांट-छांट की गुंजाइश नहीं है। लेकिन काव्य-रूप पर इतना परिश्रम करने का मतलब यह नहीं है कि वह काव्य-विषय की अवहेलना कर देता हो। हाँ, इस प्रसंग में वह पाठक से अपने संकेतों तथा अनुभूतियों को समझने की मांग अवश्य करता है और उसकी मांग पूरी होते ही उसकी हर बात बड़े सुन्दर और स्पष्ट रूप से हमारे मस्तिष्क में उतर जाती है...

...और फिर आवारा-गर्दी के ज़माने में—
जब कश्ती साबितो-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी?
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे?

—कहने वाले शायर को जीवन के विभिन्न मार्गों में भटकने के बाद मुस्लिम विश्वविद्यालय (अलीगढ़) में एक लैक्चरर के रूप में आश्रय मिल जाता है और वह—

क्या तुमको पता क्या तुमको खबर दिन-रात खयालों में अपने।
ऐ काकुले-गेती[4] हम तुमको, जिस तरह संवारा करते हैं॥
ऐ मौजे-बला इनको भी ज़रा दो-चार थपेड़े हलके से।
कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफ़ां का नज़ारा करते हैं॥

---

१. निराशा-पूर्ण २. प्रभाव ३. शराब के प्याले और सुराहियां नाच रही थीं ४. दुनिया के केशों की लट (संसार)

—कहता है और इस पर भी उसका कोई समकालीन शायर या समालोचक उससे काव्य विषय और काव्य-रूप के सम्बन्ध में उलझ पड़ता है तो किसी शानदार होटल में बैठे होने के बावजूद उसका जी चाहता है कि वह उसके मुंह पर एक घूसा जमा दे। लेकिन फिर कुछ क्षणों के बाद वह बड़े प्यार से अपने उस प्रतिद्वन्द्वी का हाथ दबाकर उससे कहने लगता है 'प्यारे! मैं शेर कहना छोड़ दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फ़ायदा जो दोस्ताना ताल्लुक़ात भी क़ायम न रहने दे।'

'एक शायर की हैसियत से हमारे लिए जो चीज़ सबसे ज्यादा अहम है वह जिन्दगी या ज़िन्दगी के तजुर्बात हैं। लेकिन कोई तजुर्बा उस वक्त तक मौज़ू-ए सुख़न (काव्य विषय) नहीं बनता जब तक उसमें शायर को जज्बे की शिद्दत (भावावेग) और अहसास (अनुभूति) की ताजगी का यक़ीन न हो जाए। यही दोनों चीजें शायर को क़लम उठाने पर मजबूर करती हैं और अगर शायर के पास कोई अपना नुक्ता-नज़र (दृष्टिकोण) है तो उसकी झलक उसके जज्बात में भी नज़र आयेगी। यह झलक कभी हल्की होगी, कभी गहरी, लेकिन होगी ज़रूर। क्योंकि जज्बातो अहसासात शायर की तनक़ीदी कुव्वतों (समालोचनात्मक शक्तियों) से बचकर नहीं निकल सकते। बल्कि उन्हें शऊरी तौर पर (बोधात्मक ढंग से) परखती है। इस अमल (प्रक्रिया) के बाद शायर के नुक्ता नज़र का जज्बातो-अहसासात में सरायत (प्रवेश) कर जाना लाज़मी है। यहां 'हल' (समाधान) की वज़ाहत (व्याख्या) ज़रूरी नहीं। अन्दाज़े-बयान खुद इसकी ग़म्माज़ी (गवाही देना) करता है। दरिया का बहाव दुरुस्त होना चाहिये कश्ती कहां-कहां किनारे से आ लगेगी।

(जज्बी द्वारा लिखित उसके कविता-संग्रह फ़रोज़ां की भूमिका में से)

फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में

फ़ितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारों में ?
है कौन-सी रअ़नाई[1] आखिर, इन फूलों में, इन खारों में[2] ?

वो ख्वाह[3] सुलगते हों शब भर, वो ख्वाह चमकते हों शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारों में ?

इस चांद की ठंडी किरनों से मुझको तो सुकूं[4] होता ही नहीं,
मुझको तो जुनूं[5] होता ही नहीं, जब फिरता हूं गुलज़ारों में।

ये चुप-चुप नर्गिस की कलियां, क्या जाने कैसी कलियां हैं ?
जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारों में।

ये लाल शफ़क़[6] ये लाला-ओ गुल[7] इक चिंगारी भी जिन में नहीं,
शोले भी नहीं गर्मी भी नहीं है तेरे आतिशज़ारों में[8] ॥

उस वक़्त कहां तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख की तपिश भर देता है, दरियाओं में कुहसारों में।

जाड़े की भयानक रातों में वो सर्द हवाओं की तेज़ी,
हां वो तेज़ी, वो बेमेहरी[9] जो होती है तलवारों में।

दरिया के तलातुम[10] का मंज़र[11] हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मंझधारों में।

---

१. सौन्दर्य २. कांटों में ३. चाहे ४. शान्ति ५. उन्माद
६. क्षितिज ७. फूल ८. अग्नि-स्थलों में ९. निर्दयता १०. तूफ़ान
११. दृश्य

ग़ज़लें

इन्तहाए-ग़म में मुझको मुस्कराना आ गया।
हाथ इख़फ़ाए-मुहब्बत[1] का बहाना आ गया॥
इस तरफ़ इक आशियाने की हक़ीक़त भूल गई।
उस तरफ़ इक शोख़ को बिजली गिराना आ गया॥
रो दिये वो ख़ुद भी मेरे गिरया-ए-पैहम[2] पे आज।
अब हक़ीक़त में मुझे आंसू बहाना आ गया॥
मेरी ख़ाके-दिल भी आख़िर उनके काम आ ही गई।
कुछ नहीं तो उनको दामन ही बचाना आ गया॥
वो ख़राशे-दिल[3] जो ऐ 'जज़्बी' मेरी हमराज़ थी।
आज उसे भी ज़ख़्म बनकर मुस्कराना आ गया॥

◇ ◇ ◇

शरीके-महफ़िले-दारो-रसन[4] कुछ और भी हैं।
सितमगरो[5]! अभी अहले-कफ़न[6] कुछ और भी हैं॥
रवां-दवां यूंही ऐ नन्ही बूंदियों के अब्र[7]।
कि इस दियार[8] में उजड़े चमन कुछ और भी हैं॥
ख़ुदा करे न थकें हश्र तक जुनूं[9] के पांव।
अभी मनाज़िरे-दश्तो-दमन[10] कुछ और भी हैं।
ख़ुदा करे मेरी वामांदगी[11] को ग़ैरत आये।
अभी मनाज़िले-रंजो-मेहन[12] कुछ और भी हैं॥

---

१. छुपाना २. निरन्तर रुदन ३. दिल पर पड़ी हुई खरोंच ४. सूली पर चढ़ने वाली महफ़िल में शामिल ५. अत्याचार करने वालो ६. मरने को तैयार ७. बादल ८. देश ९. उन्माद १०. जंगल-बयाबानों के दृश्य ११. थकन १२. दुखों-कष्टों की मंज़िलें

शेर कहना छोड दूंगा। आखिर ऐसी शायरी से क्या फ़ायदा जो दोस्ताना ताल्लुक़ात भी क़ायम न रहने दे।"

और उसके प्यारे मित्र और समकालीन शायर ने सिगरेट का धुआँ उसके चेहरे पर बिखेरते हुए और गुर्राते हुए कहा 'अगर तुम ने शायरी छोड दी जज्बी ! तो याद रखो, मैं तुम्हें कत्ल कर दूंगा।" और फिर सब से सम्बोधित हो उसने बड़ी उत्सुकता से कहा, "अब हम 'जज्बी' से उसकी नई ग़ज़ल सुनेंगे।"

"यहाँ ?"जज्बी ने बड़े आश्चर्य से आस-पास बैठे हुए भद्र लोगों की ओर देखा।

"हाँ, यहीं," उसका मित्र पुनः गुर्राया। और कुछ इन्कार और कुछ इसरार के बाद पांच-छः लेखकों, शायरों और समालोचकों की वह टुकडी 'जज्बी' के शेरों पर दाद देने और सिर धुनने में व्यस्त हो गई।

'जज्बी' और उसके उस समकालीन शायर की यह झड़प काव्य विषय और उसके रूप के सम्बन्ध में हुई थी। उसका मित्र विषय को रूप पर प्रधानता दे रहा था और 'जज्बी' रूप और विषय दोनों को बराबर का दर्जा देने के पक्ष में था। दोनों प्राचीन शायरों की कला कृतियों से उदाहरण दे देकर अपनी बात मनवाने का प्रयास कर रहे थे कि एक शेर पर तकरार हो गई। 'जज्बी' के समीप वह शेर कला की दृष्टि से घटिया श्रेणी का था और उसके मित्र के विचार में वह शेर इसलिए उच्चकोटि का था कि उसमें शायर ने बड़ी दो-टूक बात की थी और उसका विषय प्रगतिशील था।

'जज्बी' की शायरी के सम्बन्ध में आम धारणा यह है कि वह केवल आत्म-गत अनुभूतियों का शायर है और जान-बूझ कर अपनी 'कला' को परिस्थितियों की पकड़ से बचाये रखना चाहता है। उसके यहां विषय पर रूप को महत्व दिया जाता है और इस सम्बन्ध में एक बार एक समालोचक ने उसे 'केवल शब्दों का जौहरी" कहकर उसकी शायरी की निंदा की थी। एक और समा-लोचक ने उसे निराशावादी शायर सिद्ध करके 'फ़ानी' (उर्दू का एक प्रसिद्ध निराशावादी शायर) का चर्बा कहा था और एक और महाशय ने उसे प्रतीक-वादी शायर की उपाधि दी थी।

यह सही है कि ऊपरी ढंग से देखने से हमें 'जज्बी' के यहां इन अवगुणों की झलक मिलेगी लेकिन यदि हम उस की शायरी का क्रमानुसार मूल्याङ्कन करें और जैसा कि शायर का अधिकार है किंचित (Imaginative Sym-pathy) से काम लें तो हमें 'जज्बी' की शायरी पर उक्त प्रकार के फ़तवे न

केवल अनुचित नज़र आयेंगे बल्कि निराधार भी। हमें उसके यहां अन्तर्गति और कला का एक ऐसा सुन्दर समावेश मिलेगा जो उर्दू की नई पीढ़ी के बहुत कम शायरों के हिस्से में आया है और जिसके लिए एक दो दिन की नहीं वर्षों की तपस्या चाहिये। काव्य-रूप के साथ उसका मैत्रीपूर्ण व्यवहार (Friendly terms with the form), अतीत की उत्तम परम्पराओं को अपने सामाजिक वातावरण के साथ सम्बन्धित देखने का बोध और जीवन की परगत् प्रेरणाओं की भट्टी में से तप कर निकला हुआ आत्मानुभव और आत्मगत अनुभूतियां उसकी शायरी में इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उसका हर शेर हमें रुक जाने और सोचने पर विवश कर देता है और मेरे ख़याल में यह दलील उसके एक सफल और बड़ा शायर होने के लिए काफी है।

मुईन अहसन 'जज़्बी' का जन्म २१ अगस्त १६१२ को ज़िला आज़मगढ़ के एक गांव में हुआ। दादा डाक्टर अब्दुल ग़फ़ूर स्वयं शायर थे और 'सतीर' उपनाम से ग़ज़लें कहते थे। फूफी ख़ातून अकरम उर्दू के प्रसिद्ध लेखक 'राज़िक़-उलख़ैरी' की पत्नी थीं और स्वयं भी निबन्ध, कहानियां आदि लिखती थीं। इस प्रकार बचपन में ही घर के साहित्यिक वातावरण ने 'जज़्बी' पर अपना प्रभाव डाला और नौ-दस वर्ष की अल्प आयु में ही उसने तुक-बन्दी शुरू कर दी और सोलह वर्ष की आयु में तो बाक़ायदा ग़ज़लें कहने लगा।

'जज़्बी' का जीवन असह्य परिस्थितियों की
अपने जीवन में ऐसे दिन भी देखे ... उसे
हो गई लेकिन दोपहर के खाने
मित्र-मुलाक़ातों का मुंह देख
आई। ट्यूशनें कर-करके
और नौकरी के सिलसि
से दूसरे शहर में मारा-
र की परिस्थितियों
समालोचक उसे नि
शेरों का उदाहरण

मरने की दुआ
ये दुनिया हो

जब कश्ती साबितो-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी ?
अब ऐसी शिकस्ता[1] कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे ?
दुनिया ने हमे छोडा 'जज्बी', हम छोड न दें क्यों दुनिया को ?
दुनिया को समझकर बैठे हैं, अब 'दुनिया-दुनिया' कौन करे ?

—तो एक तो वे शायर के पाँव पर खडे होकर आलोचना करने का कष्ट नही करते और दूसरे उसके उसी काल के निम्न प्रकार के शेरो पर आँखें मीच लेते हैं

किसी से हाले-दिले-बेकरार कह न सका।
कि चश्मे-यास[2] मे आँसू भी आ के बह न सका ॥
न आये मौत खुदाया तबाह हाली मे।
ये नाम होगा गमे-रोजगार[3] सह न सका ॥

यो तो 'जज्बी' १६२६ से शेर कह रहा था और :

अल्लाह री बेखुदी कि चला जा रहा हूँ मैं।
मजिल को देखता हुआ, कुछ सोचता हुआ ॥

और

हुस्न हूँ मैं कि इश्क की तस्वीर।
बेखुदी ! तुझ से पूछता हूँ मैं ॥

ऐसे सुन्दर शेर कह रहा था, लेकिन १६३४ तक उच्चकोटि के पत्रो के सम्पादक धन्यवाद सहित उसकी गजलें लौटाते रहे। फिर १६३४ मे जब किसी प्रकार 'हुमायूँ' (प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका—लाहौर) म उसकी वही—'मरने की दुआयें क्यो मागूँ' वाली ग़ज़ल प्रकाशित हो गई तो एकदम पाठक और लेखक सभी चौंक उठे और उस गजल के बाद से उसकी गणना आधुनिक काल के प्रथम श्रेणी के उर्दू शायरो मे होने लगी। उस जमाने म उसने 'एक दोस्त से' और 'ऐ दोस्त' ऐसी सुन्दर नज्मे भी लिखी, लेकिन सही मानो मे उसकी प्रगतिशीलता का प्रारम्भ १६३७ मे हुआ। उसके करुणा-भाव मे सर्वव्यापकता उत्पन्न हुई और उसने 'फितरत एक मुफलिस की नजर मे' (इस सकलन मे शामिल है) जैसी अर्थपूर्ण और जीवन्त नज्म लिखी। और उसकी उस काल की गजलों मे भी नई दिशायें और नई अदायें मिलने लगीं। दो शेर देखिये :

---

१ टूटी फूटी २ शोक-पूर्ण आँख ३ ससार के ग़म।

फ़ितरत एक मुफ़लिस की नज़र में

फ़ितरत के पुजारी कुछ तो बता, क्या हुस्न है इन गुलज़ारों में ?
है कौन-सी रअ़नाई[1] आख़िर, इन फूलों में, इन ख़ारों में[2] ?

वो ख़्वाह[3] सुलगते हों शब भर, वो ख़्वाह चमकते हों शब भर,
मैंने भी तो देखा है अक्सर, क्या बात नई है तारों में ?

इस चांद की ठंडी किरनों से मुझको तो सुकूं[4] होता ही नहीं,
मुझको तो जुनूं[5] होता ही नहीं, जब फिरता हूं गुलज़ारों में।

ये चुप-चुप नर्गिस की कलियां, क्या जाने कैसी कलियां हैं ?
जो खिलती हैं, जो हंसती हैं और फिर भी हैं बीमारों में।

ये लाल शफ़क़[6] ये लाला-ओ-गुल[7] इक चिंगारी भी जिन में नहीं,
शोले भी नहीं गर्मी भी नहीं है तेरे आतिशज़ारों में[8] ॥

उस वक़्त कहां तू होता है जब मौसमे-गर्मा का सूरज,
दोज़ख़ की तपिश भर देता है, दरियाओं में कुहसारों में।

जाड़े की भयानक रातों में वो सर्द हवाओं की तेज़ी,
हां वो तेज़ी, वो बेमेहरी[9] जो होती है तलवारों में।

दरिया के तलातुम[10] का मंज़र[11] हां तुझको मुबारिक हो लेकिन,
इक टूटी-फूटी कश्ती भी चकराती है मंझधारों में।

---

१. सौन्दर्य २. कांटों में ३. चाहे ४. शान्ति ५. उन्माद
६. क्षितिज ७. फूल ८. अग्नि-स्थलों में ९. निर्दयता १०. तूफ़ान
११. दृश्य

कोयल के रसीले गीत सुने लेकिन ये कभी सोचा तू ने,
हैं उलझे हुए नग़मे कितने इक साज़ के टूटे तारों में ?

बादल की गरज बिजली की चमक बारिश में वो तेज़ी तीरों की,
मैं ठिठरा सिमटा सड़कों पर, तू जाम-ब-लब[1] मैख़ानों में

सब होशो-ख़िरद[2] के दुश्मन हैं, सब क़ल्बो[3] जिगर के रहज़न[4] हैं,
रक्खा है भला क्या इसके सिवा इन राहते-जाँ महपारों[5] में ?

वो लाख हिलालों[6] से भी हसीं, कैसी ज़ोहरा[7] कैसी परवीं[8] ?
इक रोटी का टुकड़ा जो कहीं मिल जाये मुझे बाज़ारों में।

जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है,
उस वक्त ये ज़र्रा हीरा है, उस वक़्त ये शबनम मोती है।

---

१. शराब से भरे प्याले लिए हुए २. बुद्धि ३. हृदय ४. डाकू
५. आनन्ददायक चाँद के टुकड़ों (सुन्दरियों) में ६. पहली रात के चाँद
७, ८. सितारों तथा स्त्रियों के नाम

ग़ज़लें

इन्तहाए-ग़म में मुझको मुस्कराना आ गया।
हाय इख़फ़ाए-मुहव्वत[1] का वहाना आ गया॥
इस तरफ़ इक आशियाने की हक़ीक़त खुल गई।
उस तरफ़ इक शोख़ को बिजली गिराना आ गया॥
रो दिये वो ख़ुद भी मेरे गिरया-ए-पैहम[2] पे आज।
अब हक़ीक़त में मुझे आंसू वहाना आ गया॥
मेरी ख़ाके-दिल भी आख़िर उनके काम आ ही गई।
कुछ नहीं तो उनको दामन ही वचाना आ गया॥
वो ख़राशे-दिल[3] जो ऐ 'जज़्वी' मेरी हमराज़ थी।
आज उसे भी ज़ख़्म वनकर मुस्कराना आ गया॥

० ० ०

शरीके-महफ़िले-दारो-रसन[4] कुछ और भी हैं।
सितमगरो[5]! अभी अहले-कफ़न[6] कुछ और भी हैं॥
रवां-दवां यूंही ऐ नन्ही बूंदियों के अब्र[7]।
कि इस दियार[8] में उजड़े चमन कुछ और भी हैं॥
ख़ुदा करे न थकें हश्र तक जुनूं[9] के पांव।
अभी मनाज़िरे-दश्तो-दमन[10] कुछ और भी हैं।
ख़ुदा करे मेरी वामांदगी[11] को ग़ैरत आये।
अभी मनाज़िले-रंजो-मेहन[12] कुछ और भी हैं॥

---

१. छुपाना २. निरन्तर रुदन ३. दिल पर पड़ी हुई खरोंच ४. सूली पर चढ़ने वाली महफ़िल में शामिल ५. अत्याचार करने वालो ६. मरने को तैयार ७. बादल ८. देश ९. उन्माद १०. जंगल-बयावानों के दृश्य ११. थकन १२. दुखों-कष्टों की मंज़िलें

अभी समूम[1] ने मानी कहा नसीम[2] से हार।
अभी तो मारका-हाए-चमन[3] कुछ और भी हैं॥
अभी तो हैं दिले शायर में[4] सैकडा नासूर।
अभी तो मोजज़ा-हाए-सुख़न[5] कुछ और भी हैं॥
दिले गुदाज़[6] ने आंखो को दे दिये आंसू।
ये जानते हुए ग़म के चलन कुछ और भी हैं॥

---

१ विषैला पवन २ सुगंधित पवन ३ बाग़ के मोर्चे ४ कवि के हृदय में ५ कविता के चमत्कार ६ कोमल हृदय

फुटकर शेर

दास्ताने - शवे - ग़म क़िस्सा - ए - तूलानी है[१] ।
मुख़्तसर ये है कि तू ने मुझे बरबाद किया ॥
हो न हो दिल को तेरे हुस्न से कुछ निसबत[२] है ।
जब उठा दर्द तो क्यों मैंने तुझे याद किया ?

◇ ◇ ◇

रूठने वालों से इतना कोई जाकर पूछे ।
ख़ुद ही रूठे रहे या हम से मनाया न गया ?
फूल चुनना भी अबस[३] , सैरे-बहारां भी अबस ।
दिल का दामन ही जो कांटों से बचाया न गया ॥

◇ ◇ ◇

शिकवा क्या करता कि उस महफ़िल में कुछ ऐसे भी थे ।
उम्र भर जो अपने ज़ख़्मों पर नमक छिड़का किये ॥

◇ ◇ ◇

ऐ हुस्न ! हम को हिज्र[४] की रातों का ख़ौफ़ क्या ?
तेरा ख़याल जागेगा सोया करेंगे हम ॥
ये दिल से कह के आहों के झोंके निकल गये ।
उन को थपक - थपक के सुलाया करेंगे हम ॥

◇ ◇ ◇

---

१. ग़म की रात का वृत्तांत एक लम्बी कहानी है २. सम्बंध ३. व्यर्थ
४. जुदाई

सरदार जाफ़री

वज्द में है बज़्मे-गेती, रक्स में है कायनात
शायरी का जानते हैं, नारा-ए-मस्ताना हम

और उनकी शायरी बिल्कुल पूरे उतरते हैं। मानव-विकास के क्रम को समझने, जीवन के मिटते हुए मूल्यों का भेद पा लेने, प्रगतिशील शक्तियों से अपना नाता जोड़ने और अपने 'कवि के कर्तव्य' को पूर्ण रूप से समझने के बाद जब उसने काव्य-क्षेत्र में क़दम रखा और जो कुछ उसे कहना था, वह स्पष्ट रूप में कहने लगा तो उर्दू शायरी की परम्पराओं के ठाकरों का चौंकना ठीक उसी तरह ज़रूरी था जिस तरह 'आज़ाद' को 'नज़ीर' के यहाँ बाज़ारूपन नज़र आया था। लेकिन आज चूंकि जीवन की गति अठारवीं और उन्नीसवीं शताब्दि से कहीं अधिक तेज़ है और मानव-बोध पहले से कहीं आगे निकल चुका है, इसलिए सरदार जाफ़री को और उसी की तरह सोचने और शायरी करने वाले उर्दू के अन्य प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी शायरों को अपनी बात के सही सिद्ध करने में अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी; और चूंकि सरदार जाफ़री का राजनैतिक तथा कलात्मक बोध बड़े संतुलित ढंग से एक दूसरे में रच-बस चुके हैं और उसे घटनाओं तथा परिस्थितियों को कवित्व-शक्ति के साथ प्रस्तुत करने की सिद्धि प्राप्त है इसलिए हम देखते हैं कि अपने जिन विचारों को वह हम तक पहुँचाना चाहता है, वे विचार प्रत्यक्ष रूप में हमारे मस्तिष्क में उतर आते हैं और हमारे भीतर जो स्थायी चुभन और तड़प, उमंग और प्रेरणा उत्पन्न करते हैं उनसे हमें केवल जीवन को समझने में ही सहायता नहीं मिलती बल्कि हमारे भीतर सुखप्रद भविष्य के लिए संग्रामशील होने की भावना भी जाग उठती है।

आधुनिक उर्दू शायरी का यह निडर और स्पष्टवक्ता शायर जो अपनी शायरी द्वारा स्वतन्त्रता, शान्ति तथा समानता का प्रचार और परतन्त्रता, युद्ध और साम्राज्य पर कुठाराघात करने के अपराध में पराधीन भारत में भी जेल भुगत चुका है और स्वाधीन भारत में भी, २९ नवम्बर १९१३ को बलरामपुर ज़िला गोंडा (अवध) में पैदा हुआ।

घर का वातावरण यू० पी० के साधारण मध्यवर्गीय मुसलमान घरानों की तरह ख़ालिस धार्मिक था और चूंकि ऐसे घरानों में 'अनीस' के मर्सियों को वही स्थान प्राप्त है जो हिन्दू घरानों में महाभारत और रामायण को, इसलिए अली सरदार जाफ़री पर भी घर के वातावरण ने प्रभाव डाला और अपनी छोटी-सी आयु में ही उसने 'मर्सिये' लिखने शुरू कर दिए और १९३३ तक बराबर मर्सिये लिखता रहा। उसका उस ज़माने का एक शेर देखिये :

अर्श[1] तक ओस के कतरों की चमक जाने लगी।
चली ठंडी जो हवा तारों को नींद आने लगी॥

लेकिन बलरामपुर से हाई स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद जब वह उच्च शिक्षा के लिए मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ पहुँचा और वहाँ उसे अख्तर हुसैन रायपुरी, सिब्ते-हसन, 'जज्बी', 'मजाज़', जा निसार 'अख्तर' और ख्वाजा अहमद अब्बास ऐसे साथी मिले और वह विद्यार्थी आन्दोलनों में गहरा भाग लेने लगा और फिर विद्यार्थियों की एक हड़ताल कराने के सिलसिले में विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया तो उसकी शायरी की धारा आपही आप 'मर्सियों' से राजनीतिक नज़्मों की ओर मुड़ गई और ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज, दिल्ली से बी० ए० और लखनऊ विश्वविद्यालय से एम० ए० करने और कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य बनने के बाद तो उसकी शायरी पूर्णरूप से 'राजनीतिक' हो गई।

उसके समस्त कविता-संग्रह (परवाज़', 'नई दुनिया को सलाम', 'खून की लकीर', 'अमन का सितारा', 'एशिया जाग उठा' और 'पत्थर की दीवार') के अध्ययन से जो चीज़ बड़े स्पष्ट रूप में हमारे सामने आती है और जिससे हमें शायर की असाधारण विशेषता का पता चलता है, वह यह है कि उसके समस्त विचारों का केन्द्र मानव है और उसे मानवता के शानदार भविष्य पर पूरा भरोसा है। ऐतिहासिक बोध और सामाजिक अनुभवों द्वारा उसने इस भेद को पा लिया है कि संसार में व्यक्तियों तथा वर्गों की पराजय तो हो सकती है और होगी, लेकिन मानव अजेय है। और चूँकि उसका परिश्रम उसके अपने ज्ञान ही का नहीं, बहुत हद तक उसके वातावरण का भी निर्माता होता है, अतएव वह सदैव विजयी और भाग्यशील रहेगा और यही कारण है कि हम सरदार जाफ़री की शायरी में किसी प्रकार की निराशा तथा अवसन्नता का चित्रण नहीं मिलता, वरन् उसकी शायरी हमारे भीतर नई-नई उमगें जगाती है। हम उसके सिद्धान्तों से भले ही सहमत न हों लेकिन उसकी निष्कपटता, उसकी सूझ-बूझ और उसके आशावाद से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। कुछ शेर देखिये

गो मेरे सिर पे सियाह रात की परछाई है,
मेरे हाथों में है सूरज का छलकता हुआ जाम,

---

१. आकाश

मेरे अफ़कार में[1] है तल्खी-ए-इमरोज[2], मगर,
मेरे अशआर में है इशरते-फ़र्दा[3] का पयाम।

◇ ◇ ◇

सिर्फ़ इक मिटती हुई दुनिया का नज़्ज़ारा न कर,
आलमे-तख़लीक़ में[4] है इक जहाँ ये भी तो देख,
मैंने माना, मरहले हैं सख़्त, रहें हैं दराज़[5],
मिल गया है अपनी मंज़िल का निशां ये भी तो देख।

◇ ◇ ◇

नया चश्मा है पत्थर के शिगाफ़ों से उबलने को,
ज़माना किस क़दर बेताब है करवट बदलने को।

◇ ◇ ◇

यहाँ तक कि उसकी रोमांटिक नज़्में भी नैराश्य आदि भावों से नितान्त बची हुई हैं और उनमें भी संघर्ष की वही भावना क्रिया-शील है जो उसकी राजनीतिक नज़्मों में विद्यमान है। उसकी एक नज़्म 'इन्तज़ार न कर' का एक टुकड़ा देखिए :

मैं तुमको भूल गया इसका एतबार न कर,
मगर ख़ुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर।
अजब घड़ी है मैं इस वक़्त आ नहीं सकता,
सरूरे-इश्क़ की दुनिया बसा नहीं सकता,
मैं तेरे साज़े-मुहब्बत पे गा नहीं सकता,
मैं तेरे प्यार के क़ाबिल नहीं हूँ, प्यार न कर,
न कर ख़ुदा के लिए मेरा इंतज़ार न कर।

जाफ़री की शायरी की आयु लगभग वही है जो भारत में साहित्य के प्रगतिशील आन्दोलन की। बीस वर्ष का यह ज़माना भारत के अतिरिक्त पूरे संसार की उथल-पुथल का ज़माना रहा है। एक ओर भारत अंग्रेज़ी साम्राज्य की दासता से निकलने के लिए संघर्ष कर रहा था तो दूसरी ओर विरोधी शक्तियाँ अपने ख़ूनी जबड़े खोले नये-नये देश हड़प कर रही थीं। एक ओर दूसरे महायुद्ध के भयानक परिणाम संसार को आर्थिक-संकट की लपेट में ले रहे थे और चारों ओर बेकारी, बेरोज़गारी का तांडव-नृत्य हो रहा था तो

१. रचनाओं में २. आज की कटुतायें ३. सुख-प्रद भविष्य ४. जन्म लेता हुआ ५. लम्बी

दूसरी ओर रूस की समाजवादी व्यवस्था मंज़िलो पर मंज़िलें तै कर रही थी और संसार के श्रमजीवी उस जीवन-व्यवस्था से प्रभावित हो रहे थे। फिर भारत का विभाजन हुआ और लाखों प्राणी धर्म के नाम पर कट मरे और आज फिर सारे संसार पर तीसरे महायुद्ध के भयंकर बादल मँडरा रहे हैं। इस प्रकार की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो में किसी जागरूक कवि या लेखक का मौन रहना या अपना कोई अलग संसार बसाना किसी प्रकार संभव नही था, अतएव सरदार जाफ़री ऐसे मानव-प्रेमी शायर ने हर स्थान पर न केवल अपने मानव-प्रेम की मशाल जलाई बल्कि मानव-शत्रुओं के विरुद्ध अपनी पवित्र घृणा को भी प्रकट किया। 'बग़ावत', 'अहदे-हाज़िर', 'सामराजी लड़ाई', 'इन्क़िलाबे-रूस', 'मल्लाहो की बग़ावत', 'फ़रेब', 'सैलाबे-चीन', 'जवाने बग़ावत' इत्यादि नज़्मो के शीर्षक भर देखने से ही यह बात सिद्ध हो जाती है कि शायर की उँगली धड़कती हुई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो की नब्ज़ पर रही है और इन नज़्मो के अध्ययन मे यह वास्तविकता उभरकर सामने आ जाती है कि उसने केवल परिस्थितियों की नब्ज़ की गति देखने पर ही सन्तोष नही किया, उन धड़कनो के साथ उसके अपने हृदय की धड़कनें भी मिलती रही हैं। वह किसी एक जाति, किसी एक वर्ग या एक श्रेणी का शायर नही, पूरी मानवता का शायर है। उसकी शायरी इतिहास के परिवर्तनशील मूल्यों के साथ-साथ आ रही है और उसे शायर के शुभ उद्देश्य का पूरा-पूरा अनुभव है

> मैं हूँ सदियो का तफ़क्कुर[1], मैं हूँ क़रनों का[2] ख़याल।
> मैं हूँ हम-आग़ोश अज़ल से, मैं अबद से हम-किनार[3]॥
> मेरे नग़मे क़ैदे-माहो-साल से[4] आज़ाद हैं।
> मेरे हाथो मे है तूफ़ानी समझ का सितार।
> नक़्शे-मायूसी में[5] भर देता हूँ उम्मीदों का रंग।
> मैं अता[6] करता हूँ शाख़े-आरज़ू[7] को बर्गो-बार[8]॥
> चुन लिए हैं बाग़े-इन्सानी से अरमानों के फूल।
> जो महकते ही रहेंगे मैं ने गूँधे हैं वो हार॥

---

१. चिंतन २. कई ज़मानो का ३. आदि और अन्त से मिला हुआ ४. महीनो, साल (समय) की क़ैद से ५ निराशा के चित्रो मे ६ प्रदान ७ अभिलाषा की शाखा ८ फलने-फूलने

आज़ी जल्वों को दी है ताबिशे-हुस्नो-दवाम[1]।
मेरी नज़रों से है रौशन आदमी की रहगुज़ार[2]॥

[नज़्म 'शायर' में से]

और इसी अनुभव के वशीभूत वह बड़ी दयानतदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता रहा है। एक प्रगतिशील शायर के इन कर्तव्यों को देखते हुए उन आलोचकों का उत्तर देने की आवश्यकता बाक़ी नहीं रहती जो प्रगतिशील शायरी को ख़ून, आग, तूफ़ान, सैलाब और मज़दूर-किसान आदि शब्दों तक सीमित समझते हैं।

सरदार जाफ़री की कुछ-एक शुरू की नज़्मों को छोड़कर जिनकी कुछ पंक्तियों का ढीलापन कानों को खटकता है, और कुछ ऐसे स्थानों को छोड़कर जहाँ वह शायर कम और उपदेशक अधिक मालूम होता है ('इक़बाल' और 'जोश' से प्रभावित होने के कारण या विषय की आधीनता के कारण, क्योंकि सरदार जाफ़री के मतानुसार शैली और रूप विषय पर आधारित होते हैं)[3] सामूहिक रूप से उसकी शायरी कला के समस्त गुणों को अपने दामन में लिए हुए है। इस पर उसने उर्दू शायरी को जो नये शब्द और भाव दिए हैं और रूपकों को नये अर्थों में प्रस्तुत किया है और निर्बंध तथा अतुकांत शायरी को सँवारा निखारा है, उससे आधुनिक उर्दू शायरी को अपनी विभावना और सार्थकता पर गौरव करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो गया है।

एक बड़ा शायर होने के अतिरिक्त सरदार जाफ़री एक बड़ा समालोचक भी है। 'नया अदब' के सम्पादन-काल में उसने अपनी जिस समालोचनात्मक क्षमता का प्रमाण दिया और अब प्रगतिशील साहित्य का इतिहास लिखते हुए (चार भागों के इस इतिहास का पहला भाग अंजुमन तरक़्क़ी-ए-उर्दू, अलीगढ़ से प्रकाशित हो चुका है) जिस वर्णनात्मक शक्ति और ज्ञान के जितने बड़े भंडार

---

१. सौंदर्य और स्थायित्व की चमक (गर्मी) २. पथ
३. "रूप का सौंदर्य बहुत आवश्यक है लेकिन रूप विषय का मुहताज है। इसलिए कि विषय के बिना रूप की कोई कल्पना नहीं की जा सकती; और चूंकि मनुष्य चित्रों और शब्दों के बिना कुछ सोच नहीं सकता इसलिए विषय अपना रूप साथ लेकर आता है। शायर का तजुर्बा और परिश्रम उस रूप को अपनी क्षमता से और अधिक सुन्दर बना सकता है।"

—सरदार जाफ़री

को लेकर वह हमारे सामने आया है, उससे यह अनुमान लगाने में कठिनाई होती है कि वह शायर बड़ा है या समालोचक। शायर और समालोचक के अतिरिक्त वह बहुत अच्छा भाषणकर्ता भी है। उसने कहानियाँ भी लिखी हैं और नाटक भी। लेकिन इतना कुछ कहने और लिखने पर भी उसका कहना यही है कि

ये तो हैं चन्द ही जलवे जो नज़र आये है।
रंग हैं और मेरे दिल के गुलिस्ताँ मे अभी॥
मेरे आग़ोशे-तख़ैयुल[1] मे हैं लाखों सुबहें।
आफ़ताब[2] और भी हैं मेरे गरेबाँ मे अभी॥

---

१. कल्पना की गोदी में २. सूरज

झींगरों की आवाज़ें,
कह रही हैं अफ़साना,
दूर जेल के बाहर,
बज रही है शहनाई,
रेल अपने पहियों से
लोरियां सुनाती है।
रात खूबसूरत है,
नींद क्यों नहीं आती ?
रोज़ रात को यूंही,
नींद मेरी आंखों से,
बेवफ़ाई करती है,
मुझ को छोड़कर तनहा,
जेल से निकलती है।
बम्बई की बसती में,
मेरे घर का दरवाज़ा,
जा के खटखटाती है।
एक नन्हे बच्चे की,
अंखड़ियों के बचपन में,
मीठे - मीठे ख्वाबों के,
शहद घोल देती है।
नर्म - नर्म गालों को,
गर्म - गर्म आंखों को,
झुक के प्यार करती है।
इक हसीं परी बन कर,
लोरियां सुनाती है,
पालना हिलाती है।

[सेंट्रल-जेल नासिक, १९५०]

दक्कन की शहज़ादी

बम्बई ! ऐ दकन की शहज़ादी !
नीलगूं सुन्दरी अजन्ता की,
अपनी ऊंची चटान से नीचे,
अपने बालों को धोने आई है।
पिंडलियां मछलियां हैं सोने की,
पांव डूबे हुए समन्दर में,
उंगलियां खेलती हैं पानी से,
जलते हीरे की लाखों आंखों से,
पिघले नीलम के नीले होंटों से,
मेरे ख्वाबों में मुस्कराती है।
दिल पे तूफान खेज साहिल पर,
मौजें[1] गाती हैं रक्स करती हैं,
झाग के आंचलों को लहराती,
चांदनी की अंगूठियां पहने
भीगे तारों के फूल बरसाती।
तेरी कौसे-कज़ह[2] की गरदन में,
मौजे-बहरे-अरब की[3] बांहें हैं।
तेरे माथे को प्यार करती हैं,
तिरछी परछाइयां जहाज़ों की।
खूं की गरदिश में है मशी[4] का राज,
नाचती उंगलियों में सूत के तार,
जिस्म पर सीपियों की नर्म चमक,
और नज़रों में मोतियों का गरूर।

---

१ लहरें २ इन्द्रधनुष ३ अरब महासागर की लहरों की ४ मशीन

हविसे-जर ने मुझे आग में फूंका है कभी,
कभी बाज़ार में नीलाम चढ़ाया मुझको।
सी के बोरों में मुझे फेंका है तहखानों में,
चोर-बाजार कभी रास न आया मुझको।
वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हूं उन्हें,
जिनके हाथों की हरारत[१] ने उगाया मुझको।

क्या हुए आज मेरे नाज़ उठाने वाले?
हैं कहां क़ैदे-गुलामी से छुड़ाने वाले?

पत्थर की दीवार

क्या कहूं भयानक है
या हसीं है ये मन्ज़र
ख़्वाब है कि बेदारी
कुछ पता नहीं चलता
फूल भी हैं, साये भी
ख़ाक भी है, पानी भी
आदमी भी, मेहनत भी
गीत भी हैं आंसू भी
फिर भी एक ख़ामोशी
रूहो-दिल की तनहाई
इक तवील सन्नाटा
जैसे सांप लहराये
माहो साल[1] आते हैं
और दिन निकलते हैं
जैसे दिल की बस्ती से
अजनबी गुज़र जाये

चीख़ती हुई घड़ियां
ज़ख़्म-ख़ुर्दा तायर[2] हैं
नर्म-रौ सुबक लम्हे[3]
मुंजमिद[4] सितारे हैं

१ महीने और साल २ घायल पक्षी ३ मन्द गति से चलने वाले हल्के-फुल्के क्षण ४ जमे हुए

हविसे-ज़र ने मुझे आग में फूंका है कभी,
कभी बाज़ार में नीलाम चढ़ाया मुझको।
सी के बोरों में मुझे फेंका है तहख़ानों में,
चोर-बाज़ार कभी रास न आया मुझको।
वो तरसते हैं मुझे और मैं तरसता हूं उन्हें,
जिनके हाथों की हरारत[1] ने उगाया मुझको।

क्या हुए आज मेरे नाज़ उठाने वाले?
हैं कहां क़ंदे-गुलामी से छुड़ाने वाले?

रेंगती हैं तारीखें
रोजो-शब की राहों पर
ढूंढते हैं चश्मो-दिल
नक़्शे-पा[1] नहीं मिलते
ज़िन्दगी के गुलदस्ते
ज़ेबे-ताक़े-नसियां[2] हैं
पत्तियों की पलकों पर
ओस डगमगाती है
इमलियों के पेड़ों पर
धूप पर सुखाती है
आफ़ताब हंसता है
मुस्कराते हैं तारे
चांद के कटोरे से
चांदनी छलकती है
जेल की फ़ज़ाओं में
फिर भी इक अंधेरा है
जैसे रेत में गिरकर
दूध जज्ब हो जाये
रोशनी के गालों पर
तीरगी[3] के नाखुन की
सैंकड़ों खराशें हैं

पत्थरों की दीवारें !

---

१. पद-चिह्न   २. भूली हुई बातों के ताक़चे की शोभा   ३. अंधकार

रस्सियों की गांठों में
बाजुओं की गोलाई
नीम-जान क़दमों में
बेड़ियों की शहनाई
हथकड़ी के हल्क़ों में
हाथ कसमसाते हैं
फांसियों के फंदों में
गरदनें तड़पती हैं

पत्थरों की दीवारें !

जो कभी नहीं रोतीं
जो कभी नहीं हंसतीं
उनके सख्त चेहरों पर
रंग है न ग़ाज़ा है
खुरदरे लबों पर सिर्फ़
बेहिसी की मोहरें हैं

पत्थरों की दीवारें !

पत्थरों के सीने हैं
जिनमें खून के क़तरे
दूध बन नहीं सकते
पत्थरों के दफ़्तर हैं
पत्थरों की मिसलें हैं
[illegible] के जेलर हैं
[illegible] पत्थर के
नम्बरदार

सुर्ख़ हाथ उगते हैं
हाथ हैं कि तलवारें
रात की सियाही में
जैसे शम्मअ़ जलती है
उंगलियां फ़रोज़ां हैं[1]
बारकों के कोनों से
साज़िशें निकलती हैं
ख़ामशी की नब्ज़ों में
घंटियाँ सी बजती हैं

जाने कैसे क़ैदी हैं
किस जहां से आये हैं
नाख़ुनों में कीलें हैं
हड्डियां शिकस्ता[2] हैं
नौजवान जिस्मों पर
पैरहन[3] हैं ज़ख़्मों के
लैनिनी जबीनों पर[4]
ख़ून की लकीरें हैं
अश्क आग के क़तरे
सांस तुन्द आंधी है
बात है कि तूफ़ां है
अबरुओं की[5] जुंबिश में
अज़्म[6] मुस्कराते हैं
और निगह की लग़्ज़िश में
हौसले मचलते हैं

---

१. चमक रही हैं २. जर्जर ३. वस्त्र ४. लेनिन के विचार रखने वाले माथे (मस्तिष्क) [illegible]ों की ६. संकल्प

त्योरियों की शिकनों में
नक़्शे-पा[1] बग़ावत के

जितना जुल्म सहते हैं
और मुस्कराते हैं
जितने दुख उठाते हैं
और गीत गाते हैं
क़हर और चढ़ता है
ज़ालिमों की सिह्हत पर,
जुल्म चीख़ उठता है
उनके लब नहीं हिलते
उनके सर नहीं झुकते
इक सदा निकलती है
"इंक़िलाब ज़िन्दाबाद!"

ख़ाके-पाक[2] के बेटे
खेतियों के रखवाले
हाथ कारख़ानों के
इंक़िलाब के शहपर
कार्ल मार्क्स के शाही[3]
पत्थरों की कोरों पर
आँधियों की राहों में
बिजलियों के तूफ़ाँ में
गोलियों की बारिश में
सर उठाये बैठे हैं

---

१. पद चिह्न २ पवित्र धरती ३ बाज़ पक्षी

इंक़िलाब - सामां है
हिन्द की फ़ज़ा सारी
नज़अ के है आलम में[१]
ये निज़ामे - ज़रदारी[२]
वक़्त के महल में है
जश्ने - नौ[३] की तैयारी
जश्ने - आम जमहूरी[४]
इक़्तिदारे - मज़दूरी[५]
ग़र्क़े-आतिशो - आहन[६]
बेकसी - ओ-मजबूरी
मुफ़्लिसी-ओ - नादारी

तीरगी के बादल से
जुगनुओं की बारिश से
रक़्स में शरारे हैं
हर तरफ़ अंधेरा है
और इस अंधेरे में
हर तरफ़ शरारे हैं
कोई कह नहीं सकता
कौन सा शरारा कब
बेक़रार हो जाये
शोलाबार हो जाये[७]
इंक़िलाब आ जाये।

---

१. दम तोड़ने की स्थिति में २. पूंजीवादी व्यवस्था ३. नया जश्न
४. जनतंत्र ५. मजदूरों का शासन ६. लोहे और आग में डूब गई है
७. भड़क उठे

'मख़्दूम' मुहीउद्दीन

बिखरी हुई रंगी किरनों को आँखों से चुनकर लाता हूँ
फ़ितरत के परेशाँ नग़मों से फिर अपना गीत बनाता हूँ

इंक़िलाब - सामाँ है
हिन्द की फ़ज़ा सारी
नज़्अ़ की है आलम में[१]
ये निज़ामे - ज़रदारी[२]
वक़्त के महल्ल में है
जश्ने - नौ[३] की तैयारी
जश्ने - आम जम्हूरी[४]
इक़्तिदारे - मज़दूरी[५]
ग़र्क़े-आतिशो - आहन[६]
बेकसी - ओ-मजबूरी
मुफ़्लिसी-ओ - नादारी

तीरगी के बादल ने
जुगनुओं की बारिश ने
रक़्स में शरारे हैं
हर तरफ़ अँधेरा है
और इस अँधेरे में
हर तरफ़ शरारे हैं
कोई कह नहीं सकता
कौन सा शरारा कब
बेक़रार हो जाये
शोलाबार हो जाये[७]
इंक़िलाब आ जाये ।

---

१. दम तोड़ने की स्थिति में २. पूंजीवादी व्यवस्था ३. नया जश्न
४. जनतंत्र ५. मजदूरों का शासन ६. लोहे और आग में डूब गई है
७. भड़क उठे

'मख़्दूम' मुहीउद्दीन

बिखरी हुई रंगी किरनों को आँखों से चुनकर लाता हूँ
फ़ितरत के परेशाँ नग़मों से फिर अपना गीत बनाता हूँ

मख्दूम

" 'मख्दूम' इन दिनों अंडर-ग्राउंड (Under-ground) है।"

" 'मख्दूम' इन दिनों जेल में है।"

" 'मख्दूम' पर हिंसा द्वारा क्रांति लाने का दोष लगाया गया है।"

" 'मख्दूम' हैदराबाद स्टेट एसेम्बली का मैम्बर चुन लिया गया है।"

" 'मख्दूम' ने अमुक जल्से में दो घंटे तक भाषण दिया और जनता ने उसे कंधों पर बिठाकर उसका जुलूस निकाला।"

ये और इस प्रकार की अनगिनत खबरों के साथ-साथ कभी-कभी यह खबर भी सुनने मे आ जाती है कि " 'मख्दूम' ने एक नई नज्म लिखी है और वह अमुक-अमुक पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई है।" और लोग उसी शौक़ से उन पत्रिकाओं के पन्ने उलटने लगते हैं कि जिस शौक़ से वे 'मख्दूम' को देखने और उसका भाषण सुनने जल्सागाहों की ओर लपकते हैं।

मेरे इस लेख का विषय यद्यपि 'मख्दूम' के साहित्यिक जीवन और उसकी शायरी तक सीमित है लेकिन मैं शायर 'मख्दूम' और राजनीतिज्ञ 'मख्दूम' के बीच कोई विभाजन-रेखा खींचने में स्वयं को असमर्थ पा रहा हूँ। वास्तव में 'मख्दूम' की शायरी ही उसकी राजनीति है और उसकी राजनीति उसकी शायरी। और इन दोनों का सम्मिश्रण वह स्वयं है।

'मख्दूम' मुहीउद्दीन का जन्म १९१० में हैदराबाद के एक साधारण घराने में हुआ। अपने शिक्षा-काल में ही उसका सम्बन्ध विद्यार्थियों के आन्दोलनों से बहुत गहरा था और हैदराबाद की 'निज़ाम-शाही' के अत्याचारों और वहाँ की

जनता की दुर्दशा देखकर तो वह बेतरह तड़प उठता था, रो देता था। इसके अतिरिक्त पग-पग पर जो उसे देश की पराधीनता का कटु अनुभव होता था उन समस्त अनुभूतियों ने मिल-जुलकर एक सीधे-सादे, सरल-स्वभाव विद्यार्थी के मन-मस्तिष्क में एक ऐसा विष घोल दिया कि उसने न केवल अपने खेलने-खाने के दिन, न केवल अपनी जवानी की खूबसूरत बहारें, बल्कि जनता के कल्याण और देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में अपना सब-कुछ अर्पण कर दिया। अपने और बीवी-बच्चों के गुज़ारे का अच्छा-खासा साधन हैदराबाद सिटी कालेज की प्रोफैसरी छोड़कर वह कम्युनिस्ट पार्टी का Whole-timer सदस्य बन गया। और आज अपनी अनथक सेवा तथा बलिदान द्वारा वह हैदराबाद का एक प्रिय जन-नेता है। लोग उसके पास अपने दुख-दर्द का दुखड़ा लेकर आते हैं और वह स्वयं भी उनका दुख-दर्द बटाने उनकी अंधेरी और सेलन-भरी कोठरियों और घास-फूस की झोंपड़ियों में जाता है। हैदराबाद का कोई राजनीतिक तथा साहित्यिक अधिवेशन उस समय तक फीका प्रतीत होता है जब तक 'मख्दूम' उसमें भाग न ले।

'मख्दूम' से मुलाक़ात से पहले मेरे मस्तिष्क में उसका एक विचित्र चित्र था। तेलिंगाना-संग्राम के समाचार पढ़-पढ़ कर (जिसका वह हीरो था) मेरे मस्तिष्क में उसके नैन-नक्श बहुत भयानक रूप धारण करते गये। मैं उसे एक ऐसे मार्शल लीडर के रूप में देखने लगा जो केवल आदेश देना जानता है और किसी प्रकार की अवज्ञा सहन नहीं कर सकता। अपनी कुछ नज़्मों में भी वह मुझे पाषाण दीखता था। विशेषतः जब कभी मैं उसकी नज़्म 'अंधेरा' की ये पंक्तियाँ पढ़ता

> बाड़ के तारों में उलझे हुए इन्सानों के जिस्म,
> और इन्सानों के जिस्मों पे वो बैठे हुए गिद्ध,
> वो तड़पते हुए सर,
> मय्यतें[1] हाथ कटी, पाँव कटी,

या 'मशरिक़' की ये पंक्तियाँ :

> एक नंगी लाश बे-गोरो-कफ़न[1] ठिठरी हुई,
> मग़रबी चीलों का लुक़्मा[2] ख़ून में लिथड़ी हुई,

१ लाशें १. बिना क़ब्र तथा कफ़न के २. कौर

एक कब्रिस्तान जिसमें नौहाख़्वां[1] कोई नहीं,
एक भटकी रूह है जिसका मकां कोई नहीं,
इस ज़मीने-मौत-परवर्दा[2] को ढाया जाएगा।
इक नई दुनिया, नया आदम बनाया जाएग॥

तो उसके खैंचे हुए इन चित्रों से मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते थे और मैं नज़्म की पंक्तियों से नज़रें हटाकर जेल, फ़ाक़ा, भीख, गोली, ख़ून आदि शब्दों के इस शायर के व्यक्तित्व के सम्बंध में विचित्र बातें सोचने लगता था। लेकिन १९५२ में जब पहली बार कलकत्ता में सांस्कृतिक समारोह के अवसर पर और फिर देहली में एक शान्ति-सम्मेलन में मेरी उससे भेंट हुई और मुझे काफ़ी समीप से उसे देखने का मौक़ा मिला तो मेरी कल्पना के नितांत विपरीत वह मुझे अत्यन्त आकर्षक तथा सरल-स्वभाव व्यक्ति दिखाई दिया। मैंने उसे बच्चों के साथ बच्चा बनते, उन्हीं की तरह तोतली ज़बान में उनसे बातें करते और उनके खिलौनों के लिए अपनी जेबें उलटते देखा। विद्यार्थियों के साथ विद्यार्थियों की समस्याओं पर विद्यार्थियों ही की तरह भावुक ढंग से बातें करते और लतीफ़े सुनाते देखा। लेखकों तथा कवियों की बैठक में अपनी नज़्म पर दाद पाकर इस प्रकार प्रसन्न होते देखा जैसे उसे जीवन मे पहली बार दाद मिल रही हो और वह उन सबको अपने से कहीं बड़ा और आदरणीय लेखक और कवि समझता हो, और मैं समझता हूँ कि 'मख़्दूम' की प्रतिष्ठा में जहाँ उसके राजनीतिक काम तथा कलाकौशलता का हाथ है वहाँ उसकी लोकप्रियता में उसके इन स्वाभाविक गुणों का भी बहुत बड़ा योग है। बच्चे उसे बच्चा समझते हैं, विद्यार्थियों में वह विद्यार्थी नज़र आता है, मज़दूरों के जल्से में उसे एक पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी के रूप में पहचानना काफ़ी कठिन हो जाता है। किसान उसे किसान भैया समझते हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी स्त्रियाँ भी उसे अपना सहजातीय समझ बैठती हैं और निःसंकोच उसे अपने मन का भेद बता देती हैं। इस प्रसंग में मुझे देहली की एक घटना कभी नहीं भूलती।

एक बार जब एक छोटी-सी बैठक मे 'मख़्दूम' अपनी प्रसिद्ध रोमान्टिक नज़्म 'इन्तज़ार' सुना चुका तो एक नौजवान लड़की ने, जो उसकी नज़्म से बहुत प्रभावित मालूम होती थी, उसे अलग लेजाकर कहा कि वह चाहती है कि उसका प्रेमी इस नज़्म को अवश्य सुने, लेकिन उसे यह पता न चले कि इसके पीछे उसकी प्रेमिका का हाथ है।

---

१. शोकालाप करने वाला २. मृत्यु द्वारा पाली हुई धरती

'मख्दूम' के हामी भरने पर लडकी ने बताया कि उसका प्रेमी देहली मे नहीं बल्कि देहली से तीन सौ मील दूर अमृतसर मे रहता है। अतएव तै पाया कि दूसरे दिन प्रातः समय 'मख्दूम' उसके प्रेमी को ट्रक-काल करेगा और टेलीफोन पर उसे वह नज्म सुना देगा। और सचमुच दूसरे दिन अपने सौ काम छोडकर 'मख्दूम' टेलीफोन पर उस लडकी के प्रेमी से कह रहा था .

रात भर दीदा-ए-नमनाक[1] मे लहराते रहे।
सांस की तरह से आप आते रहे, जाते रहे॥

'मख्दूम' की शायरी का प्रारभ उस जमाने मे हुआ जब 'अगारे' (सज्जाद ज़हीर, रशीदजहाँ, अहमद अली आदि प्रगतिशील लेखको की रचनाओ का एक सकलन—१९३४, जिसे अंग्रेज़ी सरकार ने जब्त कर लिया था) के प्रकाशन द्वारा परम्परागत् साहित्य के विरुद्ध एक विद्रोह शुरू हुआ था। नये लेखक उर्दू साहित्य को नये से नया विषय दे रहे थे, नई से नई शैली से परिचित करा रहे थे लेकिन प्रयोगकाल होने के कारण साहित्य के लगभग प्रत्येक विद्रोही के यहाँ अभी कलात्मक निपुणता नही आई थी। 'मख्दूम' की आरभिक शायरी मे भी कई जगह भाषा आदि की त्रुटियाँ मिलती हैं लेकिन यदि उसकी अन्तर्चेतना को देखा जाय तो वह एक स्वाभाविक शायर है और कला के उपनियमों से अलग रहकर वह अपने दिल के टुकडे कागज़ पर रख देता है। उसकी शायरी मे पहाडी झरनों ऐसा वेग भी है और मैदानी नालो ऐसी हस की चाल भी। अपनी शायरी द्वारा वह जनता की सास्कृतिक भूख भी मिटाता है और उन्हें नये जीवन तथा नये समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील होने पर भी उकसाता है। अपने समकालीन शायरो को सम्बोधन करते हुए एक बार उसने कहा था .

> "तुम अपनी कला, कविता का प्रकाश लेकर जनता के अंधेरे दिलो मे उतरते हो। अत्याचारी शासक वर्ग ने उन्हें विद्या, साहित्य, सभ्यता और सस्कृति के सद्गुणो से वचित कर रखा है। वे प्यासो की तरह तुम्हारे गिर्द एकत्र हो जाते हैं। उन्हे तुम्हारे शराब के भबकों की आवश्यकता नही, उनके जीवन मे पहले ही बहुत-सी गन्दगियाँ मौजूद हैं।"

और उसका यह कथन ही उसकी शायरी का तात्विक गुण है। उसके समीप शायर अपनी शायरी और कला का सम्मान तभी कर सकता है जब वह अपने देश की जनता तथा उसकी स्वतत्रता और समृद्धि का सम्मान करे। और जहाँ

---

१. सजल नेत्रों मे

जंगे-आज़ादी

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

हम हिन्द के रहने वालों की — महकूमों की मजबूरों की
आज़ादी के मतवालों की — दहक़ानों की[1] मज़दूरों की

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

सारा संसार हमारा है — पूरब, पच्छम, उत्तर, दक्खन
हम अफ़रंगी हम अमरीकी — हम चीनी जांबाज़े-वतन
हम सुर्ख़ सिपाही ज़ुल्म-शिकन[2] — आहन पैकर फ़ौलाद बदन[3]

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

वो जंग ही क्या वो अमन ही क्या — दुश्मन जिसमें ताराज[4] न हो
वो दुनिया, दुनिया क्या होगी — जिस दुनिया में सौराज न हो
वो आज़ादी आज़ादी क्या — मज़दूर का जिसमें राज न हो

ये जंग है जंगे - आज़ादी
आज़ादी के परचम के तले

---

१. किसानों की २. अत्याचारों का उन्मूलन करने वाले ३. लोहे का शरीर रखने वाले ४. समाप्त

इंतिज़ार

रात भर दीदा-ए-नमनाक में[1] लहराते रहे।
सांस की तरह से आप आते रहे जाते रहे॥
ख़ुश थे हम अपनी तमन्ना का जवाब आयेगा।
अपना अरमान बर-अफ़गंदा-निक़ाब[2] आयेगा॥
नज़रें नीची किए शर्माये हुए आयेगा।
काकुलें[3] चेहरे पे बिखराये हुए आयेगा॥
आगई थी दिले-मुज़तर[4] में शिकेबाई[5] सी।
बज रही थी मेरे ग़म-ख़ाने में शहनाई सी॥
पत्तियां खड़कीं तो समझा कि लो आप आ ही गये।
सजदे मसरूर कि माबूद[6] को हम पा ही गये॥
शब के जागे हुए तारों को भी नींद आने लगी।
आप के आने की इक आस थी अब जाने लगी॥
सुबह ने सेज से उठते हुए ली अंगड़ाई।
ओ सबा[7]! तू भी जो आई तो अकेली आई॥
मेरे महबूब मेरी नींद उड़ाने वाले।
मेरे मसजूद[8] मेरी रूह पे छाने वाले॥
आ भी जा ताकि मेरे सजदों का अरमां निकले।
आ भी जा ताकि तेरे क़दमों पे मेरी जां निकले॥

---

१. सजल नेत्रों में २. निक़ाब उतारे हुए ३. केश ४. बेक़रार दिल ५. सन्तोष-सा ६. भगवान (जिस के लिए प्रार्थना की जाए), यहां प्रेयसी के अर्थों में आया है। ७. सुबह का मृदु पवन ८. महबूब

क़ैद

क़ैद है क़ैद की मीयाद नही
जौर[1] है जौर की फर्य्याद नही, दाद[2] नही
रात है रात की खामोशी है तनहाई है
दूर महबस की[3] फसीलो से बहुत दूर कही
सीना-ए शहर की गहराई से, घटा की सदा[4] आती है
चौंक जाता है दिमाग
झिलमिला जाती है अनफास की लौ
जाग उठती है मेरी शम्मअ शबिस्ताने खयाल[5]
जिन्दगानी की इक-इक बात की याद आती है

शाहराहों में, गली कूचो में इन्सानों की भीड
उनके मसरूफ क़दम
उनके माथे पे तरद्दुद[6] के नकूश[7]
उनकी नजरो मे ग़मे-दोश और अन्देशा-ए-फर्दा की झलक[8]
सैंकडो-लाखो अवाम
सैंकडो-लाखो क़दम
सैंकडो-लाखो धडकते हुए इन्सानो के दिल
जबरे शाही से गमी[9], जौरे-सियासत से निढाल
जाने किस मोड पे वो घन से धमाका बन जाएँ ?

---

१ अत्याचार २ न्याय ३ जेलखाने की ४ आवाज ५ विचारों के शयनगृह का दीपक ६ परिश्रम ७ रेखायें ८ अतीत के दुखों और भविष्य की आशंकाओं की झलक ९ दुखी, पीडित

सालहा-साल की अफ़सुर्दा-ओ-मजबूर जवानी की उमंग
तौक़ो-ज़ंजीर से लिपटी हुई सो जाती है
करवटें लेने में ज़ंजीर की झनकार का शोर
ख़्वाब में ज़ीस्त[1] की शोरिश का[2] पता देता है
मुझ को ग़म है कि मेरा गंजे-गिरांमाया-ए-उम्र[3]
नज़्रे-ज़िन्दान[4] हुआ
नज़्रे-आज़ादी-ए-ज़िन्दाने-वतन[5] क्यों न हुआ ?

---

१. जीवन २. हंगामे का ३. आयु-रूपी बहुमूल्य धन ४. जेलखाने की भेंट ५. देश-रूपी जेलखाने की आज़ादी की भेंट

फुटकर शेर

गिरेबा चाक महफिल से निकल जाऊ तो क्या होगा ?
तेरी आखो से आंसू बन के ढल जाऊं तो क्या होगा ?
जुनू की लगजिशें[1] खुद पर्दा दारे-राजे-उलफत[2] हैं ।
जो कहते हो सभल जाओ, सभल जाऊ तो क्या होगा ?

◇ ◇ ◇

तूने किस दिल को दुखाया है तुझे क्या मालूम ?
किस सनमखाने को ढाया है तुझे क्या मालूम ?
हम ने हँस हँस के तेरी बज्म[3] मे ऐ पैकरे-नाज़ !
कितनी आहों को छुपाया है तुझे क्या मालूम ?

◇ ◇ ◇

कितने लब[4] कितनी जबीनें[5] कितने जलवे कितने नूर,
कितनी सुबहो का उजाला कितने नग़मो का सरूर ।
कितनी नौ-आगाज कलियां[6] , कितने खुशबूदार फूल,
मेरी ठडी सांस पर होते हैं रञ्जूरो - मलूल[7] ।
कितने संगो - दिल[8] हैं जो मेरे नशे में चूर हैं,
कितनी रातें हैं कि मेरे नाम से मशहूर हैं ।

---

१ उन्माद की डगमगाहट २ प्रेम के भेद की पर्दादार ३ महफ़िल
४ होंट ५ माथे ६ नव कलियाँ ७ दुखी, उदास ८ पत्थर-दिल

परिचय

"आदर ! आदर ! आदर ! नदीम क़ासमी आ रहा है।" और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है। यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो 'नदीम' क़ासमी के आते ही महफ़िल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय में लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं।"

अहमद 'नदीम' क़ासमी के सम्बन्ध में उर्दू के एक लेखक 'फ़िक्र' तौन्सवी के इन शब्दों का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद 'नदीम' क़ासमी को जानते हों या जिन्होंने उसे किसी महफ़िल में आते हुए देखा हो। यह बड़ी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद 'नदीम' क़ासमी के बुज़ुर्ग रिश्तेदार और बुज़ुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वयं क़ासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति में उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव में भी ग्रस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं, यहां तक कि कभी-कभी स्वयं क़ासमी को इस पर उलझन होने लगती है।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियों का सम्बन्ध है मेरे विचार में उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योंकि वह एक 'पीरज़ादा' है और स्वयं क़ासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतों को उन मुरीदों के समूह में इस प्रकार ग़ायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आंखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बड़े धार्मिक बुज़ुर्ग के सुपुत्र के जूतों को छूकर एक दैवी तेज छा गया। और चूंकि उसने अपने जीवन में कभी अपने बुज़ुर्गों

को किसी शिकायत का मौका नहीं दिया और अपने सदाचार में कोई त्रुटि उत्पन्न नहीं होने दी, इसलिए उसके बुजुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं, लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यों इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यों उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद बिना उससे मिले या उसकी रचनाओं का अध्ययन किये समझ में नहीं आ सकता।

उससे मिलने और उसकी रचनाओं का अध्ययन करने से जो बात हमें सबसे पहले अपनी ओर खींचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला में विमलता। एक बड़े कलाकार के लिए जहां कई और गुणों की आवश्यकता होती है वहां उसमें विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है। कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नहीं कर सकता जब तक कि अपने विचारों भावनाओं और सिद्धांतों को बिना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करने की उसमें क्षमता और साहस न हो। अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी का क्रमश: अध्ययन करने में हम उसके किसी काल के सिद्धांतों से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नहीं कर सकते। और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को जिला शाहपुर (पश्चिमी पंजाब) के एक छोटे से पहाड़ी गांव अंगा में पैदा हुआ। 'पीरजादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से बदतर थी। पिता के देहान्त के बाद चूंकि "पहनने को मोटा झोटा, खाने को जंगली साग और आग तापने को अपने ही हाथों से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्बन्धियों के हाथों की ओर देखना पड़ा और १९३५ में बी० ए० करने के बाद तो परिस्थितियों ने उसके साथ और भी मजाक किये। अपने उन दिनों के बारे में वह स्वयं लिखता है कि -

"अपने एक सम्बन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर मिटकर १९३५ में बी० ए० किया और अब यह परवाना हाथ में लेकर और कुछ खानदानी उपाधियों का पुलंदा कांधों पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय रीति रटकर मैंने नौकरी की भीख मांगना शुरू की। १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पंजाब का चक्कर लगाया। खानदान के

श्रोरियाथ

"आदर ! आदर ! आदर ! नदीम क़ासमी आ रहा है ।" और आदरवश पूरा वातावरण दम साध लेता है । यह एक विचित्र प्रकार का उल्लास-मिश्रित भय है जो 'नदीम' क़ासमी के आते ही महफ़िल पर छा जाता है और सब लोग उस जादू-भरे भय में लिपटे-लिपटाये झूलते रहते हैं ।"

अहमद 'नदीम' क़ासमी के सम्बन्ध में उर्दू के एक लेखक 'फ़िक्र' तौन्सवी के इन शब्दों का अर्थ केवल वही लोग समझ सकते हैं, जो व्यक्तिगत रूप से अहमद 'नदीम' क़ासमी को जानते हों या जिन्होंने उसे किसी महफ़िल में आते हुए देखा हो । यह बड़ी विचित्र वास्तविकता है कि अहमद 'नदीम' क़ासमी के बुज़ुर्ग रिश्तेदार और बुज़ुर्ग साहित्यकार भी कि जिनके सामने स्वयं क़ासमी को सादर झुक जाना चाहिये उसकी उपस्थिति में उसके प्रति प्रेमभाव के साथ-साथ श्रद्धाभाव में भी ग्रस्त हो जाते हैं, उसकी किसी बात का उत्तर देने की बजाय उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगते हैं, यहां तक कि कभी-कभी स्वयं क़ासमी को इस पर उलझन होने लगती है ।

जहाँ तक उसके सम्बन्धियों का सम्बन्ध है मेरे विचार में उनकी श्रद्धा का कारण कुछ धार्मिक मान्यतायें हैं क्योंकि वह एक 'पीरज़ादा' है और स्वयं क़ासमी के कथनानुसार उसने अपने जूतों को उन मुरीदों के समूह में इस प्रकार ग़ायब होते देखा है कि प्रत्येक व्यक्ति की आंखें उन्हें चूमकर चमक उठीं और हर मुरीद के चेहरे पर बहुत बड़े धार्मिक बुज़ुर्ग के सुपुत्र के जूतों को छूकर एक दैवी तेज छा गया । और चूंकि उसने अपने जीवन में कभी अपने बुज़ुर्गों

को किसी शिकायत का मौक़ा नही दिया और अपने सदाचार मे कोई त्रुटि उत्पन्न नही होने दी, इसलिए उसके बुजुर्ग उससे अत्यन्त स्नेह तथा श्रद्धा से पेश आते हैं, लेकिन आस्तिक और नास्तिक, प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी हर श्रेणी के शायर और लेखक क्यो इतने आदर तथा सम्मान से उसका नाम लेते हैं और क्यो उससे इतने प्रभावित हैं, यह भेद बिना उससे मिले या उसकी रचनाओं का अध्ययन किये समझ मे नही आ सकता।

उससे मिलने और उसकी रचनाओ का अध्ययन करने से जो बात हमे सबसे पहले अपनी ओर खेंचती है, वह है उसके व्यक्तित्व और उसकी कला मे विमलता। एक बडे कलाकार के लिए जहा कई और गुणों की आवश्यकता होती है वहा उसमे विमलता का गुण सब से आवश्यक और अनिवार्य है। कोई कलाकार उस समय तक महान साहित्य की रचना नही कर सकता जब तक कि अपने विचारो भावनाओ और सिद्धातो को बिना किसी प्रकार की लीपापोती के कलात्मक ढग से प्रस्तुत करने की उसमे क्षमता और साहस न हो। अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी का क्रमश अध्ययन करने से हम उसके किसी काल के सिद्धातो से तो असहमत हो सकते हैं लेकिन उसकी कलात्मक विमलता से किसी प्रकार इन्कार नही कर सकते। और यह उसकी कलात्मक विमलता ही है कि जिसके कारण मित्र तथा शत्रु सभी उसका इतना आदर करते हैं।

आधुनिक उर्दू साहित्य का यह आदरणीय शायर जिसका असल नाम अहमद शाह है २० नवम्बर १९१६ को जिला शाहपुर (पश्चिमी पजाब) के एक छोटे से पहाडी गाव अगा में पैदा हुआ। 'पीरजादा' होने पर भी घर की हालत किसी निर्धन-से-निर्धन 'मुरीद' के घर से बदतर थी। पिता के देहान्त के बाद चू कि "पहनने को मोटा-झोटा, खाने को जगली साग और आग तापने को अपने ही हाथो से चुने हुए उपले" रह गये थे इसलिए शिक्षा-दीक्षा के लिए उसे अपने सम्बन्धियो के हाथों की ओर देखना पडा और १९३५ में बी० ए० करने के बाद तो परिस्थितियो ने उसके साथ और भी मज़ाक किये। अपने उन दिनो के बारे मे वह स्वय लिखता है कि :

"अपने एक सम्बन्धी की आर्थिक सहायता और कुछ अपनी हिम्मत से मर-मिटकर १९३५ में बी० ए० किया और अब यह परवाना हाथ में लेकर और कुछ खानदानी उपाधियों का पुलदा कधो पर लादकर और पश्चिमी शिष्टाचार और विनय-रीति रटकर मैंने नौकरी की भीख मागना शुरू की। १९३५ से १९३९ तक लगभग पूरे पजाब का चक्कर लगाया। खानदान के

पुराने अभिभावकों ने मुस्कराकर देखा और सहानुभूति प्रकट करते हुए सैर को निकल गये। एक्स्ट्रा-एसिस्टेंट कमिश्नरी, तहसीलदारी और नायब-तहसीलदारी से लेकर अंजुमने-हिमायते-इस्लाम में क्लर्की तक के लिए नित नये ढंग से दर्ख़्वास्तें लिखीं, रिफ़ार्म-कमिश्नर के दफ्तर में बीस रुपये मासिक पर मुहर्रिरी करता रहा। ज़िला मिंटगुमरी में नौ दिन टैलीफ़ोन आपरेटर रहा। प्रकाशन विभाग (पंजाब) की पत्रिका 'तहज़ीबे-निसवां' के लिए अंग्रेजी कहानियों का अनुवाद करता रहा। एक महाशय को पांच सौ पन्नों की एक पुस्तक चालीस रुपये के बदले लिख दी (जो अब तक उन्हीं के नाम से ख़ूब बिक रही है)। रावलपिंडी में टाइप सीखता रहा। पंचायत विभाग से लेकर आर्मी एकाउंट्स विभाग के दफ़्तरों में मेरा नाम उम्मीदवार के तौर पर दर्ज रहा। साथ-साथ मांगे-तांगे का लिबास पहनकर डिप्टी-कमिश्नरों और फ़िनानशल-कमिश्नरों की ड्योढ़ियों पर सलामी देता फिरा : "मेरे अमुक बुज़ुर्ग ने अंग्रेज जनरल मैक्वेल को मनीपुर सेनाओं का ख़ुफ़िया पता दिया और 'शेरदिल' की उपाधि प्राप्त की"—"मेरे अमुक सम्बन्धी ने तिब्बत के मोर्चे पर विजय पाने में लार्ड कर्ज़न को यह सहायता दी"—"मेरे अमुक रिश्तेदार को महायुद्ध में सिपाही भरती कराने के पुरस्कार-स्वरूप इतने तमग़े और उपाधियां प्रदान की गईं..."

लेकिन ऐसी कड़ी परिस्थितियों में से गुज़रने के बावजूद जबकि उसे तीन-तीन दिन के फ़ाक़े भी करने पड़े, जब एक बार उसे कहीं से कुछ क़लम की मज़दूरी मिल गई तो उसने बजाय जी भर के खाने के एक सिनेमा-हाल की राह ली। तीन बजे वहां से निकलकर एक और सिनेमा-हाल में घुस गया। शाम को वहां से निबटा तो एक और क्रीड़ास्थल में चला गया। रात के नौ बजे वहां से निकला तो जेब में एक और मनोरंजन का साधन मौजूद था अतएव एक और सिनेमा-हाउस में ऊंचे दर्जे का टिकट लेकर बैठ गया। जब वहां से एक बजे निकला तो जेब में केवल एक दवन्नी थी। "भूखा-प्यासा, बिना किसी मतलब के, नहर की ओर निकल गया। मन्दगति से बहते हुए पानी में सितारों का मटियाला प्रतिबिम्ब देखता रहा कि पौ फटी और मुझे महसूस हुआ कि कल सुबह से मैं अपने आप में नहीं हूं—यह और इसी प्रकार की आवारगियां मेरे ऐसे नौजवानों के जीवन की प्रतिदिन की घटनायें हैं, लेकिन यहां मैं केवल अपना ज़िक्र कर रहा हूं—एक शायर का ज़िक्र—जिसकी शायरी पर यदि ऐसी घटनाओं का प्रभाव न पड़े तो वह अपनी कला के प्रति

सच्चा नहीं। यह केवल नक्काल और अनुगामी है।"

अहमद 'नदीम' कासमी की शायरी मे हमे किसी प्रकार की नक्काली या अनुकरण का आभास नही मिलता। अपने जीवन की विभिन्न घटनाओ के अनुभवों द्वारा (जिनका सिलसिला आज भी जारी है) उसने अपना एक अलग मार्ग निकाला और जिस समय जो महसूस किया बडी दयानतदारी से प्रस्तुत भी कर दिया। यह यदि उदास और मलिन हुआ तो हमे उदास टीलों, वीरान मरुस्थलो और उजाड खण्डहरो मे ले गया और झुकी हुई खजूरो, चकराते हुए बगूलो और बिना फूल-पत्ती के बबूलो द्वारा हमारे मन-मस्तिष्क मे निराशा, विवशता और करुणा उत्पन्न की। प्रकृति और नारी के सौन्दर्य से प्रभावित हुआ तो हमे गाँव की सलोनी सध्याओ, मुस्कराते हुए चश्मो और गाते हुये पनघटों पर ले गया। उसने हमे धानी चूडियों की खनक सुनवाई। गोरी बाँहो की लचक और थरथराते झूमरो की झनन और ढोलक पर नाचती हुई कोमल उगलियों की तडप दिखाई। क्रोधित हुआ तो उसकी ललकार से धरती आकाश काँपने लगे और जब सोचने के मूड मे आया तो अपनी सोच के अनुसार सब गुत्थियाँ सुलझाकर रख दी।

कासमी की 'सोच' का उल्लेख करते हुये मुझे अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कोलरिज का यह कथन याद आ रहा है कि कोई व्यक्ति एक बडा कवि नहीं हो सकता जब तक कि वह एक विशाल-हृदय दार्शनिक न हो। इस कथनानुसार अहमद 'नदीम' कासमी की १९४५ (बल्कि १९४७) तक की शायरी मे हमे किसी महान् दर्शन का पता नही चलता बल्कि 'इक़बाल' की तरह यहाँ-वहाँ अनेक सिद्धान्त मिलते हैं जिनमें इस्लाम को पूरे विश्व की जीवन-व्यवस्था के रूप म प्रस्तुत करने की भावना सब से उग्र है। लेकिन 'इकबाल' के विपरीत उसके सिद्धान्तों मे धीरे-धीरे एकसारता और दो-टूक-पन आता गया और सामाजिक परिवर्तनो के बोध द्वारा उसने उस जीवन-दर्शन को पा लिया, जिसके बिना आज का शायर किसी प्रकार बडा शायर नहीं बन सकता। आज यह जनसाधारण के उस आन्दोलन से सम्बन्धित है, मनुष्य के सुन्दर भविष्य के लिए प्रतिक्रियावादी शक्तियो से लोहा ले रहा है।

क्लर्की, मुहर्रिरी, एडीटरी, बेकारी और महकमा आबकारी ने यद्यपि उसे हर समय अपने सोच-विचारों मे, चक्कर रहने और रचनात्मक कार्य करने का बहुत कम अवकाश दिया लेकिन उसकी मेहनत और सख्तजानी पर आश्चर्य होता

है जब हम देखते हैं कि उसकी लिखी हुई नज़्मों, ग़ज़लों, रुबाइयों, क़तओं, कहानियों, ड्रामों और लेखों की गिनती करना न केवल कठिन बल्कि असम्भव है। मेरे सम्मुख इस समय उसके केवल तीन कविता-संग्रह 'रिमझिम', 'जलालो-जमाल' और 'शोला-ए-गुल' हैं और मैं इन पुस्तकों की पृष्ठ-संख्या देखकर ही परेशान हो रहा हूँ कि अपनी इस संक्षिप्त-सी आयु में क़ासमी ने ये सब कैसे लिख लिया ?

कतए

देख री, तू पनघट पर जाकर मेरा जिक्र न छेड़ा कर,
क्या मैं जानूं, कैसे हैं वो, किस कूचे में रहते हैं,
मैंने कब तारीफें की हैं, उन के बांके नैनों की,
"वो अच्छे खुशपोश जवां हैं" मेरे भय्या कहते हैं।

० ० ०

शहनाइयों के शोर में डोली जूंही उठी,
इक नौजवां कहीं से पुकारा मुझे बचाओ,
डोली से सर निकाल के बोली हसीं दुल्हन,
"क्या देखते हो, जाओ भी लिल्लाह[1]! जाओ जाओ।"

० ० ०

ढोल बजते हैं, दनादन की सदा[2] आती है,
फसल कटती है, लचकती है, बिछी जाती है,
नौजवां गाते हैं जब सांवले महबूब का गीत,
एक दोशीजा[3] ठिठक जाती है, शरमाती है।

० ० ०

---

१ खुदा के लिए २ आवाज ३ कुमारी

फ़न*

एक रक़्क़ासा[1] थी—किस-किस से इशारे करती ?
आंखें पथराईं, अदाओं में तवाज़न[2] न रहा,
डगमगाई, तो सब अतराफ़[3] से आवाज़ आई—
"फ़न के इस ओज[4] पे इक तेरे सिवा कौन गया ?"
फ़र्शे-मरमर पे गिरी, गिर के उठी, उठ के झुकी,
खुश्क होंटों पे ज़ुबां फेर के पानी मांगा,
ओक उठाई तो तमाशाई संभल कर बोले,
"रक़्स का ये भी इक अंदाज़ है—अल्ला ! अल्ला !"
हाथ फैले रहे, सिल-सी गई होंटों से ज़ुबां,
एक रक़्क़ास किसी सिम्त[5] से नागाह[6] बढ़ा,
पर्दा सरका, तो मग्न[7] फ़न के पुजारी गरजे,
"रक़्स क्यों ख़त्म हुआ ? वक़्त अभी बाक़ी था !"

---

*कला

१. नर्तकी २. संतुलन ३. ओर ४. शिखर ५. ओर ६. एकाएक
७. एकदम

वक्त

सरवर आबुर्दा[1] सनोबर की घनी शाखो मे
चाद बिल्लौर[2] की टूटी हुई चूडी की तरह अटका है
दामने-कोह की[3] इक बस्ती मे
टिमटिमाते हैं मजारो पे चिराग
आस्मा सुरमई फरगल में सितारे टाँके
सिमटा जाता है—झुका जाता है
वक्त बेदार[4] नजर आता है।

सरवर-आबुर्दा सनोबर की घनी शाखो में
सुबह की नुकरई[5] तनवीर[6] रची जाती है
दामने-कोह में बिखरे हुए खेत
लहलहाते हैं तो धरती के तनफ्फुस[7] की सदा आती है
आस्मा कितनी बुलदी पे है और कितना अजीम[8]
नये सूरज की शुआओ का मुसफ्फा[9] आगन
वक्त बेदार नजर आता है।

सरवर-आबुर्दा सनोबर की घनी शाखो में
आफताब[10] एक अलाओ की तरह रोशन है
दामने-कोह मे चलते हुए हल
सीना-ए-दहर[11] पे इन्सान की जबरूत[12] की तारीख रक्म[13] करते हैं
आस्मा तेज शुआओ से है इस दर्जा गुदाज[14]

---

१ ऊचा २ काच ३ पहाड के दामन की ४ जाग्रत ५ रुपहली ६ प्रकाश ७ श्वास ८ महान ९ साफ १० सूरज ११ ससार की छाती १२ महानता, बुजुर्गी १३ अंकित १४ नर्म

जैसे छूने से पिघल जायेगा
वक़्त तय्यार नज़र आता है

सरवर-आवुर्दा सनोवर की घनी शाखों में
ज़िन्दगी कितने हक़ायक़ को[1] जनम देती है
दामने-कोह में फैले हुए मैदानों पर
ज़ौक़े-तख़लीक़[2] ने ऐजाज़[3] दिखाये हैं लहू उगला है
आस्मां गर्दिशे-अय्याम[4] के रेले से हिरासां[5] तो नहीं
ख़ैर-मक़दम[6] के भी अंदाज़ हुआ करते हैं
वक़्त की राह पे मोड़ आते हैं, मंज़िल तो नहीं आ सकती।

---

१. वास्तविकताओं को २. रचना की रुचि ३. चमत्कार ४. समय (दिनों) का चक्र ५. भयभीत ६. स्वागत

मौज़

फन बडी चीज़ है तखलीक[1] बडी नेमत है
हुस्नकारी कोई इलजाम नही है ऐ दोस्त

है मेरे मद्दे-नजर[2] आज भी तखलीके-जमाल[3]
गेसू-ए-शब में[4] उलझते हुए तारो के ख़याल
वो जवानो के गुलाबो से महकते हुए जिस्म
फैलती बाँहो मे मदहोश लहकते हुए जिस्म
कुजे-गुलशन की खमोशी में उमगो के हुजूम
प्यार की प्यास मे खुलते हुए होंटो की पुकार
आखो-आखो मे लगन का मुतरन्निम[5] इज़हार
फन की तामीर हुई है इन्ही उनवानो से[6]
यही मकबूल थे माज़ी के गज़लख्वानो मे
इन्ही कलियो से खिलाये गए गुलज़ार अब तक
इन्ही झोको से रिवायात मे[7] बाकी है हयात
मुनअकस[8] है इन्ही आईनो मे इन्सा का सबात[9]
मैं अगर इन से अलग बात करूँ तो दरअसल
ये फकत गर्दिशे-अय्याम नही है ऐ दोस्त

---

१. रचना २. सामने ३ सौन्दर्य की सृष्टि ४. रात के केशों मे ५. सगीतमय ६ शीर्षको से ७ परम्पराओ मे ८. प्रतिबिम्बित ९ दृढ़ता (अस्तित्व)

हुस्न बैठा है सरे-राह भिखारी बनकर
मेरा अन्दाज़े-नज़र ख़ाम नहीं है ऐ दोस्त
चंद उड़ते हुए लम्हों की हसीं नक़्क़ाशी
मेरे फ़न का तो ये अंजाम नहीं है ऐ दोस्त
पहले मैं माहियते-हुस्न[1] तो पा लूं, वरना
हुस्नकारी कोई इल्ज़ाम नहीं है ऐ दोस्त
जिनकी तख़लीक़ से है हुस्न की क़दरों में[2] दवाम[3]
उनके हाथों की ख़राशें तो मिटा लूं पहले

जिनकी मेहनत से इबारत है जमाले-आलम[4]
उनको आईना दिखाना भी तो फ़नकारी है
उनकी आंखों में जो शोला-सा लरज़ उठता है
उसका अहसास दिलाना भी तो फ़नकारी है
हुक्मरानों ने उक़ाबों का[5] भरा है बहरूप
भोली चिड़ियों को जगाना भी तो फ़नकारी है
खेत आबाद हैं, देहात हैं उजड़े-उजड़े
इस तफ़ावुत[6] को मिटाना भी तो फ़नकारी है
धान की फ़स्ल की तस्वीर है मेराजे-कमाल[7]
धान की फ़स्ल उठाना भी तो फ़नकारी है
कारख़ानों से उमड़ता हुआ, फ़ौलाद का शोर
तेरी तहज़ीब का इक गीत नहीं तो क्या है
चन्द सदियों के ग़ुलामों का मुकम्मिल एक्का
नौ-ए-इन्सां[8] की ये इक जीत नहीं तो क्या है

---

१. सौन्दर्य की वास्तविकता २. मूल्यों में ३. स्थायित्व ४. विश्व की सुन्दरता बनी है ५. बाज़ पक्षियों का ६. फ़र्क़, अन्तर ७. कला का शिखर ८. मानव

फ़ुटकर शेर

तारों का गो शुमार में आना मुहाल है।
लेकिन किसी को नींद न आये तो क्या करे ?

◇ ◇ ◇

ˣउम्र भर रोने से रोने का सलीक़ा खो दिया।
हर नफ़स[1] के साथ ये दरिया-दिली अच्छी नहीं॥

◇ ◇ ◇

मेरी बर्बादियों के राज़ न पूछ।
राज़ का इनकिशाफ़[2] भी है राज़॥

◇ ◇

रात को तारों से, दिन को ज़र्रा-हाए-ख़ाक से[3]।
कौन है, जिस से नहीं सुनते तेरा अफ़साना हम ?

◇ ◇ ◇

जकड़ी हुई है इनमें मेरी सारी कायनात।
गो देखने में नर्म हैं तेरी कलाइयां॥

◇ ◇ ◇

तसव्वुर[4] आपका, अहसास अपना, हमरही[5] दिल की।
मुहब्बत की इस तक़सीम[6] ने मंज़िल से बहकाया॥

◇ ◇ ◇

ˣतू मेरी ज़िन्दगी से भी कतरा के चल दिया।
तुझ को तो मेरी मौत पे भी अख़्तियार था॥

◇ ◇ ◇

---

१. प्राणी २. प्रकटीकरण ३. मिट्टी के ज़र्रों से ४. कल्पना ५. साथ
६. विभाजन
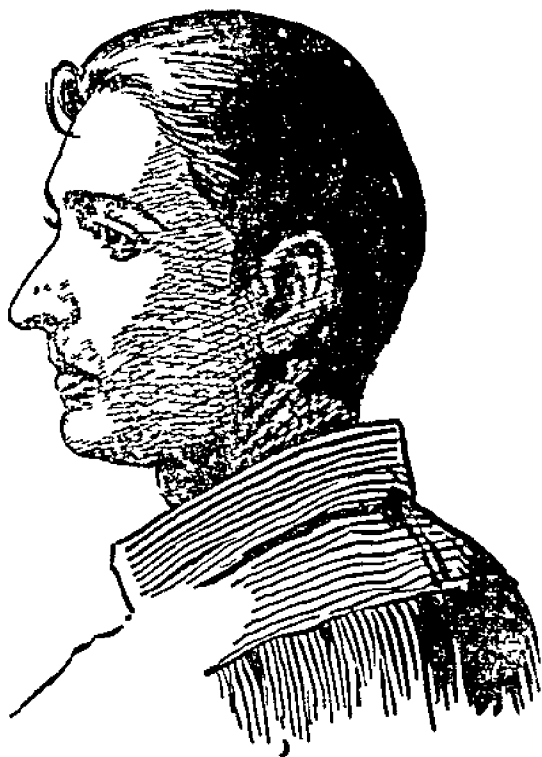
जांनिसार 'अख़्तर'

और दो-चार मराहिल से गुज़रना है तो क्या
अपनी मंज़िल की तरफ़ हम को बढ़े देर हुई

पारिचय

बीयर का एक बड़ा-सा घूंट लेते हुए उसने कहा "अश्क ! मैं बम्बई से तंग आ चुका हूँ। अजीब मनहूस शहर है। दोस्त की दोस्ती पर तो क्या आदमी दुश्मन की दुश्मनी पर भी भरोसा नहीं कर सकता। तुम नहीं जानते मैं वहाँ कैसी जिन्दगी गुजार रहा हूँ।"

अपनी पत्नी 'सफ़िया' (जो 'मजाज़' की बहिन और स्वयं एक लेखिका थी) का अचानक देहांत हो जाने और बच्चों की देख-रेख का कोई उचित प्रबंध न हो पाने से उन दिनों वह बहुत परेशान था, अतः बीयर का पहला घूंट लेते ही जब बम्बई की चर्चा छिड़ गई, जहाँ उसे बड़ी कटु परिस्थितियों में से गुज़रना पड़ा था, तो वह और भी उदास हो गया।

उसकी उस उदासी को किंचित कम करने के लिए मैंने कहा "लेकिन खुद तुमने ही तो अच्छी-खासी प्रोफेसरी छोड़कर बम्बई का टिकट कटाया था। और फिर बम्बई में अपने बहुत से साथी हैं। इस्मत चुग़ताई हैं, कृष्णचन्द्र हैं, राजेन्द्रसिंह बेदी, सरदार जाफ़री, मजरूह सुलतानपुरी, साहिर........"

"हाँ, हाँ !" मेरी इस लम्बी सूची से बौखलाकर उसने कहा "यह सब तो ठीक है, लेकिन इनसे क्या होता है ! हरेक अपने-अपने चक्कर में फँसा हुआ है—और फ़िल्म-लाइन का चक्कर तो तुम जानते हो आदमी को घनचक्कर बना देता है।" उसने बीयर का एक और लम्बा घूंट लिया और कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा 'यार ! बीयर-वीयर से बात नहीं बनती, ह्विस्की चलनी चाहिये।"

ह्विस्की चलने लगी और दो-तीन पैगों के बाद कु सरूर मे आकर उसने बम्बई के फिल्म-जगत की जो कहानियाँ जिस दर्द भरे ढंग मे सुनाई वे नशा तो नशा होश तक उडा देने वाली थी।

"और तो और" उसने फीकी-सी हँसी हँसते हुए कहा "फिल्म 'अनारकली' का सबसे मशहूर गाना 'ऐ जाने-वफा आ' मेरा लिखा हुआ है, लेकिन दूसरी फिल्म-कम्पनियो के प्रोड्यूसर उसे किसी दूसरे शायर का कहकर मुझसे कहते हैं कि अख्तर साहब! वैसा गाना लिखिये।"

'तुम उन्हें बताते क्यो नही?"

'क्या फायदा? शाहन्शाह की फिर फिक से क्या फायदा?'

इस 'शाहन्शाह की फिक फिक" से मुझे उसके जीवन की एक घटना याद आ गई।

एक बार वह दिन के दो बजे बम्बई के एक भरे बाजार म से गुजर रहा था। कोई अपरिचित व्यक्ति उसका रास्ता रोककर खडा हो गया कि 'जो कुछ तुम्हारी जेब म है मेरे हवाले कर दो, नही तो मैं तुम्ह पुलिस के हवाल कर दूँगा।'

'वह क्यो?" उसने सहम कर कहा।

"क्योकि तुमने एक औरत को छेडा है।'

'औरत! उसने आश्चर्य से चारो ओर देखा, क्योकि औरत तो औरत वहाँ औरत की गध तक न थी, और फिर वह यह भी जानता था कि औरत तो क्या वह बकरी तक को छेडने का साहस नही कर सकता। लेकिन उसने तुरत जेब से पचास रुपये निकाल कर उस भद्र पुरुष को भेंट कर दिये और जब आगे से यह उत्तर मिला कि यह तो कम हैं, तो उसने घर से सौ रुपये और लाकर दिये और अपने कथनानुसार 'शाहन्शाह की फिक-फिक' से बच गया।

◇ ◇ ◇

जानिसार 'अख्तर' की पितृ भूमि खैराबाद, जिला सीतापुर, (अवध) है, लेकिन जन्म उसका (१९१४ में) ग्वालियर मे हुआ। प्रारम से ही घर का वातावरण साहित्यिक था। पिता 'मुजतर' खैराबादी उर्दू के प्रसिद्ध शायरों मे से थे, अतएव 'अख्तर' को बचपन ही से शेर कहने की धुन सवार हो गई और दस ग्यारह वर्ष की आयु म उसने नियमपूर्वक शेर लिखने शुरू कर दिये। १९३९ ई० मे अलीगढ़ विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी म एम० ए० करने के बाद १९४० में वह विक्टोरिया कालेज ग्वालियर म उर्दू का लैक्चरर नियुक्त हुआ, लेकिन

परिपक्व है। इसका कारण एक तो उसका काव्य-सम्बन्धी उत्तराधिकार है और दूसरे उसने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया है। अत कला के रचना-कौशल को पूरा महत्त्व देते हुए भी वह विषय की ऊष्णता को कम नहीं होने देता। रूप-विधान के नए प्रयोगो मे भी उसने अपने रचना-कौशल का अच्छा परिचय दिया है।

अपने अधिकतर समकालीन शायरो की तरह 'अख्तर' की प्रारंभिक शायरी पर भी 'जोश' मलीहाबादी का काफी प्रभाव था, लेकिन धीरे धीरे उसने स्वय को इससे मुक्त कर लिया और रग तथा रस के सुन्दर समन्वय से नये-नये रेखा-चित्र बनाये। 'जोश' के बाद शायरो की नई पीढ़ी मे उसका नाम 'मजाज़', 'फ़ैज़', 'जज़्बी', 'मख्दूम' आदि के साथ लिया जाता है। और सभवत उसकी रचनाओं का भडार अपने इन समकालीन शायरों मे सबसे अधिक है।

◇ ◇ ◇

यह है जानिसार अख्तर ! जिसे यदि कुछ प्रदान कीजिये तो कोई धन्यवाद नहीं और यदि कुछ छीन लीजिये तो कोई निन्दा नही। उसके बाल उलझे हुए हैं, लेकिन वह खुश है। घिसते घिसते चप्पल की एडी गायब हो चुकी है, लेकिन उसे चिन्ता नही। सुबह वह इसलिए उजले कपड़े पहनता है कि शाम को मैले चिकट हो जायें, और नियमबद्ध जीवन व्यतीत करने की उसकी 'आकाक्षा' तो इस स्तर पर पहुँच चुकी है कि अब वह किसी नियम का पालन नही कर सकता और आठो पहर अस्त-व्यस्त रहता है।

मराहिल[1]

एक लम्हे को कभी वक़्त की गर्दिश[2] न थमी ।
रस्मे - दस्तूर[3] महो - साल[4] बदलते ही रहे ॥
एक लौ, एक लगन, एक लहक दिल में लिये ।
हम मुहब्बत की कठिन राह पे चलते ही रहे ॥

कितने पुरपेच[5] मराहिल को किया तै हमने ।
वादियां कितनी मिलीं बीच में दुशवार-गुज़ार[6] ॥
सैंकड़ों संगे - राह[7] , राह में हायल थे मगर ।
एक लम्हे को भी टूटी न जुनूं[8] की रफ़्तार ॥

आज छाये हैं वो घनघोर अंधेरे लेकिन ।
जिन में ढूंडे से भी मिलते नहीं राहों के सुराग़[9] ॥
वो अंधेरे कि निकलते हुए डरती हो निगाह ।
सामने हो तो नज़र आये न मंज़िल का चिराग़ ॥

मुझ से बदज़न[10] न हो ऐ दोस्त कि मेरी नज़रें ।
क्या हुआ पेचो-ख़मे-राह में[11] उलझी हैं अगर ॥
रोदे-कुहसार[12] की हर लम्हा भटकती मौजें[13] ।
अपनी मंज़िल की तरफ़ ही तो रहीं गर्मे-सफ़र[14] ॥

---

१. मंज़िलें २. चक्कर ३. नियमानुसार ४. महीने और वर्ष ५. पेचदार ६. कठिन ७. मार्ग के पत्थर (बाधायें) ८. उन्माद ९. चिन्ह १०. खफ़ा ११. मार्ग के पेचों में १२. पहाड़ी नदी १३. लहरें १४. गतिशील

मुझ से बरगश्ता[1] न हो तू कि मेरा दिल है वही।
क्या हुआ फ़िक्र[2] के छाये हैं जो गहरे बादल॥
चश्मे - ज़ाहिर[3] से जो छुप जाये तो छुप जाने दे।
अब्र[4] में बुझ नहीं जाती है कमर[5] की मशअ़ल॥

मेरे चेहरे पे जो है वक्त का शबगूँ परतौ[6]।
है उसी अक्स[7] से धुंदला तेरा आईना-ए-दिल[8]॥
आ कि ये लम्हा - ए - हाज़िर[9] नहीं है अपना।
है परे आज की ज़ुल्मात से[10] अपनी मंज़िल॥

इन धुआँ - धार अंधेरों से गुज़रने के लिए।
ख़ूने - दिल से कोई मशअ़ल तो जलानी होगी॥
इश्क़ के रफ्ता-ओ-सरगश्ता जुनूँ[11] को ऐ दोस्त।
ज़िन्दगानी की अदा आज सिखानी होगी॥

---

१ रुष्ट २. चिंता ३ प्रकट दृष्टि ४. बादल ५. चांद ६ अंधकारमय प्रतिबिम्ब ७ प्रतिबिम्ब ८ दिल का आईना अर्थात् निर्मल हृदय ९ वर्तमान क्षण १० अंधेरों से ११ आवेश-पूर्ण और गतिशील उन्माद

अमन-नामा

(एक लम्बी नज़्म का कुछ भाग)

पिला साक़िया बादा-ए-खानासाज़[१]
कि हिन्दुस्तां पर रहे हमको नाज़

मुहब्बत है खाके-वतन[२] से हमें
मुहब्बत है अपने चमन से हमें

हमें अपनी सुबहों से शामों से प्यार
हमें अपने शहरों के नामों से प्यार

हमें प्यार अपने हर एक गांव से
घने बरगदों की घनी छांव से

हमें प्यार अपनी इमारात से[३]
हमें प्यार अपनी रिवायात से[४]

उठाये जो कोई नज़र क्या मजाल
तेरे रिंद[५] लें बढ़के आँखें निकाल

सलामत रहें अपने दश्तो-दमन[६]
रहे गुनगुनाता हमारा गगन

निगाहें हिमालय की ऊंची रहें
सदा चांद तारों को छूती रहें

रहे पाक[७] गंगोत्री की फबन
मचलती रहे ज़ुल्फ़े-गंगो-जमन[८]

रहे जगमगाता ये संगम का रूप
चमकती खुनक[९] चांदनी, नर्म धूप

---

१. घर की खींची हुई शराब (तेज़) २. देश की मिट्टी ३. भवनों से ४. परम्पराओं से ५. पियक्कड़ ६. जंगल और टीले ७. पवित्र ८. गंगा-जमुना के केश ९. शीतल

झलकती रहे ये अशोका की लाट
ये गोकुल की गलियां, ये काशी के घाट
लुटाती रहें अपने नैनों का मद
ये सुबहे-बनारस, ये शामे-अवध
नहाता रहे नर्म किरनों में ताज
रहे ता-कयामत मुहब्बत की लाज
अजनता के बुत रक्स[1] करते रहें
हसीं ग़ार[2] तारों से भरते रहें
रहें मुस्कराती हसीं वादियां
रहें शाद[3] जंगल की शहज़ादियां
हरी खेतियां लहलहाती रहें
जवां लड़कियां गीत गाती रहें
लहकता रहे सब्ज़ मैदां में धान
ज़मीनों पे बिछते रहें आसमान
फ़ज़ा[4] में घटाएं गरजती रहें
जवां छागलें तट पे बजती रहें
उड़ाती रहे आंचलों को हवा
मल्हारों की बूंदों में गूंजे सदा
महकते रहें सब्ज़ आमों के बौर
बढ़ाती रहे पींग झूले की डोर
पपीहे की पी-पी तो, कोयल की कूक
उठाती रहे नर्म सीनों में हूक
दहकती रहे पाक होली की आग
रहें खेलती नारियां पी से फाग
सदा गायें राधा कन्हैया के गुण
मचलती रहे बन में मुरली की धुन

---

१. नृत्य २ सुन्दर गुफायें ३ प्रसन्न ४. आकाश

सलामत ये मथुरा की नगरी रहे
छलकती ये रंगों की गगरी रहे
रहे ये दिवाली की जगमग बहार
मंडेरों पे जलते दियों की क़तार
फ़ज़ा रोशनी में नहाती रहे
हमारी ज़मीं जगमगाती रहे
रहे ये बसन्तों के मेले की धूम
रहें शाद ये गीत गाते हुजूम
हसीनों के लहकें बसन्ती लिबास
रहे नर्म चेहरों पे हल्की मिठास
हसीं राखियां झलझलाती रहें
झमाझम सितारे लुटाती रहें
रहें अपने भाई पे बहनों को नाज़
ये मासूम नर्मी, ये मीठा गुदाज़[1]
घरों का तक़द्दुस[2] रहे बरक़रार
ये बेटों के माथे पे माओं का प्यार
रहे शादो-आबाद सहनों की धूम
रहें आंगनों में चहकते नजूम[3]
सलामत रहे दुल्हनों की फबन
सलामत रहें दिल में खिलते चमन
सलामत रहे अंखड़ियों की हया[4]
सलामत रहे घूंघटों की अदा
सलामत दोपट्टों की रंगीं बहार
सलामत जवां आंचलों का वक़ार[5]
सलामत रहे पाक अफ़शां[6] का नूर
सलामत रहे बींदियों का ग़ुरूर

१. नर्मी २. पवित्रता ३. सितारे (बच्चे) ४. लज्जा ५. शा (गौरव) ६. माथे का पवित्र सिंदूर ७. प्रकाश

सलामत रहे काजलों की लकीर
सलामत रहें नर्म नज़रों के तीर
सलामत रहे चूड़ियों की खनक
सलामत रहे कंगनों की चमक
सलामत हसीनों के सोलह सिंगार
ये जूड़े पे लिपटे चवेली के हार
सलामत रहे मृग-नैनों के बान
सलामत रहे मरने वालों की शान
सलामत वफ़ाओं के अरमां रहें
सलामत मुहब्बत के पैमां[1] रहें
सलामत रहें हीर-रांझे के गीत
रहे हार में भी मुहब्बत की जीत
लजाना रहे, मुस्कराना रहे
मनाना रहे और रूठ जाना रहे
मुहब्बत के चश्मे उबलते रहें
जवां-साल[2] नगमों में ढलते रहें
रहे 'जोश'[3] की शबनमी शायरी
मै-ओ-गुल की मौज़ूं हसीं साहरी[4]
दिलों पर रहे वज्द-आगीं सुकूत[5]
रहे गुनगुनाता हुआ 'मेघदूत'
रहे धूम 'टैगोरो - इकबाल' की
रहे शान पंजाबो - बंगाल की
रहे नाम अपने अदब[6] का बुलंद[7]
दिलों में समाया रहे 'प्रेमचन्द'

---

१. प्रण २. नवीनतम ३. 'जोश' मलीहाबादी ४. शराब और फूलों की सुन्दर जादूगरी ५. नशीली चुप्पी ६. साहित्य ७. ऊंचा

सदा ज़िन्दगानी ग़ज़लख़्वां[1] रहे
ज़माने में 'ग़ालिब' का दीवां[2] रहे
मचलती रहे मस्त बीना की लै
बरसती रहे सात रंगों की मै
दहकता रहे अपने दीपक का राग
कलेजों में लगती रहे नर्म आग
रहे गूंजती घुंघरुओं की खनक
दफ़ों की[3] सदा[4] ढोलकों की गमक
ये घूमर, ये कत्थक के तोड़े रहें
जवां नाच दिल को झंझोड़े रहें
रहे साक़िया बादाख़्वारों की[5] ख़ैर
रहे साक़िया तेरे प्यारों की ख़ैर
उभरता रहे ज़िन्दगानी का जोश
रहे तेरे रिंदों को दुनिया का होश
सलामत तेरा जामो-मीना[6] रहे
बड़े लुत्फ़ के साथ पीना रहे
उठा जाम, हां दौरे-साक़ी रहे
जहां में सदा अम्न बाक़ी रहे।

---

१. गीत गाने वाली २. कविता-संग्रह ३. डफ़लियों की
४. आवाज़ ५. मद्यपों की ६. सुराही, प्याला (संसार)

२५ दिसम्बर

ये तेरे प्यार की खुशबू से महकती हुई रात
अपने सीने में छुपाये तेरे दिल की धड़कन
आज फिर तेरी अदा से मेरे पास आई है

अपनी आंखों मे तेरी जुल्फ का डाले काजल
अपनी पलकों पे सजाये हुए अरमानो के ख्वाब
अपने आंचल पे तमन्ना के सितारे टांके

गुनगुनाती हुई यादो की लवें जाग उठी
कितने गुजरे हुए लम्हो के चमकते जुगनू
दिल के हाले[1] में लिए नाच रहे हैं कब से

कितने लम्हे जो तेरी जुल्फ के साये के तले
गर्क होकर तेरी आखो के हसी सागर मे[2]
ग़मे - दौरा से[3] बहुत दूर गुजारे मैंने

कितने लम्हे कि तेरी प्यार भरी नजरो में
किस सलीके[4] से सजाई मेरे दिल की महफिल
किस क़रीने[5] से सिखाया मुझे जीने का शऊर

कितने लम्हे कि हसी नर्म सुबक[6] आचल से
तूने बढकर मेरे माथे का पसीना पोछा
चादनी बन गई राहो की कड़ी धूप मुझे

१ प्रकाशमान कुंडल २ प्यालों मे ३ सांसारिक दुखों से ४ सुन्दर ढग ५ तरीका (बोध) ६ हल्के

कितने लम्हे कि ग़मे-ज़ीस्त के[1] तूफ़ानों में
ज़िन्दगानी की जलाये हुए बाग़ी मशअ़ल
तू मेरा अ़ज़्मे-जवां[2] बन के मेरे साथ रही

कितने लम्हे कि ग़मे-दिल से उभर कर हमने
इक नई सुबहे-मुहब्बत[3] की लगन अपनाई
सारी दुनिया के लिए, सारे ज़माने के लिए

इन्हीं लम्हों के गुलावेज़[4] शरारों का तुझे
गूंथ कर आज कोई हार पहना दूं आजा
चूम कर मांग तेरी तुझ को सजा दूं आजा।

[अख़तर ने यह नज़्म पत्नी के देहांत पर लिखी थी]

---

१. जीवन-संघर्ष (दुखों) के २. दृढ़ संकल्प ३. प्रेम के प्रभात ४. फूलों-ऐसे

क़तए

ये किस का ढलक गया है आंचल
तारों की निगाह झुक गई है,
ये किस की मचल गई हैं ज़ुल्फें
जाती हुई रात रुक गई है।

◇ ◇ ◇

हुस्न का ख़म, जिस्म का सदल
आरिज़ों के[1] गुलाब, ज़ुल्फ़ का ऊद[2],
आज औक़ात सोचता हूं मैं
एक ख़ुशबू है सिर्फ़ तेरा वुजूद[3]।

◇ ◇ ◇

अब्र[4] में छुप गया है आधा चांद
चांदनी छन रही है शाख़ों से
जैसे खिड़की का एक पट खोले
झांकता हो कोई सलाख़ों से।

◇ ◇ ◇

यूं उसके हसीन आरिज़ों पर
पलकों के लचक रहे हैं साये
छिटकी हुई चांदनी में 'अख़्तर',
जैसे कोई आड़ में बुलाए।

◇ ◇ ◇

जीवन की ये छाई हुई अंधियारी रात,
क्या जानिये किस मोड़ पे छूटा तेरा साथ,
फिरता हूं डगर डगर अकेला लेकिन,
शाने पे[5] मेरे आज तलक है तेरा हाथ।

---

१ कपोलों के २ एक सुगंधित काली लकड़ी ३ अस्तित्व ४. बादल
५ कंधे पर

'साहिर' लुध्यानवी

दुनिया ने तजुर्बातो-हवादिस की शक्ल में
जो कुछ मुझे दिया है वो लौटा रहा हूं मैं

परिचय

क़द साढ़े पाँच फ़ुट, इकहरा बदन, लम्बी-लम्बी लचकीली टाँगें, बड़े-बड़े सीधे बाल और चेचकी चेहरे पर उभरी हुई यह लम्बी नाक!

यह शायद १९४३-४४ की बात है कि उपरोक्त हुलिये का एक बीस-वर्षीय युवक, जिसका नाम अब्दुलहई था और जो अपने आपको उर्दू का शायर कहता था लेकिन शायर कम और किसी कालेज का विद्यार्थी अधिक मालूम होता था, सुबह दस-ग्यारह बजे से रात के दो-ढाई बजे तक लाहौर की सड़कें नापता नज़र आता था। अपनी जान-पहचान के लोगों से लेकर, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, राह चलते लोगों तक को चाय और सिग्रेट पिलाना उसकी आदत थी और इस बीच में अपनी समस्त नज़्में-ग़ज़लें, जो उसे ज़बानी याद थीं, लम्बी-चौड़ी भूमिकाओं के साथ सुनाते चले जाना शायद उसका पेशा था। लेकिन एक प्रकाशक से दूसरे प्रकाशक के यहाँ और एक मित्र से दूसरे मित्र के यहाँ सैंकड़ों चक्कर लगाने और चायपानी में सैंकड़ों रुपये लुटाने पर भी जब किसी भले-मानस ने उसका कविता-संग्रह प्रकाशित करने की हामी न भरी तो अपनी इस उत्कट अभिलाषा को मन में दबाये वह वापस लुध्याना चला गया और लोग-बाग बहुत शीघ्र उसे भूल गये।

लुध्याने का यह विद्यार्थी आज का 'साहिर' लुध्यानवी है और उसके जिस कविता-संग्रह 'तलख़ियाँ'* को किसी प्रकाशक ने एक नज़र देखने तक का कष्ट न किया था, अब तक उसी कविता-संग्रह के नौ-दस संस्करण प्रकाशित हो

* प्रगति प्रकाशन (दिल्ली) से देवनागरी लिपि में भी छप चुका है।

चुके हैं और वह उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर है।

'साहिर' लुध्यानवी को उर्दू पढ़े लिखे 'युवक वर्ग' का इष्ट शायर कहते हुए जो मैंने शब्द 'युवक' का प्रयोग किया है तो इससे मेरा अभिप्राय एक तो यह है कि इस युवक वर्ग म अधिक संख्या मध्यवर्ग और ऊपर के मध्यवर्ग के कालेज के विद्यार्थियो की है और दूसरे यह कि उसकी शायरी का केन्द्रीय बिन्दु 'प्रेम' है। और चूंकि इस सम्बध मे उसे आपबीती को जगबीती बनाने का बहुत अच्छा गुर आता है इसलिए हमारे युवक वर्ग को 'साहिर' की लगभग वे सब नज्मे जबानी याद हैं जिनम एक असफल प्रेमी की दुखी आत्मा बेतरह छटपटाती है और टूटे हुए दिल की धडकन बडे कातर स्वर म गुनगुना उठती है

जब भी राहो म नजर आये हरीरी मलबूस[1]।
सर्द आहो म तुझे याद किया है मैंने॥

या

तू किसी और के दामन की कली है लेकिन,
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं।
तू कहीं भी हो तेरे फूल-से आरिज को[2] कसम,
तेरी पलकें मेरी आंखो पे झुकी रहती हैं।

और उसकी नज्म 'ताजमहल तो हर युवक-युवती के लिए किताबे इश्क का सा दर्जा रखती है।

साहिर को मैंने बहुत निकट से देखा है। उससे मुलाकात से पहले भी मैंने 'तलखियां' की समस्त-नज्मे ग़ज़लें पढी थीं और कुछ अवसरो पर उसे अपने शेर सुनाते हुए भी सुना था लेकिन उसके व्यक्तित्व के आधार पर उसकी शायरी को परखने का अवसर मुझे उस समय मिला जब १६४८ ई० म 'शाहराह' और 'प्रीतलडी' (दिल्ली से प्रकाशित होने वाली दो मासिक पत्रिकायें) के सम्पादन के सिलसिले मे हम दोनो एक साथ काम करने लगे और एक ही घर मे रहने लगे।

'साहिर' अभी अभी सोकर उठा है (सुबह दस ग्यारह बजे से पहले वह कभी नही उठता) और नियमानुसार घुटनो मे सिर दिये चुपचाप किसी भी ओर निहारे चला जा रहा है (इस समय वह किसी प्रकार की गड़बड़ पसन्द नहीं करता, यहाँ तक कि उसकी अम्मी जिसे वह बेहद चाहता है और अपने जागीर-

---

१ रेशमी लिबास २ कपोलो की

दार पति से विवाह-विच्छेद के बाद से जिसके जीवन का वह एकमात्र सहारा है, वह भी इस समय उसके कमरे में आने का साहस नहीं कर सकती) कि एकाएक जैसे उस पर एक दौरा-सा पड़ता है और वह चिल्लाता है : "चाय !"

और उस समय की इस 'ललकार' के बाद दिन-भर बल्कि रात गये तक वह निरन्तर बोले चला जाता है। आधे घण्टे से अधिक किसी जगह टिक कर नहीं बैठता। मित्र-मुलाकातियों में घिरे रहने से उसे एक प्रकार का मानसिक सन्तोष प्राप्त होता है और उसके मित्र-मुलाकाती भी उसकी संगति में किसी तरह की थकान या उकताहट महसूस नहीं करते। वह उन्हें सिग्रेट पर सिग्रेट पेश करता है। चाय के प्यालों के प्याले उनके कण्ठ के नीचे उतारता है, उन्हें खाना खिलाता है और अपनी नज्मों, गजलों के अतिरिक्त दर्जनों दूसरे शायरों के हजारों शेर, जो उसे जबानी याद हैं, बड़ी सुन्दर भूमिकाओं के साथ सुनाता चला जाता है। उसे अपनी नज्में-गजलें और अन्य शायरों के हजारों शेर ही नहीं, अपने जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना भी याद है। उसे अपने मित्रों के किसी भी जमाने में लिखे हुए पूरे के पूरे पत्र याद हैं। आजतक उसकी शायरी के पक्ष या विपक्ष में जितने लेख लिखे गये हैं, उनकी हर पंक्ति याद है यहाँ तक कि मेडन थियेटर की 'इन्द्रसभा' और 'शाह बहराम' नामक फ़िल्मों के पूरे के पूरे डायलॉग जबानी याद हैं।

और रात के नौ, दस, गयारह या बारह बजे, जब उसके मित्र-मुलाकाती दूसरे दिन मिलने का वायदा करके उसका साथ छोड़ जाते हैं और यद्यपि कम से कम एक मित्र उस समय भी उसके साथ अवश्य होता है, उसे विचित्र प्रकार के एकाकीपन का अनुभव होने लगता है। उस समय न जाने कहाँ से उसमें 'बोहीमियनिज्म' के कीटाणु घुस आते हैं जो उसे संसार का प्रत्येक व्यक्ति अपने सामने तुच्छ नजर आने लगता है। दिन भर का हँस-मुख और सरल-स्वभाव 'साहिर' इस समय एकदम बदल जाता है। दिन भर की बातें दोहरा-दोहरा कर वह अपने मित्रों की हठबुद्धि पर, जिसकी दिन भर वह प्रशंसा कर चुका होता है, व्यंग के तीर छोड़ता है और "क्या पिद्दी क्या पिद्दी का शोरबा" कहकर उनका मजाक उड़ाता है और यों स्वयं ही एक प्रश्न-चिह्न बन जाता है।

यह प्रश्न-चिन्ह चलते-चलते साथियों से कभी बहुत आगे बढ जाता है और कभी बहुत पीछे रह जाता है। एक जरा-सी बात पर उकता जाना, शर्मा जाना या घबरा जाना उसका स्वभाव है और जहां तक कोई फ़ैसला करने का सम्बंध

है, जीवन की बड़ी-बड़ी समस्याएँ तो एक ओर, किसी मुशायरे में शेर सुनाने से पूर्व वह यह फ़ैसला भी नहीं कर पाता कि उस समय उसे कौनसी नज़्म या ग़ज़ल सुनानी चाहिये। यहां तक कि किस पतलून पर वह कौनसी कमीज़ पहने—इसके लिए भी उसे अपनी मम्मी या पास बैठे मित्रों की सहायता लेनी पड़ती है।

उर्दू के एक शायर 'कैफ़ी' आज़मी ने 'नये अदब के मेमार' सीरीज़ की पुस्तिका में 'साहिर' की इस स्थिति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। लिखते हैं

'जिन लोगों ने साहिर को क़रीब से नहीं देखा शायद उनको यह मालूम नहीं कि माहौल (वातावरण) से मायूसी और तरक्क़ीपज़ीर कुव्वतों (प्रगतिशील शक्तियों) से दूरी ने 'साहिर' के मिज़ाज में बेइन्तिहा शक पैदा कर दिया है। प्रोड्यूसर तनख्वाह बढ़ा दे तो सोचने लगते हैं कोई खास बात तो नहीं? कोई लड़की सलाम कर ले तो फ़िक्र पैदा हो जाती है कि मेरी नाकामियों में कोई और इज़ाफ़ा तो नहीं होने वाला है! और कोई लड़की वाकई मुहब्बत करने लगे तो दिल धड़कने लगता है कि:

तेरी सांसों की थकन, तेरी निगाहों का सुकूत[1],
दरहक़ीक़त कोई रंगीन शरारत ही न हो।
मैं जिसे प्यार का अन्दाज़ समझ बैठा हूँ,
वो तबस्सुम वो तकल्लुम[2] तेरी आदत ही न हो।"

और मैं समझता हूँ आत्मनिर्णय की इसी कमी ने, जो उसके व्यक्तित्व का बहुत बड़ा अंग है और इसलिए उसकी शायरी का भी अंग है, उसे मध्य वर्ग के युवक-युवतियों का इष्ट शायर बना दिया है। हमारे मध्य वर्ग के युवक-युवतियां जिस ढंग से जीवन की समस्याओं, असफलताओं और रिक्तताओं को लेते हैं उसी भावावेश के साथ 'साहिर' इन अनुभूतियों को अपनी शायरी में समोकर प्रस्तुत करता है। और चूंकि उसके पास समाज की नैतिकता और व्यवस्था को परखने और उसके खोटेपन को प्रमाणित करने की कसौटी 'प्रेम' है इसलिए कम या अधिक किसी हृदय पर भी उसका वार खाली नहीं जाता।

लेकिन इससे मेरा आशय बिल्कुल यह नहीं है कि 'साहिर' का प्रेम केवल सौंदर्य तथा आसक्ति और मिलन तथा विद्रोह तक सीमित है। यदि ऐसा होता तो वह केवल औरत का शायर होकर रह जाता और उसकी शायरी ज़िन्दगी और इंसानियत से दूर रहती। लेकिन सौभाग्यवश ऐसा नहीं हुआ। 'साहिर' का

---

१. चुप्पी २. बात करने का ढंग

प्रेम नारी से शुरु जरूर होता है, लेकिन यह प्रेम बढ़ते-बढ़ते अन्त में उस स्थान पर जा पहुँचता है जहां व्यक्तिगत प्रेम सामूहिक प्रेम में परिवर्तित हो जाता है और शायर केवल अपनी प्रेमिका ही का नहीं, मनुष्य-मात्र का आशिक़ बन जाता है और :

तुमको ख़बर नहीं मगर इस सादा-लौह[1] को ।
बर्बाद कर दिया तेरे दो दिन के प्यार ने ॥

कहते-कहते पहले अपनी प्रेमिका से दबे स्वर में यह कहता है :

मैं और तुझ से तर्के-मुहब्बत की[2] आरज़ू ?
दीवाना कर दिया है ग़मे-रोज़गार ने[3] ॥

और फिर बड़े स्पष्ट शब्दों में कह उठता है कि :

तुम्हारे गम के सिवा और भी तो गम हैं मुझे,
निजात[4] जिनसे मैं एक लहज़ा[5] पा नहीं सकता,
ये ऊंचे-ऊंचे मकानों की ड्योढ़ियों के तले,
हर एक गाम[6] पे भूखे भिखारियों की सदा,
ये कारखानों में लोहे का शोरो-गुल जिसमें,
है दफ़न लाखों ग़रीबों की रूह का नग़मा,
गली-गली में ये बिकते हुए जवां चेहरे,
हसीन आंखों में अफ़सुर्दगी[7] सी छाई हुई,
ये शोला-बार फ़ज़ाएँ[8] ये मेरे देस के लोग,
ख़रीदी जाती हैं उठती जवानियां जिनकी ।

ये ग़म बहुत है मेरी ज़िन्दगी मिटाने को,
उदास रहके मेरे दिल को और रंज न दो ॥

◇ ◇ ◇

"तुम्हारे गम के सिवा और भी तो ग़म है मुझे"—और यही पर बस नहीं, 'साहिर' की शायरी में एक ऐसा मोड़ भी आता है जब उसमें एक संघर्ष-शीलता उत्पन्न होती है । इस संघर्ष-शीलता की दबी-दबी चिंगारियां यद्यपि उसकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी मिलती है और जीवन की निराशाओं के साथ-साथ

---

१. सरल स्वभाव वाला २. प्रेम करना छोड़ देने की ३. सांसारिक चिन्ताओं ने ४. मुक्ति ५. क्षण ६. क़दम ७. उदासी ८. आग बरसाने वाला वातावरण

आशाओ और मौत के कदमो की आहट के साथ-साथ[1] ज़िन्दगी की अगडाई की झलक भी विद्यमान है लेकिन दो-टूक ढग से वह केवल उस समय हमारे सामने आता है जब वह कहता है कि

आज से ऐ मजदूर किसानो ! मेरे राग तुम्हारे हैं ।
फाकाकश इन्सानो ! मेरे जोग विहाग तुम्हारे हैं ॥
जब तक तुम भूखे नगे हो ये शोले खामोश न होंगे ।
जब तक बे-आराम हो तुम ये नगमे राहतकोश[1] न होंगे ॥
तुम से कुव्वत[2] लेकर अब मैं तुम को राह दिखाऊँगा ।
तुम परचम लहराना साथी मैं बरबत पर गाऊँगा ॥
अब से मेरे फन[3] का मकसद[4] जजीरें पिघलाना है ।
आज से मैं शबनम के बदले अगारे बरसाऊँगा ॥

लेकिन उसी 'तरक्की-पजीर कुव्वतो' (शायद इस से कैफी आजमी का अभिप्राय 'मजदूर किसान' से है) की दूरी ने उसको इस सङ्कल्प के बावजूद उसे मजदूरो किसानो के लिये वैसी कोई रचना नही रचने दी जैसी रचनायें उसने मध्यवर्ग के लोगो के लिए रची हैं । मेरे विचार मे साहिर से इस प्रकार की कोई माग करना उसकी सीमाओ को देखते हुए उस पर ज्यादती करना होगा । फिर यह भी तो जरूरी नही है कि केवल मजदूर और किसान के बारे मे लिख कर ही कोई कवि या लेखक अपनी प्रगतिशीलता का प्रमाण दे सकता हो । यदि कोई कवि अथवा लेखक किसी कारण से अपनी सीमाओ से बाहर नहीं निकल सकता लेकिन वह सचेत तथा सूक्ष्मग्राही है तो अपनी सीमाओ मे रहते हुए भी वह प्रगतिशील साहित्य का निर्माण कर सकता है । बल्कि इस के विपरीत यदि वह अपनी सीमाओ मे रहते हुए अपनी सीमाओ से बाहर के किसी विषय पर कलम उठायेगा तो उसकी रचना मे वह वास्तविकता और अर्थ-गाम्भीर्य उत्पन्न नही हो सकेगा जो अनुभव तथा अध्ययन पर आधारित होता है और अनिवार्य रूप से श्रेष्ठ साहित्य का मूल ।

साहिर का जन्म लुध्याने के एक जागीरदार घराने मे ८ मार्च १९२२ को हुआ । उसकी माता के अतिरिक्त उसके पिता की कई पत्नियाँ और थीं लेकिन एकमात्र सतान होने के कारण उसका पालन-पोषण बडे लाड प्यार मे हुआ । उस वातावरण के कारण उसमे अपनी हर उचित अनुचित बात मनवाने, अपनी हठ पर अडे रहने और बहुत ठाठदार जीवन व्यतीत करने की अभिरुचियाँ

---

१ सुखप्रद २ शक्ति ३ कला ४ उद्देश्य

उत्पन्न हुईं जिनके कुछ अंश आज भी उसके व्यक्तित्व में मौजूद हैं। लेकिन अभी वह बच्चा ही था कि पति की विलासताओं के कारण 'साहिर' की माता ने उससे विवाह-विच्छेद कर लिया और चूंकि 'साहिर' ने अदालत में पिता पर माता को प्रधानता दी थी, इसलिए उस घटना के बाद अपने पिता से और उसकी जागीर से उसका कोई सम्बन्ध न रहा। इस पर जीवन की तावड़तोड़ कठिनाइयों और निराशाओं ने उसे समय से बहुत पहले प्रौढ बना दिया। उसने प्रेम किया और असफल रहा। कालेज के ज़माने में विद्यार्थियों के आन्दोलनों में भाग लिया तो कालेज से निकाल दिया गया और फिर बहुत शीघ्र उसे अपना और अपनी माता का पेट पालने के लिए कमर कसनी पड़ी। अतएव प्रौढ़ होते ही उसकी उस घृणा का मुंह स्वयं ही उस पूरे वर्ग की ओर मुड़ गया जिसका एक प्रतिनिधि उसका पिता था और जिसका वर्णन उसने अपनी एक नज़्म 'जागीर' में इन शब्दों में किया है:

> मैं उन अजदाद[1] का बेटा हूँ जिन्होंने पैहम[2]।
> अजनबी क़ौम के साये की हिमायत की है॥
> ग़दर की साअ़ते-नापाक[3] से लेकर अब तक।
> हर कड़े वक़्त में सरकार की ख़िदमत की है॥

कालेज से निकाले जाने के बाद वह लाहौर चला गया जहाँ उसने 'शाहकार' और 'अदबे-लतीफ़' का संपादन किया लेकिन इससे सिगरेट-पानी का खर्च तक निकलता न देख वह बम्बई फ़िल्म जगत में चला गया। उसका जीवन कुछ-कुछ ढर्रे पर आ चला था कि भारत-विभाजन ने एक बार फिर उसे अपने अड्डे से उखाड़ फेंका। माता लुध्याने से शरणार्थी बनकर लाहौर चली गईं थीं, इसलिए 'साहिर' भी जैसे-तैसे खून की नदियां फलांगता लाहौर चला गया। पंजाब के खून-खराबे ने उसके दिल पर जो कुठाराघात किया उसे हम उसकी नज़्म 'आज' में आज भी हरे घाव के रूप में देख सकते हैं। उसे लाहौर का वातावरण बड़ा विचित्र लगा जिसमें चारों ओर केवल एक ही धर्म के लोग नज़र आते थे। फिर 'सवेरा' में, जिसका वह संपादक बन गया था, उसने कुछ ऐसे लेख लिखे कि पाकिस्तान सरकार ने उसके विरुद्ध वारंट गिरफ़्तारी जारी कर दिये और यों लाहौर को छोड़कर पहले उसने दिल्ली में शरण ली और फिर अपने पुराने अड्डे फ़िल्म जगत बम्बई में चला गया और आश्चर्य है कि बराबर आठ साल से वहीं है।

---

१. पितागण २. निरन्तर ३. अपवित्र क्षण

ताजमहल

ताज, तेरे लिए इक मज़हरे-उलफ़त[1] ही सही
तुझ को इस वादी-ए-रंगी[2] से अक़ीदत[3] ही सही

मेरी महबूब ! कहीं और मिला कर मुझ से !

बज़्मे-शाही[4] में ग़रीबों का गुज़र क्या माने ?
सब्त[5] जिस राह पे हो सतवते शाही[6] के निशां
उस पे उलफ़त भरी रूहों का सफ़र क्या माने ?

मेरी महबूब पसे - पर्दा - ए - तशहीरे - वफ़ा[7]
तूने सतवत के निशानों को तो देखा होता
मुर्दा शाहों के मक़ाबिर से[8] बहलने वाली
अपने तारीक[9] मकानों को तो देखा होता

अनगिनत लोगों ने दुनिया में मुहब्बत की है
कौन कहता है कि सादिक़[10] न थे जज़्बे उनके
लेकिन उनके लिए तशहीर का सामान[11] नहीं
क्योंकि वो लोग भी अपनी ही तरह मुफ़लिस थे

ये इमारातो - मक़ाबिर, ये फ़सीलें, ये हिसार[12]
मुतलक़-उल-हुक्म[13] शहनशाहों की अज़मत[14] के सतूं[15]

---

१ प्रेम का प्रतिरूप २ रंगीन वादी ३ श्रद्धा ४ शाही महफ़िल ५ अंकित ६ शाहाना शान-शौकत ७ प्रेम के प्रदर्शन (विज्ञापन) के पीछे ८ मक़बरों से ९ अंधेरे १० सच्चे ११ विज्ञापन की सामग्री १२ दुर्ग १३ पूर्ण सत्ताधारी १४ महानता १५ सतून

मता-ए-ग़ैर[1]

मेरे ख्वाबो के झरोको को सजाने वाली।
तेरे ख्वाबो मे कही मेरा गुजर है कि नही ?
पूछ कर अपनी निगाहो से बतादे मुझको।
मेरी रातो के मुकद्दर मे[2] सहर[3] है कि नही ?

चार दिन की ये रफाक़त[4] जो रफाकत भी नही।
उम्र भर के लिए आज़ार[5] हुई जाती है॥
जिन्दगी यूँ तो हमेशा से परेशान सी थी।
अब तो हर सास गिराबार[6] हुई जाती है॥

मेरी उजडी हुई नीदो के शबिस्ताना मे[7]।
तू किसी ख्वाब के पैकर की तरह[8] आई है॥
कभी अपनी सी, कभी गैर नज़र आती है।
कभी इखलास की[9] सूरत, कभी हरजाई है॥

प्यार पर बस तो नही है मेरा, लेकिन फिर भी।
तू बता दे कि तुझे प्यार करू या न करू ?
तूने खुद अपने तबस्सुम से जगाया है जिन्हे।
उन तमन्नाओ का इज़हार करू या न करू ?

तू किसी और के दामन की कली है, लेकिन।
मेरी रातें तेरी खुशबू से बसी रहती हैं॥

---

१ दूसरे की दौलत २ भाग्य में ३ प्रभात ४ साथ ५ मुसीबत
६ बोझल ७ शयनगृहों मे ८ प्रतिरूप की तरह ९ सच्चे प्रेम की

तू कहीं भी हो तेरे फूल से आरिज़ को[1] क़सम।
तेरी पलकें मेरी आँखों पे झुकी रहती हैं॥

तेरे हाथों की हरारत[2], तेरे सांसों की महक।
तैरती रहती है अहसास की पहनाई[3] में॥
ढूंडती रहती है तखईल[4] की बाँहें तुझको।
सर्द रातों की सुलगती हुई तनहाई में॥

तेरा अलताफ़ो-करम[5] एक हक़ीक़त[6] है मगर।
ये हक़ीक़त भी हक़ीक़त में[7] फ़साना ही न हो॥
तेरी मानूस[8] निगाहों का ये मोहतात पयाम।
दिल के खूं करने का इक और बहाना ही न हो।

कौन जाने मेरे इमरोज़[9] का फ़र्दा[10] क्या है?
क़ुरबतें[11] बढ़ के पशेमान भी हो जाती हैं॥
दिल के दामन से लिपटती हुई रंगीं नज़रें।
देखते-देखते अनजान भी हो जाती हैं॥

मेरी दरमांदा[12] जवानी की तमन्नाओं के।
मुज़महिल[13] ख्वाब की ताबीर[14] बतादे मुझको॥
तेरे दामन में गुलिस्तां भी हैं वीराने भी।
मेरा हासिल[15] मेरी तक़दीर बता दे मुझको॥

---

१. कपोलों की २. गर्मी ३. फैलाव ४. कल्पना ५. कृपायें ६. वास्तविकता ७. वास्तव में ८. परिचित ९. आज (वर्तमान) १०. कल (भविष्य) ११. निकट सम्बन्ध (प्रेम) १२. बेबस १३. शिथिल १४. स्वप्न-फल १५. मुझे क्या मिलेगा

तेरी आवाज़

रात सुनसान थी, बोझल थी फ़ज़ा की साँसें।
रूह पर छाये थे बेनाम गमों के साये॥
दिल को ये ज़िद थी कि तू आये तसल्ली देने।
मेरी कोशिश थी कि कम्बख़्त को नींद आ जाये॥

देर तक आँखों में चुभती रही तारों की चमक।
देर तक ज़हन सुलगता रहा तनहाई में॥
अपने ठुकराये हुए दोस्त की पुरसिश[1] के लिए॥
तू न आई मगर इस रात की पहनाई[2] में।

यूँ अचानक तेरी आवाज़ कहीं से आई।
जैसे परबत का जिगर चीर के झरना फूटे॥
या ज़मीनों की मुहब्बत में तड़प कर नागाह[3]।
आसमानों से कोई शोख़ सितारा टूटे॥

शहद सा घुल गया तल्ख़ाबा-ए-तनहाई में[4]।
रंग-सा फैल गया दिल के सियाख़ाने में[5]॥
देर तक यूँ तेरी मस्ताना सदायें[6] गूँजी।
जिस तरह फूल चटकने लगें वीराने में॥

---

१ कुशल पूछना २ फैलाव ३ अचानक ४ एकांत के कड़वेपन में अंधेरेपन में ६ आवाज़ें

तू बहुत दूर किसी अंजुमने-नाज़[1] में थी ।
फिर भी महसूस किया मैंने कि तू आई है ॥
और नग़मों में छुपाकर मेरे खोये हुए ख़्वाब ।
मेरी रूठी हुई नींदों को मना लाई है ॥

रात की सतह[2] पे उभरे तेरे चेहरे के नुक़ूश[3] ।
वही चुप-चाप-सी आंखें, वही सादा-सी नज़र ॥
वही ढलका हुआ आंचल, वही रफ़्तार का ख़म[4] ।
वही रह-रह के लचकता हुआ नाज़ुक पैकर[5] ॥

तू मेरे पास न थी, फिर भी सहर[6] होने तक ।
तेरा हर सांस, मेरे जिस्म को छूकर गुज़रा ॥
क़तरा-क़तरा तेरे दीदार की शबनम टपकी ।
लम्ह-लम्हा तेरी ख़ुशबू से मुअत्तर[7] गुज़रा ॥

अब यही है तुझे मंजूर तो ऐ जाने-बहार ।
मैं तेरी राह न देखूंगा सियाह रातों में ॥
ढूंढ लेंगी मेरी तरसी हुई नज़रें तुझ को ।
नग़मा-ओ-शेर की उमड़ी हुई बरसातों में ॥

X अब तेरा प्यार सतायेगा तो मेरी हस्ती ।
तेरी मस्ती भरी आवाज़ में ढल जायेगी ॥
और ये रूह जो तेरे लिए बेचैन-सी है ।
गीत बनकर तेरे होंटों पे मचल जायेगी ।

तेरे नग़मात[8] , तेरे हुस्न की ठंडक लेकर ।
मेरे तपते हुए माहौल में आ जाएँगे ॥
चन्द घड़ियों के लिए हो, कि हमेशा के लिए ।
मेरी जागी हुई रातों को सुला जाएँगे ॥

---

१. महफ़िल २. स्तर ३. नैन-नक्श ४. चाल की लचक ५. बदन
६. सुबह ७. सुगंधित ८. नग़मे

चकले

ये कूचे ये नीलाम - घर दिलकशी के,
ये लुटते हुए कारवां जिन्दगी के,
कहां हैं कहां हैं मुहाफिज खुदी के,
सनाख्वाने - तक्दीसे - मशरिक कहां हैं[1] ?
ये पुरपेच गलियां, ये बेख्वाब बाजार,
ये गुमनाम राही, ये सिक्कों की झंकार,
ये अस्मत के सौदे, ये सौदों पे तकरार,
सनाख्वाने - तक्दीसे - मशरिक कहां - हैं ?
तअफ्फुन से[2] पुर नीम-रोशन ये गलियां,
ये मसली हुई अध - खिली जर्द कलियां,
ये बिकती हुई खोखली रंग - रलियां,
सनाख्वाने - तक्दीसे - मशरिक कहां हैं ?
वो उजले दरीचों में पायल की छन-छन,
तनफ्फुस की[3] उलझन पे तबले की धन-धन,
ये बेरूह कमरों में खांसी की ठन ठन,
सनाख्वाने - तक्दीसे - मशरिक कहां हैं ?
ये गूंजे हुए कहकहे रास्तों पर,
ये चारों तरफ भीड - सी खिडकियों पर,
ये आवाजें खिंचते हुए आंचलों पर,
सनाख्वाने - तक्दीसे - मशरिक कहां हैं ?

---

१ पूर्वी देशों की पवित्रता के गुण गाने वाले कहां हैं ? २ दुर्गंध से
३ श्वासों की

ये फूलों के गजरे, ये पीकों के छींटे,
ये वेबाक नज़रें, ये गुस्ताख़ फ़िक़रे,
ये ढलके बदन और ये मदक़ूक़[1] चेहरे,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

ये भूखी निगाहें हसीनों की जानिब,
ये बढ़ते हुए हाथ सीनों की जानिब,
लपकते हुए पांव ज़ीनों की जानिब,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

यहां पीर[2] भी आचुके हैं जवां भी,
तनूमंद[3] वेटे भी, अब्बा मियाँ भी,
ये बीवी भी है और बहिन भी है मां भी,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

मदद चाहती है ये हव्वा की वेटी,
यशोधा की हमजिंस[4], राधा की वेटी,
पयम्बर[5] की उम्मत[6], ज़ुलेख़ा की वेटी,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

बुलाओ ख़ुदायाने - दीं को[7] बुलाओ,
ये कूचे, ये गलियां, ये मन्ज़र दिखाओ,
सनाख़्वाने-तक़दीसे - मशरिक़ को लाओ,
सनाख़्वाने - तक़दीसे - मशरिक़ कहां हैं ?

---

१. क्षय रोग के मारे हुए २. बूढ़े ३. कड़ियल ४. सह-जातीय
५. पैग़म्बर ६. अनुयायी समुदाय ७. धर्म के भगवानों को

फुटकर शेर

हयात[1] इक मुस्तकिल ग़म[2] के सिवा कुछ भी नहीं।
खुशी भी याद आती है, तो आंसू बन के आती है॥

◇ ◇ ◇

अपनी तबाहियों का मुझे कोई ग़म नहीं।
तुमने किसी के साथ मुहब्बत निभा तो दी॥

◇ ◇ ◇

फिर न कीजे मेरी गुस्ताख़-निगाहों[3] का गिला।
देखिये आपने फिर प्यार से देखा मुझ को॥

◇ ◇ ◇

गर जिन्दगी मे मिल गये फिर इत्तफ़ाक़ से।
पूछेंगे अपना हाल तेरी बेबसी से हम॥

◇ ◇ ◇

अभी तक रास्ते के पेचो-ख़म से दिल धड़कता है।
मेरा ज़ौके-तलब शायद अभी तक ख़ाम[4] है साक़ी॥

◇ ◇ ◇

ऐ ग़मे-दुनिया तुझे क्या इल्म[5] तेरे वास्ते।
किन बहानों से तबीयत राह पर लाई गई॥

◇ ◇ ◇

अब ऐ दिले-तबाह तेरा क्या ख़याल है?
हम तो चले थे काकुले-गेती[6] सँवारने॥

---

१ जीवन २ स्थायी दुख ३ नजरो ४. कच्चा ५. मालूम ६. संसार के केश (संसार)
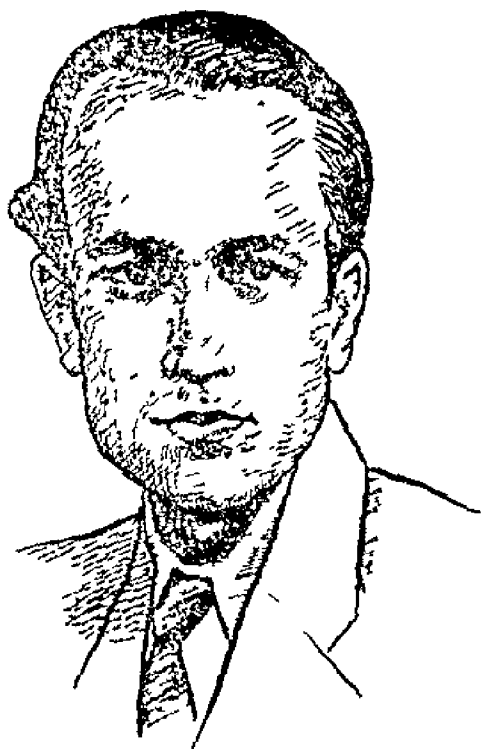
'वामिक़' जौनपुरी

रबाबे-ज़िन्दगी में जितने टूटे तार होते हैं
उन्ही को जोडकर नग़मे मेरे तैयार होते हैं

[illegible]

कहा जाता है कि एक सुहानी सुबह को जब 'बायरन' सोकर उठा तो उसे मालूम हुआ कि अपनी कविता 'Pilgrimage of Child Herold' द्वारा वह अंग्रेज़ी भाषा का एक विख्यात कवि बन चुका है। लगभग ऐसी ही एक घटना 'वामिक़' के साथ घटी। जनवरी १९४४ की एक संध्या को पूरे उर्दू जगत में उसका नाम बच्चे-बच्चे की ज़बान पर था। उसका अमर गीत 'भूखा बंगाल' देश के कोने-कोने में गाया जा रहा था। विभिन्न भाषाओं में उसका अनुवाद हो रहा था। गीत के एक-एक बोल पर बच्चे अपने खिलौने, स्त्रियां अपने आभूषण और पुरुष अपनी जेबों से नोट और सिक्के निकाल-निकाल कर गाने वालों के क़दमों पर डाल रहे थे। 'वामिक़' ने उसके बाद भी कई सुन्दर कलाकृतियां प्रस्तुत कीं जैसे 'मीना बाज़ार', 'ज़ोया तानिया', 'रात के दो बजे', 'मीरे-कारवां' (गांधी), 'तक़सीमे-पंजाब', 'ख़्वाबे-बिनमिल', 'ज़मीन' इत्यादि। लेकिन मुझे यह कहते हुए कोई संकोच नहीं हो रहा कि यदि 'वामिक' 'भूखा बंगाल' के बाद और कुछ न लिखता तब भी आधुनिक उर्दू शायरी के इतिहास में उसका नाम मोटे अक्षरों में मौजूद रहता।

अहमद मुजतबा 'वामिक़' का जन्म १९१२ ई० में जौनपुर (यू० पी०) के एक गांव में हुआ। घर का वातावरण बिल्कुल सरकारी और जागीरदारी था। घर वाले या तो ज़मींदार-पेशा थे या अंग्रेज़ी सरकार के समर्थक तथा उच्चाधिकारी। 'वामिक़' की शिक्षा-दीक्षा उसी वातावरण में हुई और अपने बचपन में

ही उसे अपने इर्द गिर्द होने वाले अत्याचार, अन्याय और वर्ग-संघर्ष का अनुभव होने लगा। उसके मस्तिष्क पर चोटें पड़ती जिन्हें वह भीतर ही भीतर दबाने पर विवश होता, लेकिन इस प्रकार दबाने से उसके हृदय में विद्रोही भावनायें पनपती रहीं और आखिर प्रौढ़ होते ही पहले उसने अपना कलम उठाया और फिर उसके कदम भी उठ गये। उसने शायर बनने की कहानी भी काफी रोचक है जिसे उसकी अपनी जबान से सुनिये :

"१६४० में मेरे एक मित्र ने मुझ से बड़े स्नेह से पूछा कि तुम्हें इतने ज्यादा शेर याद हैं और तुम मुश्किल से ही गद्य में बात करते हो तो फिर तुम स्वयं क्यों शेर नहीं कहते? मैंने इस खयाल से कि कौन गद्य में जवाब देकर बात को लम्बा करे उन पर अपनी योग्यता का सिक्का जमाने के लिए वही पुराना फारसी का शेर—'शेर गुफ्तन गर्चे दुर सुफ्तन बुवद' (शेर कहना यद्यपि मोती पिरोने से भी कठिन काम है लेकिन शेर समझना उससे भी कठिन काम है) पढ़ दिया। लेकिन महानुभाव इस आसानी से मानने वाले कब थे। हाथ धोकर पीछे पड़ गये। बात यह थी कि मैं शेर को हमेशा एक चमत्कार और शायर को कोई अलौकिक व्यक्ति समझता था और यद्यपि शेर कहने की एक दबी-दबी-सी इच्छा अपने दिल में भी पाता था लेकिन इस भावना को क्रियात्मक रूप देने का साहस कभी न किया था। उन्होंने फिर समझाया कि जनाब शेर कहने के लिए चाहे दो वक्त का खाना न मिले लेकिन इश्क करना बहुत जरूरी है। वे बोले, पहले शेर कहना शुरू कर दो बाद में इश्क भी हो जाएगा। कम से कम तुम्हारे शेर पढ़ने वाले तो तुम्हें जरूर आशिक़ समझने लगेंगे। मुहब्बत करने को मेरा भी दिल चाहता था इसलिए मैंने ग़ज़लें कहना (गढ़ना) शुरू कर दीं। बिल्कुल परम्परागत ढंग के पद्यों में भक्तिरस, शृंगाररस इत्यादि को अपने शेरों में समोने का प्रयत्न करने लगा। साल भर में ही मुझे अनुभव हो गया कि सचमुच मैं किसी पर आशिक हो गया हूँ और अपने आयु अनुपात से मुझे जो भी अच्छी सूरत नजर आती उसे देखकर यह खयाल होता कि कहीं मैं उसी पर तो आशिक़ नहीं हूँ? यह सिलसिला दो साल तक जारी रहा....

"उस समय दूसरा महायुद्ध पूरे जोबन पर था। सारे देश में भूख-नग की आँधियां चल रही थीं। अंग्रेजी और अमरीकी सिपाही सड़कों, गलियों को रौंदते फिर रहे थे। निचले मध्य-वर्ग और निर्धनों के घर वीरान और चकले आबाद हो रहे थे ... चारों ओर जीवन और इसके सुन्दर मूल्य फ़ासिज़्म के हाथों दम तोड़ रहे थे। ऐसे में मुझे लगा कि जिस प्रकार की परम्परागत

शायरी में कर रहा हूँ वह एक अक्षम्य नैतिक अपराध है······मैं इस परिणाम पर पहुँच गया कि साहित्य को जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अब मैं केवल अपने व्यक्तिगत अनुभवों से काम ले रहा था······"

उन दिनों 'वामिक़' अपने जीवन और अपनी शायरी के उस मोड़ पर आ गया था जहाँ पहुँचकर कोई भी कलाकार नये सिरे से जन्म लेता है। वह कहता है कि वह भावुक नहीं है लेकिन वह स्वाभाविक रूप से भावुक और रसिक है। उस पर उसकी सामाजिक और राजनीतिक चेतना ने सोने पर सुहागे का काम किया और वह—

ये रंजो-ख़ुशी ख़ुद कुछ भी नहीं एहसासो-नज़र के धोखे हैं

कहते-कहते चीख़ उठा :

दरिया में तलातुम बर्पा है कश्ती का फ़साना क्या माने ?
गिरदाव[1] से जब लड़ना है तुम्हें तिनके का सहारा क्या माने ?
ये नौहा-ए-कश्ती[2] बन्द करो, ख़ुद मौजे-तूफ़ां[3] बन जाओ।
पैरों के तले साहिल होगा, साहिल की तमन्ना क्या माने ?

समय के साथ-साथ उसमें हर अनुचित प्रतिबन्ध के प्रति विद्रोही-भावना बढ़ती गई जैसा कि वह अपनी नज़्म 'पापी' में कहता है :

जी में आता है कि क़ानूनी हदों को तोड़ दूँ,
ताक़े-ज़िदाने-तमद्दुन की[4] सलाखें मोड़ दूँ,
शीशा-ए-मज़हब को संगे-मासियत से[5] फोड़ दूँ,
ऐसी हालत में भी क्या मुझसे मुहब्बत है तुम्हें ?

उसने तीन साल तक वकालत की और छोड़ दी—शायद इसलिए कि वकालत उसके समीप स्वतन्त्र और सच्चा पेशा नहीं था। फिर कुछ समय तक इधर-उधर भटकने के बाद उसने सरकारी नौकरी करली, लेकिन सात साल बाद उसे भी छोड़ दिया। उसका कहना है कि नौकरी में रहते हुए वह अपनी कला का ख़ून होते नहीं देख सका। उसके बाद वह अपने गाँव में वापस चला गया और किसानों में काम करने लगा। इस बीच में उसने महसूस किया कि प्रगतिशील कवि जनता के सम्बन्ध में तो बहुत कुछ लिख रहे हैं लेकिन जनता के लिए बहुत कम अपना क़लम उठाते हैं। अतएव उसने अपने प्रांत की सहल और ग्रामीण भाषा में किसानों तथा अन्य श्रमजीवियों के लिए वहाँ की पुरानी

---

१. भंवर २. नाव के डूबने का शोकालाप ३. तूफ़ानी लहर
४. संस्कृति के कारावास की खिड़की की ५. पाप-रूपी पत्थर

शैली मे आल्हा, बिरहा, रसिया, कजली, चैती आदि लिखी जिन्हें पर्याप्त प्रशंसा प्राप्त हुई। उसका कहना है कि लोक गीत के नेता 'माओ' के कला-सम्बन्धी विचारों ने उसके सिद्धांतो पर बहुत गहरा प्रभाव डाला है।

कला के सम्बन्ध मे 'वामिक़' एक अपना सिद्धांत भी रखता है। उसका कहना है कि विषय स्वयं कलात्मक अथवा अकलात्मक नही होता। यह तो कलाकार का दृष्टिकोण है और कहने का ढंग है जो विषय को अच्छा या बुरा बनाता है। उदाहरणतः अपने एक शेर मे वह मजदूर और किसान को इस प्रकार प्रस्तुत करता है :

नज़र आ रहा है पस्ती से अरूजे-इब्ने आदम[1]
कि ज़मीरे-ख़ाको-आहन हुए ज़िन्दगी के महरम[2] ।।

'वामिक़' ने तुकान्त नज़्मे अधिक और निर्बंध तथा अतुकान्त नज़्में कम कही हैं। इस सम्बन्ध म एक स्थान पर उसने कहा था कि "निर्बंध तथा अतुकांत नज़्म लिखने के इरादे से निर्बंध तथा अतुकांत नज़्म लिखना एक अकलात्मक कार्य है। मैं जब मानसिक उलझनो और काव्य-विषय की माँगों से विवश हो जाता हूँ तो उसे निर्बंध तथा अतुकात अथवा अर्ध निर्बंध तथा अर्ध-तुकांत रूप मे प्रस्तुत करता हूँ। लेकिन इस विवशता मे भी कला के तकाज़ो से विमुख नही होता। निर्बंध तथा अतुकांत शायरी में जो एक प्रकार का सपाटपन उत्पन्न हो जाने का भय होता है मैं उसे साहित्य की अन्य कला-सम्बन्धी विभूतियों से पूरा करने की चेष्टा करता हूँ।" मेरे विचार मे अपनी इस चेष्टा के कारण ही उसकी निर्बंध तथा अतुकांत नज़्मों मे नये-नये संकेत और नई-नई प्रक्रियाएँ मिलती हैं। इस रूप मे उसकी सर्वोत्तम नज़्म यह है :

मेरे एवाने-तख़य्युल[3] के सरासीमा[4] नुकूश,
यूँ उभरते हैं, चमकते हैं, बिखर जाते हैं,
जैसे ये चाँद ये तारे ये शिहाबे-साक़िब[5]।
ज़िन्दगी अपनी मगर पा-ए-हवादिस के तले[6],
रेंगती, डरती, सिसकती ही चली जायेगी।
मेरे हसते हुए चेहरे पे न जाना ऐ दोस्त,

---

१. मानव-उत्थान २ मिट्टी और लोहे का अन्तःकरण (मज़दूर-किसान) जीवन के जानकार हो गये ३ कल्पना-महल ४. विक्षुब्ध ५ टूटते हुए तारे ६. दुर्घटनाओं के पैरों (बोझ) के नीचे

जहर को जहर समझ कर ही पिये बैठा हूँ,
एक अंबार दहकते हुए अंगारों का,
अपने सीने में बसद्-हसरत-ओ-ग़ज़ल लिये बैठा हूँ।

'वामिक़' उर्दू के उन शायरों में से हैं जो सामयिक विषयों पर बड़ी तेजी से क़लम चलाते हैं, लेकिन वह सामयिक विषयों पर क़लम चलाते हुए कहीं से कहीं भटक जाने वाले शायरों में से नहीं हैं। उनकी शायरी का प्रारम्भ ही बंगाल के अकाल ऐसे सामयिक विषय से हुआ और वह आज भी अपनी कला-निपुणता से सामयिक विषयों को सुन्दर कला-कृतियों के सांचे में ढाल रहा है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसने अन्य विषय नहीं लिये। उसके दोनों कविता-संग्रहों ('चीख़ें' और 'जर्स') में विभिन्न विषयों की पर्याप्त मात्रा मिलती है और सच तो यह है कि कुछ स्थानों को छोड़कर उसने जिस विषय पर भी क़लम उठाया है, उसके साथ पूरा-पूरा न्याय किया है।

भूखा बंगाल

पूरब देस में डुग्गी बाजी फैला सुख का काल,
दुख की अग्नि कौन बुझाये सूख गये सब ताल,
जिन हाथों ने मोती रोले आज वही कंगाल रे साथी,
आज वही कंगाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पीठ से अपने पेट लगाये लाखों उल्टे खाट
भीख-मंगाई से थक-थक कर उतरे मौत के घाट
जीवन-मरन के डांडे मिलाये बैठे हैं चंडाल रे साथी
बैठे हैं चंडाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल।

नद्दी-नाले गली डगर पर लाशों के अंबार,
जान की ऐसी मंहगी शै का उलट गया व्योपार,
मुट्ठी-भर चावल से बढ़कर सस्ता है ये माल रे साथी,
सस्ता है ये माल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

कोठरियों में गांजे बैठे बनिये सारा नाज,
सुन्दर नारी भूख की मारी बेचे घर-घर लाज,
चौपट नगरी कौन संभाले चार तरफ भूचाल रे साथी,
चार तरफ भूचाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

पुरखों ने घरबार लुटाया छोड़ के सब का साथ,
मायें रोईं बिलक-बिलक कर बच्चे भये अनाथ,
सदा सुहागन विधवा बाजे खोले सिर के बाल रे साथी,
खोले सिर के बाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

अत्ती-पत्ती चबा-चबा कर जूझ रहा है देश,
मौत ने कितने घूंघट मारे बदले सौ-सौ भेस,
काल विकट फैलाय रहा है बीमारी का जाल रे साथी,
बीमारी का जाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

धरती माता की छाती में चोट लगी है कारी,
माया काली के फंदे में वक़्त पड़ा है भारी,
अब तो उठ जा नींद के माते देख तो जग का हाल रे साथी,
देख तो जग का हाल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

प्यारी माता चिन्ता मत कर हम हैं आने वाले,
कुन्दन-रस खेतों से तेरी गोद बसाने वाले,
खून पसीना हल हंसिया से दूर करेंगे काल रे साथी,
दूर करेंगे काल !
भूखा है बंगाल रे साथी भूखा है बंगाल !

मीना बाज़ार

मीनारों पर अज़ां हुई
ये शाम भी कहां हुई
पुजारी मन्दिरों में आके शंख फूंकने लगे
ये शाम भी कहां हुई
गजर बजा—बटन दबे
वो कुमकुमे चमक उठे
दुकानें जगमगा गईं
निगाहों में समा गईं
वो महवशाने-सीम-बर[1]
फ़ुसूं-तराज़े-रहगुज़र[2]
दरों में[3] अपने आ गईं
और अपनी कायनाते-ग़म पे ख़ुद ही जैसे छा गईं
लबे-ख़मोश में नई कहानियां लिए हुए
रुख़ों पे[4] ग़ाज़ों से लदी जवानियां लिए हुए
तपे हुए दिमाग़ो-दिल में कितने शोले मुशतअ़ल[5]
ये वो ख़िज़ां-रसीदा[6] हैं बहार जिन से मुनफ़इल[7]
ज़माने के सुलूक से
ये तंग आके भूख से
रगड़ रही हैं एड़ियां
मज़ल्लतों के[8] ग़ार में

---

१. चन्द्रमुखी और चांदी ऐसे बदन वाली सुन्दरियां २ रास्ते में जादू बिखेरने वाली ३. दरवाज़ों में ४ चेहरों पर ५ भड़क रहे ६. पतझड़ की मारी हुई ७ लज्जित ८ तुच्छताओं, हीनताओं के

और इन्तक़ाम के लिए
खड़ी हैं इन्तज़ार में
समाज की ये बेटियां
समाज ही की बीवियां
नज़र के तेज़ भालों से
शराब के पियालों से
फ़रिश्तों से शरीफ़-तर
ज़मीं के रहने वालों से
खिराजे - हुस्न पायेंगी
हँसेंगी और हँसायेंगी
ये वो हैं जिनकी ज़िन्दगी
मुसर्रतों से दूर है
ये वो हैं जिनकी हर हँसी
जराहतों से[1] चूर है
ये वो हैं जिनका घर बुलंदियों पे रह के पस्त है
ये वो हैं जिनकी फ़तह भी शिकस्त ही शिकस्त है
मगर इन्हीं पे संगसारियों[2] का हुक्म आम है
"वुजूद में ये कब से और किस तरह से आ गईं ?"
जवाब इसका फिर मिलेगा ये तो वक़्ते-शाम है
थके हुए निज़ाम को ये शाम भी कहां हुई ?
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हमको छोड़कर
मगर दिले-हज़ीं ठहर

---

१. घावों से २. व्यभिचारिणी को पत्थर मार-मारकर मार डालने की प्राचीन परम्परा

वो सामने दोराहे पर
ये कैसा अज़दहाम[1] है
ये कैसा इन्तज़ाम है
ये बादे-पा[2] सवारियो पे कैसा एहतमाम है
उरूसी धूम - धाम[3] है
ये बेबसी की रूलमती
उजाले में ये तीरगी[4]
सदाए-नै[5] से किस की हर फुगां[6] लिपट के रह गई
ये शाम भी कहां हुई
अभी अभी जवानसाल
एक ज़िन्दा लाश को
हरीर[7] में लपेट कर
मुमरंतो के दोश पर[8]
किसी तिलाई[9] कुहनासाल[10] मकबरे को सौंपने
ये लोग ले के जायेंगे
और इसके बाद होगा क्या
ये लोग भूल जायगे
किसी ने गैज[11] मे कहा
"ये कौन बद - शुगून है
ज़बान इसकी खेंच लो
गरीबे शहर[12] हो कोई
तो शहर से निकाल दो"
उधर निगाहे - अहरमन[13]
हवेलियो पे खदाज़न[14]

---

१ जमघटा २ हवा मे बातें करने वाली ३ विवाह की धूम धाम ४ अंधकार ५ शहनाई की आवाज़ ६ विलाप ७ रेशम ८ कांधो ९ सुनहले १० पुराने ११ क्रोध १२ परदेशी १३ नाशकारी देवता की दृष्टि १४ हँस रहा है

इधर सवादे-वक़्त पर[1]
उम्मीदो-बीम की[2] किरन
थके हुए निज़ाम की ये शाम भी कहां हुई
चलो अब आगे बढ़ चलें
यहां ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफ़र न जाने किस तरफ़ चले गये
अकेला हम को छोड़ कर
किधर से आ गया किधर
ये तंगो - तार[3] रास्ते
मगर ये किस की चीख़ पर
क़दम हमारे रुक गये
किसी निहानखाने[4] का लुटा हुआ शबाब है
कि हाथ में समाज के शिकस्ता इक रबाब है
मुग़न्नियों को[5] दो ख़बर
कि इस के तार-तार में
दबे हुए शरार में
न जाने कौन राग है
न जाने कितनी आग है
मगर ये किस के वास्ते
ये तंगो - तार रास्ते
सदाओं पर सदायें[6] दीं
यहां पर अब कोई नहीं
बस इक चिराग़ झिलमिला रहा था वो भी बुझ गया
पलक लरज़[7] के रह गई
और इक निगाहे - वापसी[8]

---

१. समय रूपी नगर पर २. आशा और निराशा की ३. तंग और अंधेरे ४. गुप्त स्थान ५. संगीतकारों को ६. आवाज़ों पर आवाज़ें ७. कांप ८. पलटती हुई नज़र

फसाने कितने कह गई
चिता भी खाक हो चुकी
जवानो खून रो चुकी
ये कौन थे दबे कदम ठिठक के दूर हट गई
दरिंदे चढते आ रहे हैं मरघटो की राह मे
सियाही बढती जा रही है फिक्र मे, निगाह में
ये मुख्तसर सी दास्ता
और इस में इतनी तलखिया
तलू-ए-शब[1] मे अलअमा[2]
ये आधी रात का समा
थके हुए निजाम की ये शाम भी कहा हुई
चलो अब आगे बढ चलें
यहा ठहर के क्या करें
हमारे हम-सफर न जाने किस तरफ चले गये
अकेला हम को छोड कर ।

---

१ सध्या समय २ हे भगवान !

फुटकर शेर

यक़ीनन आ गया है मैकदे में तश्नालब[1] कोई।
कि पीता जा रहा हूं, कैफ़ियत[2] कम होती जाती है ॥

◇ ◇ ◇

मेरी ख़ामोशी पे बरहम न हो मुझ से ऐ दोस्त।
चलने वाले ही तो दम लेते हैं चलने के लिए ॥
पी लिया करते हैं जीने की तमन्ना में कभी।
डगमगाना भी ज़रूरी है संभलने के लिए ॥

◇ ◇ ◇

उनके समझौते पे दिल मायल नहीं।
हम अधूरी बात के क़ायल नहीं ॥

◇ ◇ ◇

उम्मीद ही पर जीते रहना तौहीन है जीने वाले की।
इस इल्मो-यक़ीं[3] की दुनिया में जीने के सहारे और भी हैं ॥
इन चलती-फिरती लाशों पर मौक़ूफ़[4] नहीं ग़म का मंजर।
काग़ज़ के कफ़न में लिपटे हुए दस्तूर के माने और भी हैं ॥

◇ ◇ ◇

सुर्ख़ दामन में शफ़क़[5] के कोई तारा तो नहीं ?
हम को मुस्तक़बिले-ज़र्रीं ने[6] पुकारा तो नहीं ?
दस्तो-पा[7] शल हैं किनारे से लगा बैठा हूं।
लेकिन इस शोरिशे-तूफ़ान से हारा तो नहीं ॥
इस ग़मे-दोस्त ने क्या कुछ न सितम ढाये मगर।
ग़मे-दौरां की तरह जान से मारा तो नहीं ॥

---

१. प्यासा २. नशा ३. ज्ञान और विश्वास (श्रद्धा) ४. आधारित
५. गोधूलि समय का आकाश ६. सुनहले भविष्य ने ७. हाथ-पैर
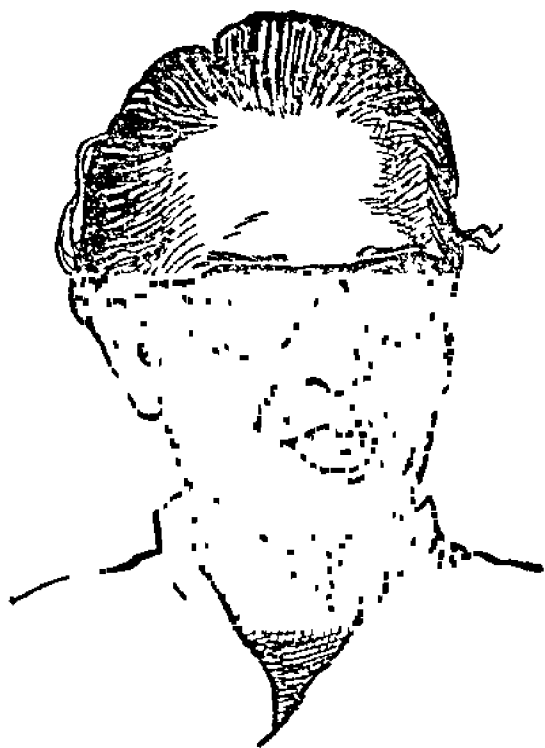
गुलाम रब्बानी 'ताबाँ'

मेरा सोज़े-दिल भी शामिल है निगारे अंजुमन में
मैं चिरागे-आज़ी हूँ, मेरी रोशनी दवामी

परिचय

'ताबाँ' मेरा बहुत प्रिय मित्र है, इसलिए उसके विषय में कुछ लिखते हुए मैं डर सा रहा हूँ कि कहीं मेरी यह मित्रता उसके और मेरे दोनों के पक्ष में अहितकर सिद्ध न हो।

मेरी उसकी मित्रता आज से छः सात साल पहले उन दिनों हुई जब फ़तहगढ़ (उत्तर-प्रदेश) जेल से रिहा होकर और अपना वकालत का पेशा त्याग कर वह मकतबा जामिया (जामियानगर) में काम करने के लिये दिल्ली आया था। पहली बार मैंने उसे एक साहित्यिक बैठक में देखा और मैंने देखा कि उसकी उपस्थिति में सभा के सदस्य एक विचित्र प्रकार का हीनता-भाव अनुभव कर रहे हैं। कारण इसका यह नहीं था कि वह कोई बहुत बड़ा और बहुत प्रसिद्ध शायर था बल्कि इसका कारण उसका छः फ़ुट का क़द, भरा-भरा बदन, सफ़ेद और सुर्ख़ रंग, सिर पर सियाह, सफ़ेद और सुनहले बालों का यह बड़ा छत्ता, आँखों पर चढ़ा बल्कि मढ़ा हुआ सियाह चश्मा और मुंह में दबा हुआ आयरिश पाइप था और यों शायर की बजाय वह सेना का कोई जनरल दिखाई देता था, जिससे उसके मातहत लोग तो भय खाते ही हैं, आम नागरिक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। लेकिन यदि मेरी स्मरण-शक्ति मेरा साथ दे रही है तो मुझे अच्छी तरह याद है कि दो-तीन मुलाक़ातों में ही पहले इस सैनिक के तमग़े, फिर वर्दी यहाँ तक कि खोल की तरह चेहरे का रोब भी उतर गया और भीतर से एक अत्यन्त अहानिकारक, सहानुभूतिपूर्ण और कोमल-आत्मा निकल आई। और आज केवल मैं ही उसे पसन्द नहीं करता, वह

दिल्ली के पूरे सांस्कृतिक क्षेत्र में बड़ी प्रियता की दृष्टि से देखा जाता है।

शरीर तथा आत्मा का यह अंतर उसके अपने पक्ष मे, उस संस्था के पक्ष मे जिसमे वह काम करता है, और उस साहित्यिक आंदोलन के पक्ष मे, जिससे वह तन-मन से सम्बंधित है, बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है। आप उसके जिम्मे कोई कठिन से कठिन कार्य डाल दीजिये, किसी सरकारी अफसर से ऐसा घी लाने को कह दीजिये जो टेढ़ी उंगलियो से भी न निकलता हो, किसी ऐसे व्यक्ति से भिड़ा दीजिये जो उसके सिद्धांतो का कट्टर विरोधी हो और किसी ऐसी सभा मे भेज दीजिये जिसका प्रत्येक सदस्य किसी ग़लतफ़हमी के आधार पर एक-दूसरे का शत्रु बना बैठा हो, वह चुटकियो मे सब को राम कर लेगा।

दूसरो को राम करने का यह सिलसिला, जो आज इस स्तर पर पहुँच चुका है कि उसे कभी मात नही होती, बहुत पहले से शुरु हो चुका है, उस समय से, जब वह अभी बच्चा ही था और उसे प्राय मात हुआ करती थी। उसका घराना एक जागीरदार घराना[1] था। पिता 'खान साहब' थे और बड़े भाई 'खान बहादुर', लेकिन बड़े मियाँ सो बड़े मियाँ छोटे मियाँ सुबहानअल्ला के विपरीत 'छोटे मियाँ' कांग्रेस के जलसो-वलसो म जा पहुँचते थे। घर म लगे हुए अंग्रेज अधिकारियो के चित्रो की आँखें फोड देते थे और फिर पाठशाला के जमाने मे तो छोटे मियाँ और भी गुल खिलाने लगे। एक बार फ़रुखाबाद के मिशन स्कूल से छुट्टियाँ बिताने घर आये हुए थे कि उन्ही दिनो डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का तबादला हो गया और चूँकि उसे कायमगंज से होकर गुजरना था, इसलिए कायमगंज के इस अंग्रेज-दोस्त खानदान ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट साहब के सम्मान मे स्टेशन पर चाय की दावत का प्रबंध किया और घर के सब लोगों को सख्त ताकीद कर दी कि वे गुलाम रब्बानी पर कड़ी नजर रखें ताकि वह स्टेशन पर न पहुँचने पाए। उसे स्टेशन पर तो न जाने दिया गया लेकिन जब डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट महोदय ने चाय की प्याली होंटो से लगाई तो ऐसा मालूम हुआ जैसे किसी बिच्छू ने उन्हे डंक मार दिया हो। 'छोटे मियाँ' ने स्टेशन भेजी जाने वाली शक्कर का डब्बा साल्ट आफ मैगनेशिया से भर दिया था।

अंग्रेज-शासको के प्रति घृणा के इस विष को मन मे दबाये गुलाम रब्बानी शिक्षा ग्रहण करता रहा। घर के प्राणी उसे डाँटने-डपटने के साथ-साथ इस विचार से प्रसन्न भी होते रहे कि पूरे खानदान मे वही पहला व्यक्ति था जो

---

१ 'ताबा' १४ फरवरी १९१४ को पितौरा (गाँव) कायमगंज, जिला फ़रुखाबाद के एक आफरीदी पठान घराने मे पैदा हुआ।

ग्रैजुएट बन रहा था और ग्रैजुएट बनते ही अपने असर-रसूख से वे उसे कोई बड़ा सरकारी पद दिलवा देंगे। लेकिन उनके दुख की सीमा न रही जब आगरा यूनिवर्सिटी से बी० ए० और फिर एल-एल० बी० करने के बाद वह गांव लौटा तो उनके विचार में वह पक्का 'कम्युनिस्ट' बन चुका था। फ़र्रुखाबाद में उसने प्रेक्टिस शुरू की लेकिन उसके कथनानुसार एक बार जो मवक्किल उसके पास पहुँचा फिर कभी उसकी सूरत दिखाई न दी और कारण इसका यह था कि वकालत की प्रेक्टिस की बजाय वह शेरो-शायरी की प्रेक्टिस में अधिक दिलचस्पी लेता था। वकालत में उसे झूठ का दौर-दौरा और शायरी में सच्चाई का बोलबाला नज़र आ गया और शायरी करने के साथ-साथ वह राजनीति में भी भाग लेने लगा। अतः पहली बार मई १९४७ में किसान आन्दोलन में और दूसरी बार १९४९ में कम्युनिस्ट होने के अपराध में उसे गिरफ़्तार किया गया और इस बार रिहा होने पर उसने सदैव के लिए वकालत से तौबा करली।

यों तो 'तावां' ने कॉलेज के दिनों में ही शेर कहने शुरू कर दिये थे लेकिन उसके उन दिनों के शेरों में और आज के शेरों में धरती-आकाश का अंतर है। उन दिनों वह :

बेचारे का आखिर को दम ले ही लिया तौबा।
मजनूं पे मुसल्लत[1] थी वो काली[2] बला तौबा॥

प्रकार के शेर कहता था और आज :

क़ैदे-औहाम[3] से आज़ाद हुए फ़िक्रो-नज़र[4]।
जल उठे तीरा-ओ-तारीक[5] दिमाग़ों मे चिराग़॥
आख़िरश[6] चांद सितारों में भटकने वाले।
पा गये ख़ाक के ज़र्रों ही में मंज़िल का सुराग़[7]॥

और

सवादे-मर्ग[8] में आख़िर हयात[9] ढूंढ ही ली।
गुनाहगारों ने राहे-निजात[10] ढूंढ ही ली॥

और

बाग़े-आलम[11] पे हुए कितने ख़िज़ां के यलग़ार[12],
ज़िन्दगानी पे कई मौत ने छापे मारे,

---

१. छाई हुई २. लैला (लैला काली थी) ३. भ्रमों की जकड़ ४. विचार और दृष्टि ५. अंधकारमय ६. अन्ततः ७. पता, निशान ८. मृत्यु के आसपास ९. जीवन १०. मुक्ति-मार्ग ११. संसार १२. आक्रमण

कभी यूना से कभी रोम से तूफ़ान उठे,
वादी-ए-नील से उबला कभी ख़ूनी सेलाब,
आग भड़की कभी आतिशक्दा-ए-फ़ारिस[1] से,
ज़िन्दगी शोलों मे तप-तप के निखरती ही गई,
जितनी ताराज[2] हुई और सवरती ही गई।

ऐसे शेर कहता है। उन दिनो वह 'मैकश' अकबराबादी से प्रभावित था, इन दिनो वह देश की जनता से, मानव-स्वतत्रता के उस सग्राम से जो दश देश मे लड़ा जा रहा है और स्थायी शान्ति क उस महान आन्दोलन से प्रभावित है जो आज पूरी मानव-जाति की सबसे बड़ी आकाक्षा है।

इतने बड़े-बड़े विषयो को शेर के साचे मे ढालते हुए बहुधा उसे सफलता मिलती है, लेकिन कभी-कभी असफलता का सामना भी करना पड़ता है। यह असफलता कोई टैक्नीक की त्रुटि नही है बल्कि यह त्रुटि है उसकी भारी भरकम 'तरकीबों', लम्बी लम्बी 'इज़ाफ़तो[3] और मोटे-मोटे शब्दो के प्रयोग की, जिनसे शेर का अर्थ समझने मे कठिनाई होती है और प्रभाव भी कम हो जाता है। उदाहरणत उसकी नज़्म 'दीवाने' देखिये। पहली पाँच पक्तियाँ कितनी सुन्दर और गतिशील हैं

यही वहशी यही सौदाई यही दीवाने
एक दिन मारका-ए-शौक़[4] भी सर[5] कर लेंगे
इश्क़—हा इश्क़ को समझा ही नही है तुमने
हुस्न—हा हुस्न को पाबदे-नज़र[6] कर लेंगे
यूही जलते रहे जलते रहे आहो के चिराग़

और फिर एकदम जब वह

रात को रूकशे-तनवीरे-सहर[7] कर लेंगे
आज ख़ूनाबाफ़िशा[8] अश्कचका[9] हैं आखें
कल मगर तकमिला-ए-शौक़े-नज़र[10] कर लेंगे

कहने लगता है तो हम शब्दों और 'तरकीबों' का अर्थ समझने के लिए रुक जाते

---

१ पारसियो का उपासनागृह (फ़ारिस) २ विनष्ट ३ सयुक्त-शब्दो ४ शौक का मोर्चा ५ विजय ६ दृष्टि का पाबद ७ सुबह की तरह प्रकाशमान ८ लहू बिखेरने वाली ९ आँसू भरी १० अभिरुचि की (दृष्टि की-मन की) प्राप्ति (तृप्ति)

हैं और जब हम रुक जाते है तो नज्म के प्रवाह में कमी आ जाती है और मस्तिष्क को झटका लगता है।

इसके अतिरिक्त मुझे 'तावां' से एक और शिकायत है और वह है उसका सामयिक विषयों पर अधिक लिखना। इस प्रसंग में तर्क करने पर यद्यपि वह मेरी सन्तुष्टि कर देता है (मैं पहले कह चुका हूँ कि उसके पास प्रभावित करने का एक अत्यन्त उपयुक्त शस्त्र उसके श्वेत बाल और जरनैली शरीर है) फिर भी मेरी सन्तुष्टि नहीं होती। 'तावां' या आप इसे मेरी ढिठाई कह सकते हैं। विश्व-साहित्य में से कुछ उदाहरण और रूसी लेखक इलिया अहरनबर्ग ऐसे साहित्यकारों के इस प्रकार के कथनों का उदाहरण देकर :

> "एक लेखक को शताब्दियों के लिए ही न लिखना चाहिये, उसे एक संक्षिप्त क्षण के लिए भी लिखने का ढंग आना चाहिये—ऐसा क्षण जिस पर किसी जाति के भाग्य का आधार हो···"

आप कह सकते हैं कि लेखक अथवा कवि अपने समय का इतिहासकार होता है (और इससे मुझे भी इन्कार नहीं) लेकिन मेरे समीप लेखक अथवा कवि, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ बाद में होता है, पहले लेखक अथवा कवि होता है। मैं साहित्य के जड़ मूल्यों का पक्षपाती नहीं हूँ जिन्हें कुछ लोग साहित्य के 'स्थायी मूल्यों' का नाम देते हैं; न मुझे इससे इन्कार है कि कोई विषय अपने आप में अच्छा बुरा, तुच्छ या महान नहीं होता, यह लेखक अथवा कवि की कला-क्षमता है जो उसे छोटा या बड़ा बनाती है और कल्याणकारी साहित्य का तो मैं बहरहाल पक्षपाती हूँ लेकिन 'तावां' से मुझे शिकायत यह है कि पर्याप्त कला-मर्मज्ञता रखने पर भी वह व्यक्तिगत् अनुभवों तथा प्रेक्षण की नींव पर बहुत कम शेरों की रचना करता है और बंगाल-अकाल, फ़िसाद, इन्डोनेशिया, कोरिया, वीतनाम, मिश्र, ईरान, रोज़नबर्ग और स्टालिन आदि की मृत्यु ऐसी घटनाओं की प्रतीक्षा अधिक करता है। और मुझे डर है कि यह प्रतीक्षा धीरे-धीरे उसे उस स्तर पर न ले जाये जहाँ लेखक अथवा कवि अनुभव तथा प्रेक्षण की प्रसव-पीड़ा से बचने के प्रयत्न में मनोवेग का शिकार होकर रह जाता है और यों लेखक अथवा कवि कहलाने की अपेक्षा राजनीतिज्ञ कहलवाने का अधिक हक़दार बन जाता है।

लेकिन मैं जानता हूँ कि वह मेरी बात नहीं मानेगा और वही करेगा जिसे वह स्वयं ठीक समझता है और मैं यह भी जानता हूँ कि यह लेख पढ़ने के बाद

जब वह इस प्रसग मे मुझसे बहस करेगा तो मैं उसकी हाँ मे हाँ मिलाने पर विवश हो जाऊँगा।

तीन वर्ष पूर्व लिखा हुआ यह लेख छपने से पहले मैंने 'ताबा' को भेजा। लेख के साथ-साथ इस सकलन के लिए चुनी हुई उसकी रचनायें भी। उत्तर मे उसने अपनी इधर की कुछ रचनायें मुझे भेजीं और लिखा

'कुछ नज्मे और ग़ज़लें भेज रहा हूँ। पिछली तीनो ग़ज़लें निकाल दो और उनकी बजाय ये ग़ज़लें शामिल कर लो। नज्मों मे से 'दीवाली' और 'मित्र' को न निकालो तो अच्छा है। इस तब्दीली की रोशनी मे तुम्हें अपने मजमून (लेख) मे कवितायें खासी तब्दील करनी होंगी। कम-अज-कम वह हिस्सा जहाँ तुमने दवामी (स्थायी) और हगामी (सामयिक) मौजूआत (विषयो) पर बहस की है। मैं आज भी दवामी और हगामी मौजू के मुतअल्लिक वही राय रखता हूँ। दवामी और हगामी अदब का तअल्लुक मौजू से नहीं बल्कि फॉर्म से है। अदबे-दवामी 'क्या कहा है?' से नहीं 'कैसे कहा है?' से बनता है।। बहरहाल यह बहस फिर होती रहेगी। इस वक्त तो इतना काफी है कि तुम्हें नये इतिखाब (चयन) की रोशनी मे मजमून तब्दील करना चाहिये।'

मजमून मैंने तब्दील नही किया। उसकी कुछ रचनाये अवश्य तब्दील कर दी हैं।

दीवाली

'वक़ार' ! रूह के तारों को क्यों छुआ तुमने ?
तुम्हारी नज़्म 'दीवाली' बहुत ही अच्छी है।
मगर—ये रात की गर्दन में दीप-मालायें,
सियाहियों में उजाले के बदनुमा धब्बे,
ग़रीब हब्शी को जैसे जुज़ाम[1] हो जाये।
ये टिमटिमाते दिये—
ये टिमटिमाते दिये सुबह का बदल तो नहीं !
मैं सोचता हूँ कि इस रात चीनो-बरमा में,
किसी महाज़ पे कितने दिये जले होंगे ?
जवान ख़ून की हर बूंद इक किरन बनकर,
इक ऐसी सुबह की तशकील[2] कर रही होगी,
हज़ार सदियों की तारीको-तीरा[3] रातों में,
बनी रही है जो इन्सां के ख़्वाब का मरकज़[4]।
वो सुबह दूर नहीं !
अंधेरी रात के सीने से नूर का चश्मा,
उबलने वाला है।
ये टिमटिमाते दिये—लक्ष्मी के चरणों में,
सभी ने हुस्ने-अक़ीदत[5] के फूल डाले हैं;
वो जिनको लक्ष्मी देवी से क़ुर्बे-ख़ास[6] नहीं,
घरों में अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,

---

१. कोढ़ २. निर्माण ३. अंधकारमय ४. केन्द्र ५. ६
६. विशेष निकटता (सम्बन्ध)

शिकस्ता झोंपड़ियों को सजाये बैठे हैं,
कि इस तरफ भी इनायत[1] की इक नज़र हो जाए।
मगर वो भूलते हैं,
शिकस्ता झोपड़ियों—टूटे-फूटे खंडरों में,
कभी भी लक्ष्मी देवी न मुस्करायेगी,
कभी बहार न इनके चमन में आयेगी,
अगर वो खुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे।

सियाहियों के नुमाइन्दे[2] —रात के बेटे,
हमारे फ़िक्रो-तख़य्युल को[3] बांधने के लिए,
तवहुमात की[4] जंजीरें डाल लेते हैं,
कभी दीवाली कभी शबबरात आती है।

दीवाली

'वक़ार' ! रूह के तारों को क्यों छुआ तुमने ?
तुम्हारी नज़्म 'दीवाली' बहुत ही अच्छी है।
मगर—ये रात की गर्दन में दीप-मालायें,
सियाहियों में उजाले के बदनुमा धब्बे,
ग़रीब हब्शी को जैसे जुज़ाम[1] हो जाये।
ये टिमटिमाते दिये—
ये टिमटिमाते दिये सुबह का बदल तो नहीं !
मैं सोचता हूँ कि इस रात चीनो-बरमा में,
किसी महाज़ पे कितने दिये जले होंगे ?
जवान ख़ून की हर बूंद इक किरन बनकर,
इक ऐसी सुबह की तशकील[2] कर रही होगी,
हज़ार सदियों की तारीको-तीरा[3] रातों में,
बनी रही है जो इन्सां के ख़्वाब का मरकज़[4]।
वो सुबह दूर नहीं !
अंधेरी रात के सीने से नूर का चश्मा,
उबलने वाला है।
ये टिमटिमाते दिये—लक्ष्मी के चरणों में,
सभी ने हुस्ने-अक़ीदत[5] के फूल डाले हैं;
वो जिनको लक्ष्मी देवी से क़ुर्बे-ख़ास[6] नहीं,
घरों में अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,

---

१. कोढ़ २. निर्माण ३. अंधकारमय ४. केन्द्र ५. श्रद्धा
६. विशेष निकटता (सम्बन्ध)

शिकस्ता झोपड़ियों को सजाये बैठे हैं,
कि इस तरफ भी इनायत[1] की इक नज़र हो जाए।
मगर वो भूलते हैं,
शिकस्ता झोपड़ियों—टूटे-फूटे खंडरों में,
कभी भी लक्ष्मी देवी न मुस्करायेगी,
कभी बहार न इनके चमन में आयेगी,
अगर वो खुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे।

सियाहियों के नुमाइन्दे[2] —रात के बेटे,
हमारे फ़िक्रो-तख़य्युल को[3] बांधने के लिए,
तवहमात की[4] ज़ंजीरें ढाल लेते हैं,
कभी दीवाली कभी शबबरात आती है।

मिश्र (मिश्र देश)

कितनी सदियों से अबुलहौल[1] पे तारी था जमूद,
जैसे अहराम[2] के साये में पड़ा सोता था।
अहदे-हाज़िर का[3] अबुलहौल—फ़िरंगी ज़रदार,
वादी-ए-नील में तख़रीब[4] का विष बोता था।

जिस तरह रूप भरे ख़िज्र[5] का कोई रहज़न[6],
चहरा-ए-ख़िज्र पे थी हुस्ने-तअ़ल्लुक़[7] की निक़ाब।
कितने यूसुफ़ बिके सरमाये के बाज़ारों में,
लुट गया कितनी ज़ुलेखाओं[8] का अनमोल शबाब।

आज इदराके - हक़ीक़त[9] की मसीहाई[10] से,
जां पड़ी जज़्बा-ए-मिल्ली की[11] ममी[12] में जैसे।
जंगे - आज़ादी ने ऐ दोस्त किया है पैदा,
रब्ते-ताज़ा[13] अरबी[14] और अजमी[15] में जैसे।

अब तहफ़्फ़ुज़[16] के तराने हों कि इमदाद के राग,
"कोई जामा[17] हो छुपेगा नहीं क़द का अंदाज़।"
गीत के बोल बदल जाने से क्या होता है ?
वही इफ़रीत[18] का नगमा वही इबलीस[19] का साज़।

---

१. फ़राऊन युग में बना हुआ बुत जिस का चेहरा तो मनुष्य का है लेकिन धड़ शेर का २. मिश्र देश के बड़े-बड़े मीनार (जिनमें ममियां बंद हैं) ३. वर्तमान काल का ४. तोड़-फोड़ ५. एक पैग़ंबर का नाम (पथ-प्रदर्शक) ६. डाकू ७. सुन्दर सम्बंध ८. अज़ीज़े-मिश्र की पत्नी जो यूसुफ पर आशिक हो गई थी ९. वास्तविकता की पहचान १०. मुर्दे को ज़िन्दगी प्रदान करने का काम ११. राष्ट्रीयता के जज्बे की १२. वह शव जिन्हें मसाला लगा कर संभाल कर रखा जाता है। १३. नया सम्बन्ध १४. अरब-निवासी १५. वे जो अरब निवासी नहीं हैं १६. रक्षा १७. लिबास १८. भूत १९. शैतान

'जेल में किसी का खत पाकर

फ़स्ले - बहार[1] में भी असीरे - क़फ़स[2] हूं मैं,
गुलज़ार[3] को फ़ज़ा[4] को मेरा इंतिज़ार है।
रंगे - फ़रेब - कोश को है मेरी जुस्तजू,
बू - ए - गुरेज़ - पा को मेरा इंतिज़ार है।
तकते हैं मेरी राह खयाबाने - कैफ़ - खेज़[5],
दश्ते - जुनूं - फ़ज़ा को[6] मेरा इंतिज़ार है।
जैसे फ़सुर्दा[7] हो गई बज़्मे - सदा-ओ - साज़[8],
याराने - खुश - नवा को[9] मेरा इंतिज़ार है।
सूने पड़े हैं मिंबरो - महराबे - मैकदा[10],
रिंदाने - बासफ़ा को मेरा इंतिज़ार है।
ये और बात है कि वो मुंह से न कह सके,
उस पैकरे - हया[11] को मेरा इंतिज़ार है।
हैं मेरे इंतिज़ार में गेसूए - शाम - खेज़[12],
चश्मे - सहर - नुमा को[13] मेरा इंतिज़ार है।
अब भी खुला है बाबे - इरम[14] मेरे वास्ते,
अब भी मेरे खुदा को मेरा इंतिज़ार है।

---

१. बसन्त ऋतु २. पिंजरे का क़ैदी ३. बाग़ ४. वातावरण ५. आनन्द प्रदान करने वाली फुलवाड़ियां ६. उन्मादोत्पादक वनों को ७. उदास ८. संगीत-सभा ९. मृदुभाषी मित्रों को १०. मधुशाला के मिंबर और महराबें (मिंबर और महराबें वास्तव में मस्जिद की होती हैं) ११. लज्जा-मूर्ति (प्रेमिका) १२. संध्या-रूपी केश १३. जादू-रूपी आंखों को १४. स्वर्ग का दरवाज़ा

कुछ अपने मुतअ़ल्लिक़

दियारे-ज़ुहद[1] छोड़ा और मैख़्वारों में[2] आ पहुँचा।
गुनाहे-ज़ीस्त[3] की ख़ातिर गुनहगारों में आ पहुँचा॥
मेरे देरीना हमदम[4] ख़ूब थे पर ये हक़ीक़त है।
सवाबित[5] से गुज़र कर आज सय्यारों में[6] आ पहुँचा॥
शबिस्तानों में[7] ख़्वाब-आवर[8] मनाज़िर कल की बातें थीं।
सहर[9] के जाँफ़िज़ा[10] बेदार नज़्ज़ारों[11] में आ पहुँचा॥
जो तालिब[12] हैं सुकूने ज़िंदगी उनको मुबारिक हो।
हलाके-जुस्तजू[13] था मैं तो आवारों में आ पहुँचा॥
नज़र थी ख़ीरा[14] कर सकती थी सीमो-ज़र[15] की ताबानी[16]।
नज़र पलती है जिनमें ऐसे नज़्ज़ारों में आ पहुँचा॥
मैं बेगाना था यज़्दां[17] के परस्तारों की महफ़िल में।
ग़नीमत है कि इन्सां के परस्तारों में आ पहुँचा॥
उरूसे-ज़िंदगी[18] की नाज़-बरदारी का सौदा[19] था।
उरूसे-ज़िन्दगी के नाज़-बरदारों में आ पहुँचा॥
अगर ये ज़िंदगी से प्यार भी इक जुर्म है फिर तो।
गुनहगारों में आ पहुँचा, ख़ताकारों में आ पहुँचा॥
भटकता फिर रहा था दर-ब-दर और कू-ब-कू[20] 'ताबां'।
ये यारों का तसर्रुफ़[21] है कि मैं यारों में आ पहुँचा॥

---

१ भक्ति रूपी देश २ मद्यपों में ३ जीवन-रूपी पाप ४ पुराने साथी ५ एक स्थान पर स्थिर रहने वाले सितारे ६ नक्षत्रों में ७ शयनगृहों के ८ निद्रामय ९ सुबह् १० जीवन-दायक ११ जाग्रत दृश्य १२ इच्छुक १३ जिज्ञासा द्वारा विनष्ट किया हुआ १४ हैरान १५ धन-दौलत १६ चमक १७ खुदा १८ जीवन-रूपी नववधु १९ उन्माद २० गली-गली २१ अधिकार (कृपा)

ग़ज़लें

कूचा-ए-शौक़[१] रहे-फ़िक्रो-नज़र[२] से गुज़रे।
नक़्शे - पा[३] छोड़ गये हम तो जिधर से गुज़रे॥
हम भी मस्जिद के इरादे से चले थे लेकिन।
मैकदे[४] राह में हायल थे[५] जिधर से गुज़रे॥
ये वो मंज़िल है कि इलियास[६] भी गुम ख़िज्र[७] भी गुम
हाए आवारगी - ए - शौक़[८] किधर से गुज़रे॥
ज़ाहिदो - शैख़ में[९] क्या-क्या न हुई सरगोशी।
मैकदे जाते हुए हम जो उधर से गुज़रे॥
आज 'तावां' दिले-मरहूम[१०] बहुत याद आया।
बाद मुद्दत के जब उस राह - गुज़र[११] से गुज़रे॥

◇ ◇ ◇

भर आई आंख तो अक्सर किसी के नाम के साथ।
मगर वो अश्क[१२] जो छलका किये हैं जाम के साथ॥
महे - तमाम की[१३] बातें महे - तमाम के साथ॥
वो रात हो गई मन्सूब[१४] उनके नाम के साथ॥
क़फ़स में रह के भी अक्सर बहार का दामन।
नज़र से चूम लिया हमने एहतराम[१५] के साथ॥
चमन पे साया - ए - अब्रे - बहार[१६] क्या कहिये।
वो ज़ुल्फ़ रुख़ पे[१७] बिखरती है इल्तज़ाम[१८] के साथ॥
कोई समझ न सका राज़े- दिलबरी 'तावां'।
ये लुत्फ़े - ख़ास[१९] है इक शाने - इंतिक़ाम के साथ॥

---

१. प्रेमिका की गली २. चिंतन-मार्ग ३. पदचिन्ह ४. मधुशालाएं ५. मार्ग में पड़ते थे ६-७. पैग़म्बरों के नाम (पथ-प्रदर्शक) ८. जिज्ञासा (इश्क़) सम्बंधी आवारगी ९. धर्मोपदेशकों में १०. मरा हुआ दिल (जो कभी आशिक होने के कारण जीवित था) ११. मार्ग (प्रेमिका की गली) १२. आंसू १३. पूरे चांद की १४. सम्बंधित १५. श्रद्धा १६. बहार के बादलों की छाया १७. चेहरे पर १८. अनिवार्य रूप से १९. विशेष अनुकम्पा

जगन्नाथ 'आज़ाद'

जहां जुल्मत का मरकज, आंधियों का आशियाना है
वहा 'आजाद' पैगाम चिरागां ले के आया हूँ

प्रसन्नता नही होती और न ही वह कभी राजनीतिक आवश्यकता से शेर का गला घोंटता है।

अस्पष्ट है कि इन मतो के बाद 'आजाद' की शायरी के बारे मे कुछ और कहने की आवश्यकता नही रह जाती; लेकिन मेरे लेख का विषय चूंकि 'आजाद' की शायरी के साथ-साथ उसका व्यक्तित्व भी है इसलिए इन मतो को उनके स्थान पर छोडते हुए मैं उस 'आजाद' की ओर देखता हूं जो 'आजाद' की बजाय कभी केवल जगन्नाथ था। पश्चिमी पजाब में सिंघ नदी के उस पार एक छोटा-सा शहर है ईसाखील। उसी ईसाखील मे ५ दिसम्बर १६१८ को उसका जन्म हुआ। पिता तिलोकचद 'महरूम' स्वय एक प्रसिद्ध शायर थे (हैं) इसलिए जगन्नाथ को जगन्नाथ 'आजाद' बनने मे अधिक प्रतीक्षा नही करनी पडी। अपनी काव्य अभिरुचि के प्रारम्भ के बारे मे स्वय उसने एक जगह लिखा है कि :

"पांच वर्ष का था जब पिता का तबादला ईसाखील से कलोरकोट के स्कूल मे हो गया। ईसाखील से कलोरकोट जाने के लिए काला बाग के स्थान पर सिंघ नदी पार करनी पडती है। हमारी नाव चली ही थी कि पहाड पर बने हुए मकानो को देखकर पिता ने कहा

पहाडों के ऊपर बने हैं मकां।

और मुझसे गिरह (दूसरी पक्ति) लगाने को कहा। मैंने तुरन्त गिरह लगाई :

अजब इनकी सूरत अजब इनकी शां।

पिता ने कहा 'सूरत' नहीं 'शौकत' कहो। उस समय तो मैं सूरत और शौकत का भेद न समझ सका लेकिन कुछ समय के बाद जब मैंने दोनों शब्दो का फर्क जान लिया तो मुझे पता चला कि शेर कहने मे नेतृत्व और परामर्श का महत्त्व कितना अधिक होता है।"

इसी नेतृत्व और परामर्श के महत्त्व को समझ लेने से अपने कालेज के जमाने (लाहौर) म उसने डाक्टर 'इकबाल', सय्यद आबिदअली 'आबिद', सूफी गुलाम मुस्तफा 'तबस्सुम' और डाक्टर सय्यद मोहम्मद अब्दुल्ला ऐसे साहित्यकारो की शरण ली और डाक्टर इकबाल' की शायरी से तो वह इतना प्रभावित हुआ कि उसकी आज की शायरी मे भी 'इक़बाल' का लबो-लहजा देखा जा सकता है।

कलोरकोट से आठवीं और मियांवाली से दसवी श्रेणी की परीक्षा पास

करने के बाद १९३३ ई० में जब वह उच्च शिक्षा के लिए रावलपिंडी आया और उसके पिता ने भी कोशिश करके अपना तबादला वहाँ करवा लिया तो तीन वर्ष तक उसे पिता के मित्रों अब्दुलहमीद 'अदम' और अब्दुलअज़ीज़ 'फ़ितरत' ऐसे सिद्धहस्त शायरों की महफ़िल में उठने-बैठने का अवसर मिला और उन लोगों की साहित्य-सम्बन्धी चर्चा से उसने पूरे उर्दू जगत का चित्र देख लिया। उस ज़माने में उसने अपने कालेज में एक साहित्य-सभा (बज़्मे-अदब) की नींव डाली और कालेज मैगज़ीन का संपादन भी किया। कालेज मैगज़ीन में तो ख़ैर उसकी रचनाओं को प्रकाशित होना ही था लेकिन कलात्मक रूप से चूँकि उसके शेरों में दूसरे तरुण शायरों की अपेक्षा अधिक पटुता होती थी इसलिए मौलाना सलाहुद्दीन अहमद और दयानारायण 'निगम' ऐसे संपादकों ने 'अदबी दुनिया' और 'ज़माना' में उसकी रचनाओं को उचित स्थान दे उसको प्रोत्साहन दिया और यह सिलसिला उसके ओरिएंटल कालेज लाहौर से एम. ए. करने के बाद तक जारी रहा।

यहाँ मैं एक बात कहने का साहस करना चाहता हूँ कि कलात्मक पटुता के बावजूद उसकी उन दिनों की शायरी में उसकी सामाजिक सूझ-बूझ का कुछ पता नहीं चलता था और उसकी अधिकतर नज़्में ठीक वैसी ही होती थीं जैसी हम आज भी दैनिक पत्रों में प्रतिदिन देखते हैं और शायद इसीलिए 'अदबे-लतीफ़' और 'सवेरा' उच्चकोटि की उर्दू पत्रिकाओं के संपादकों ने उन दिनों उसकी कोई नज़्म या ग़ज़ल प्रकाशनार्थ स्वीकार नहीं की और व्यंग्य-लेखक कन्हैयालाल कपूर के कथनानुसार तो उन दिनों 'आज़ाद' का हर दूसरा शेर पहले शेर की पैरोडी होता था।

लेकिन कभी-कभी मनुष्य के जीवन में केवल एक घटना या दुर्घटना उसके जीवन के धारे को मोड़कर रख देती है और उस एक कचोके से ही आत्मालोचन की क्षमता उत्पन्न हो जाने से उसे अपनी त्रुटियां स्वीकार करते हुए कोई झिझक नहीं होती और अपने गुणों को वह और अधिक निखारने का प्रयत्न करने लगता है।

१९४९ में भारत स्वतन्त्र हुआ और उसके दो टुकड़े कर दिए गए और हज़ारों-लाखों लोग न केवल बेघर हो गए बल्कि उन्होंने एक-दूसरे के खून से ऐसी होली खेली जिसका उदाहरण पूरे विश्व-इतिहास में नहीं मिलता और स्वयं 'आज़ाद' भी इस गड़बड़ और रक्तपात का शिकार हुआ और उसे अपना प्यारा देश छोड़ना पड़ा। और सैकड़ों कष्ट झेलता हुआ जब वह दिल्ली पहुँचा

तो उसके मस्तिष्क मे एक प्रश्न उत्पन्न हुआ

"क्यो ?"

"ये सब क्यों ?"

और हम देखते हैं कि शीघ्र ही उसने न केवल इस 'क्यो' का उत्तर पा लिया बल्कि अपनी रचनाओ द्वारा उसने इसका ठीक-ठीक उत्तर भी प्रस्तुत किया। अतएव यदि मैं यह कहूँ कि सही अर्थों मे 'आज़ाद' की शायरी का प्रारम्भ १९४७ के बाद हुआ और विशेषकर इस प्रकार के शेरो के साथ

अभी तो चश्मे इबरत वक्त की रफ्तार देखेगी।
अभी ये किस तरह कह दें सितमरानो पे[1] क्या गुज़री ?

तो मैं समझता हूँ मैं किसी ग़लत-बयानी से काम नही ले रहा।

'आज़ाद' से मैं लाहौर मे भी अवसर मिलता रहा हूँ और यहाँ दिल्ली म तो आए दिन उससे मुलाकातें रहती हैं लेकिन मुझे १९४९ की वह शाम कभी नहीं भूलती जब देश विभाजन के बाद हम पहली बार दिल्ली मे एक-दूसरे से मिले थे और उसके साधारण से वस्त्र और मोरी गेट के इलाके म छोटा-सा अन्धकारमय मकान देखकर मैंने उससे पूछा था

'यह तुम्हें क्या हो गया है ?"

और उसने व्यग्य की हँसी हँसते हुए (जिसे मैंने पहले कभी उसके होठो पर नहीं देखा था) कहा था "और तुम्हे क्या हो गया है ?'

उस समय मैं समझता था कि वह केवल अपनी झिझक दूर कर रहा है क्योंकि देखने म मुझे कुछ नही हुआ था, मैंने काफी अच्छे वस्त्र पहन रखे थे और एक अच्छे मकान मे रहता था। लेकिन फिर मेरे कहने पर जब उसने अपनी कुछ-एक नज़्में मुझे सुनाई तो मुझे अनुभव हुआ कि यदि सचमुच मुझे कुछ नही हुआ है तो मैं झूठ बोल रहा हूँ।

आज जगन्नाथ 'आज़ाद' भारत सरकार के इन्फरमेशन ब्यूरो मे इन्फरमेशन अफसर है। अच्छा लिबास पहनता है, अच्छा खाना खाता है और अच्छे घर मे रहता है, लेकिन इस परिवर्तन मे और उस परिवर्तन मे जो भारत विभाजन के बाद उसमे पैदा हुआ था, धरती-आकाश का अन्तर है। आज किसी साहित्य-सभा मे चुपचाप बैठने या केवल पिंगल आदि पर बातचीत करने की बजाए वह जीवन और साहित्य के परस्पर सम्बन्ध पर बड़ी

---

१ अत्याचारियो पर

सैद्धान्तिक बहस करता है और उसने जान लिया है कि :

जिस नज़्म में मौजूद न दर्द[1] की तड़प हो।
वो नज़्म है 'आज़ाद' फ़क़त[2] नस्रियाख़्वानी[3] ॥

और यही कारण है कि छः-सात वर्ष के इस संक्षिप्त से काल में ही उसने आधुनिक उर्दू शायरी में अपना एक विशेष स्थान बना लिया है और बड़ी से बड़ी पत्रिकाओं के सम्पादक उसकी रचनाओं को बड़े गौरव से प्रकाशित करते हैं।

१५ अगस्त १९४७ ई०

न पूछो जब बहार आई तो दीवानों पे क्या गुज़री ?
ज़रा देखो कि इस मौसम मे फ़रज़ानो[1] पे क्या गुज़री ?
बहार आते ही टकराने लगे क्यो सागरो-मीना ?
बता ऐ पीरे-मैख़ाना ! ये मैख़ानो पे क्या गुज़री ?
फ़ज़ा में हर तरफ क्यो धज्जिया आवारा हैं उनकी ?
जुनूने - सरफ़रोशी तेरे अफ़सानो पे क्या गुज़री ?
विसाले-शम्मअ[2] की हसरत मे सब बेताब फिरते थे।
मैं क्या जानूँ हुज़ूरे-शम्मअ परवानो पे क्या गुज़री ?
कहो दैरो-हरम वालो[3] ! ये तुम ने क्या फ़ुसूँ फूका[4] ?
ख़ुदा के घर पे क्या बीती सनमख़ानो[5] पे क्या गुज़री ?
निशाने-बर्गो-गुल[6] तक भी नज़र आता नही हमको।
समझ मे कुछ नही आता गुलिस्तानो पे क्या गुज़री ॥
जहां नूरे-सहर के[7] भी कदम जमने न पाते थे।
बताये कौन आख़िर उन शबिस्तानो पे[8] क्या गुज़री ?
वो रगो-नूर से भरपूर बसतानो पे[9] क्या बीती ?
शबाबे-शेर से मामूर[10] काशानो पे क्या गुज़री ?
अभी तो चश्मे - इबरत वक़्त की रफ़्तार देखेगी।
अभी ये किस तरह कह द सितमरानो पे क्या गुज़री ?
न पूछ 'आज़ाद' अपनो और बेगानो का अफ़साना।
हुआ था क्या ये अपनो को ये बेगानो पे क्या गुज़री ?

---

१ बुद्धिमानो २. शम्मअ के मिलाप (स्वतन्त्रता) ३. काबे और बुत-ख़ाने वालो ४. जादू ५. बुतख़ानो (मन्दिरो) ६. फूल और पत्ती तक का निशान ७. ऊषा के प्रकाश के ८ शयनगृहो पर ९ फुलवाड़ियो पर १०. परिपूर्ण

ग़ज़लें

हमारे रब्ते-बाहम[1] की कहां तक बात जा पहुंची।
हक़ीक़त[2] से चली थी दास्तां[3] तक बात जा पहुंची॥
उठीं दिल से यक़ीने-बाहमी[4] पर जिसकी बुनियादें।
ताज्जुब है वही आखिर गुमां तक बात जा पहुंची॥
गुलिस्तां के किसी गोशे पे इक कौंदा सा लपका था।
मगर आखिर हमारे आशियां तक बात जा पहुंची॥
रफ़ीक़ो! दोस्तो! दावे मुहब्बत के बजा, लेकिन।
अगर मेरी बदौलत इम्तिहां तक बात जा पहुंची॥
वहीं तक राज़े-सरबस्ता[5] रही जब तक रही दिल में।
ज़रा आई ज़बां तक और कहां तक बात जा पहुंची॥
शमीमे-गुल[6] ने जिस की इब्तिदा की थी गुलिस्तां में।
वहां ज़िदां[7] में ज़ंजीरे-गिरां[8] तक बात जा पहुंची॥
किया था ज़िक्र सा बेमेहरी-ए-अहबाब का[9] मैंने।
मगर नाक़दरी-ए-हिन्दोस्तां तक[10] बात जा पहुंची॥

० ० ०

१. परस्पर सम्बन्ध (प्रेम) २. वास्तविकता ३. कथा-कहानी ४. परस्पर विश्वास ५. गुप्त भेद ६. फूल की महक ७. कारागार ८. बोझल ज़ंजीर ९. मित्रों की बेरुखी का १०. भारत का निरादर करने तक

जो दिल का राज बे-आहो-फुगाँ कहना ही पडता है।
तो फिर अपने कफस को आशियाँ कहना ही पडता है॥
तुझे ऐ तायरे-शाखे-नशेमन[1]! क्या खबर इसकी?
कभी सय्याद को भी बागबाँ कहना ही पडता है॥
ये दुनिया है यहाँ हर काम चलता है सलीके से।
यहाँ पत्थर को भी लाले-गिराँ[2] कहना ही पडता है॥
ब-फंजे-मसलहत[3] ऐसा भी होता है जमाने मे।
कि रहज़न को[4] अमीरे-कारवाँ[5] कहना ही पडता है॥
ज़बानो पर दिलो की बात जब हम ला नही सकते।
जफा को फिर वफा की दास्ताँ कहना ही पडता है॥
न पूछो क्या गुज़रती है दिले-खुद्दार पर अक्सर।
किसी बेमेहर[6] को जब मेहरबाँ कहना ही पडता है॥

◇ ◇ ◇

१. घोसले की टहनी पर बैठने वाले पक्षी २ बहुमूल्य हीरा ३. समय की माँग के अनुसार ४. डाकू को ५. काफिले का पथ-प्रदर्शक ६. निर्दयी

रुबाई

अब किसकी थी उस वक़्त खता, याद नहीं।
किस तरह से हम हुए जुदा, याद नहीं॥
है याद वो गुफ़्तगू की तल्ख़ी लेकिन।
आज़ाद! वो गुफ़्तगू थी क्या, याद नहीं॥

फुटकर शेर

कहीं मज़ाक़े-नज़र[1] को क़रार[2] मिल न सका।
कभी चमन से कभी कहकशां[3] से गुज़रा हूं॥
तेरे क़रीब से गुज़रा हूं इस तरह कि मुझे।
ख़बर भी हो न सकी मैं कहां से गुज़रा हूं?

◇ ◇ ◇

क्या जानिये 'आज़ाद'! मेरा इश्क़े-जुनूं-खेज़[4]।
जीने का सहारा है कि मरने का बहाना?

◇ ◇ ◇

तेरे वस्ल में कहां था ये सरूरे-तश्नाकामी।
मेरे काम आई आख़िर, मेरी आरज़ू की ख़ामी॥

◇ ◇ ◇

बज़्मे-ख़िरद में[5] क़द्रे-जुनूं का[6] सवाल क्या?
हम आ गये थे चाके-गरेबां सिये हुए॥

---

१. नज़र की रुचि (स्वाद, रस) २. चैन ३. आकाश-गंगा
४. उन्मादोत्पादक ५. बुद्धिजीवियों की सभा में ६. उन्माद के मूल्यों का

'अर्श' मलसियानी

ऐ 'अर्श' गुनाह भी हैं तेरे दाद के क़ाबिल
तुमको कफ़े-अफ़सोस भी मलते नहीं देखा

अर्श

"……न खाने की चीज़ें खाते हैं न पीने की चीज़ें पीते हैं। न सूंघने की चीज़ें सूंघते, न टटोलने की चीज़ें टटोलते, न बरतने की चीज़ें बरतते और न झपट पड़ने की चीज़ों पर झपटते हैं। चारे और घास-फूँस से विटामिन हासिल करते हैं और बेज़रर चरिंद (अहानिकारक पशु) की ज़िन्दगी जीते हैं।"

यह है 'जोश' मलीहाबादी की भाषा में 'अर्श' मल्सियानी के व्यक्तिगत जीवन का सारांश। 'अर्श' मल्सियानी जो मुखाकृति, शरीर और वस्त्रों के आधार पर, वार्तालाप और उलझी हुई जीवन-समस्याओं को चुटकियों में सुलझा देने के आधार पर और संसार की प्रत्येक वस्तु पर निरन्तर तीस वर्ष से शतरंज को प्रधानता देने के आधार पर शायर कम और किसी गांव के पटवारी अधिक मालूम होते हैं। इस पर भी जब मैंने उनके उपनाम के बारे में उनसे बात की तो मुझे उत्तर मिला कि "बढ़िया क़िस्म का तख़ल्लुस रखने से चूंकि शायरी पर उसका असर पड़ने का अन्देशा था इसलिए मैंने 'अर्श' (आकाश या ईश्वर के बैठने का सिंहासन) तख़ल्लुस चुना।" लेकिन इसके साथ ही उन्होंने यह भी अभिव्यक्ति की कि "१९२५ ई० में जब मैंने अपनी पहली नज़्म अपने वालिद साहब[1] को इस्लाह (संशोधन) की ग़र्ज़ से दिखाई

---

१. श्री 'जोश' मल्सियानी—उर्दू और फ़ारसी के प्रसिद्ध विद्वान् और शायर। भारत सरकार की ओर से हाल ही में उनकी साहित्य-सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रस्तुत किया गया है।

तो यानिद साहब ने न केवल इस्लाह देने से इन्कार कर दिया बल्कि डाट पिलाई कि शायरी का जौहर (गुण) तुम में मौजूद ही नहीं, इसे छोड़ दो।"

शायरी का जौहर जैसा कि बाद में सिद्ध हुआ, अर्श में पर्याप्त मात्रा में मौजूद था। उनके पिता ने शायद इसलिए उनकी पीठ न थपथपाई थी कि शेरो-शायरी में पड़कर उनका बेटा अपने शिक्षण से मुँह न मोड़ ले। क्योंकि कुछ समय बाद ही जब किसी व्यक्ति ने अर्श का नाम लिये बिना उन्हें यह शेर सुनाया

मरकर भी गिरफ्तारे-सफ़र[1] है मेरी हस्ती।
दुनिया मेरे आगे है तो उक्बा[2] मेरे पीछे॥

तो उन्होंने जी खोलकर दाद दी और कहा कि यह शेर जरूर किसी उस्ताद का है। लेकिन जब इन महाशय से उन्हें पता चला कि किसी उस्ताद का नहीं, स्वयं उनके सुपुत्र का है तो एक बार फिर उनके माथे पर बल पड़ गया और उन्होंने यह कहकर शेर की प्रशंसा करनी बन्द कर दी कि एक अच्छा शेर कहने से कोई उस्ताद शायर नहीं हो जाता। इस प्रकार प्रोत्साहन न मिलने का अर्श के कथनानुसार उन पर यह प्रभाव पड़ा कि अपनी नज़्मों-ग़ज़लों पर वे और भी अधिक मेहनत और फिर स्वयं ही प्रत्यालोचन करने लगे। बाक़ायदा इस्लाह किसी से न ली और शनैः-शनैः मल्सियान ऐसी शायरी के लिहाज़ से मरुभूमि पर शायर की हैसियत से स्वयं ही अपने पैरों पर खड़े हो गए।

अपने जन्म और जन्म भूमि के बारे में एक स्थान पर वह स्वयं ही लिखते हैं कि 'पंजाब के ज़िला जालन्धर का एक छोटा सा क़स्बा जिसे मेरे पिता अक्सर खराबाबाद' के नाम से याद करते हैं मेरा जन्म-स्थान है। इस क़स्बे का नाम मल्सियान है। ज्ञान तथा विद्वत्ता की दृष्टि से इस कस्बे में मेरे माननीय पिता से पूर्व कोई व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जिसे थोड़ा-बहुत भी विद्वान् कहा जा सके। २० सितम्बर १९०८ ई० को इसी दूरदराज़ और असाहित्यिक वातावरण में मेरा जन्म हुआ।'

मल्सियान ही नहीं अर्श की युवावस्था का अधिकांश भाग ऐसे ही असाहित्यिक वातावरण और शेरो-शायरी की शत्रु नौकरियों में व्यतीत हुआ जिनसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए वे बेतरह छटपटाते रहे— एफ० ए० में शिक्षा ग्रहण कर रहे थे कि स्वभाव के विरुद्ध गवर्नमेंट एंजीनियरिंग स्कूल की

---

१ सफर में गिरफ्तार (गतिशील) २ परलोक

प्रतियोगिता में बैठा। दुर्भाग्यवश सफल भी हो गए। दो साल शिक्षा भी पाई और उसके बाद नहर विभाग में ओवरसियर भी नियुक्त हो गये। मन ने ग्लानि की और मस्तिष्क ने विद्रोह, एक वर्ष के समय में तीन बार त्यागपत्र दिया और अन्तिम बार दृढ़ निश्चय किया कि इस असाहित्यिक वातावरण को पुनः नहीं अपनाऊंगा।"

इस असाहित्यिक वातावरण से निकले तो 'आस्मान से गिरा खजूर में अटका' के अनुसार 'अर्श' को लुधियाना के एक औद्योगिक केन्द्र या स्कूल में मास्टर बनना पड़ा और एक दो नहीं पूरे बारह वर्ष सब सहना पड़ा। लेकिन इस सब के बावजूद शेर कहने का शौक या उन्माद ज्यों का त्यों बना रहा और वे इधर-उधर के मुशायरों में भी शामिल होते रहे। इसे श्री गुलाम मोहम्मद (भूतपूर्व गवर्नर-जनरल पाकिस्तान) की भी कृपा कहनी चाहिये कि उन्होंने 'अर्श' को उस अप्रिय और असंगत वातावरण से मुक्ति दिलाकर दिल्ली के जौहरियों के सामने अपनी शायरी के जौहर को प्रस्तुत करने का अवसर जुटाया। दिल्ली में 'अर्श' पहले सप्लाई विभाग में, फिर सौंग एण्ड पब्लिसिटी, फिर लेबर विभाग और उसके बाद मिनिस्ट्री ऑफ़ इन्फ़ॉरमेशन एण्ड ब्रॉडकास्टिंग में नौकर हुए। फिर १९४८ ई० में प्रकाशन विभाग में असिस्टेंट एडीटर नियुक्त हुए और १९५६ ई० में 'जोश' मलीहाबादी (जो उन दिनों उसी विभाग में उर्दू 'आजकल' के एडीटर थे) के पाकिस्तान चले जाने के बाद से एडीटर के पद पर आसीन हैं। अब तक 'हफ़्त-रंग', 'चंगो-आहंग' और आहंगे-हिजाज़ के नाम से तीन कविता-संग्रह और 'पोस्टमार्टम' नाम से एक हास्य-लेखों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है और न केवल भारत बल्कि पाकिस्तान में भी कोई मुशायरा ऐसा नहीं होता जिसमें 'अर्श' की उपस्थिति अनिवार्य न समझी जाती हो।

अपनी काव्य-प्रवृत्ति के सम्बन्ध में 'अर्श' का कहना है कि वे किसी साहित्यिक दल या संघ से सम्बन्ध नहीं रखते बल्कि पुरातन और नूतन के समावेश से जो साहित्य जन्म लेता है उसी की रचना में प्रयत्नशील रहते हैं। यह बात यद्यपि कुछ उलझन-भरी लगती है और किसी भी बिन्दु पर इसके डांडे मिलाए जा सकते हैं लेकिन 'अर्श' की शायरी का विस्तृत अध्ययन करने वाला कोई पाठक भी इससे भिन्न राय नहीं दे सकता कि अपनी शायरी के प्रारम्भिक काल में तो 'पुरातन और नूतन' के समावेश की बजाए वे पुरातन ही पुरातन पर ध्यान देते थे। लेकिन फिर धीरे-धीरे वे 'पुरातन' से केवल वर्णन-

कमज़र्फ़[1] दुनिया

ये दौरे-ख़िरद[2] है दौरे-जुनूं[3], इस दौर में जीना मुश्किल है।
अंगूर की मैं के धोखे में ज़हराब[4] का पीना मुश्किल है॥

जब नाख़ुने-वहशत[5] चलते थे रोके से किसी के रुक न सके।
अब चाके-दिले-इन्सानियत[6] सीते हैं तो सीना मुश्किल है॥

जो 'धर्म' पे बीती देख चुके, 'ईमां' पे जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीम की दुनिया में इन्सान का जीना मुश्किल है॥

इक सब्र के घूंट से मिट जाती सब तश्नालबों की[7] तश्नालबी।
कमज़र्फ़ी-ए-दुनिया के सदके ये घूंट भी पीना मुश्किल है॥

वो शोला नहीं जो बुझ जाये, आंधी के एक ही झोंके से।
बुझने का सलीक़ा आसां है, जलने का क़रीना[8] मुश्किल है॥

करने को रफ़ू कर ही लेंगे, दुनिया वाले सब ज़ख़्म अपने।
जो ज़ख़्म दिले-इन्सां पे[9] लगा, उस ज़ख़्म का सीना मुश्किल है॥

वो मर्द नहीं जो डर जाये माहौल के[10] ख़ूनी मन्ज़र[11] से।
उस हाल में जीना लाज़िम[12] है जिस हाल में जीना मुश्किल है॥

मिलने को मिलेगा बिल-आख़िर[13] ऐ 'अर्श' सुकूने-साहिल[14] भी।
तूफ़ाने-हवादिस से[15] लेकिन बच जाये सफ़ीना[16] मुश्किल है॥

---

१. ओछी २. बुद्धि-काल ३. उन्माद-काल ४. पानी में घुला हुआ विष ५. पशुता के नाख़ून ६. मानवता के हृदय का घाव ७. प्यासों की ८. सुन्दर ढंग ९. मानव-हृदय पर १०. वातावरण के ११. दृश्य १२. आवश्यक १३. अन्ततः १४. तट की शान्ति १५. दुर्घटनाओं के तूफ़ान से १६. नौका

नवाए-इश्क़[1]

मोहब्बत सोज भी है साज़ भी है।
खमोशी भी है, ये आवाज़ भी है॥

नशेमन के[2] लिए बेताब तायर[3]।
वहा पाबदी-ए-परवाज़[4] भी है॥

मेरी खामोशी-ए-दिल[5] पर न जाओ।
कि इस में रूह की आवाज़ भी है॥

खमोशी पर भरोसा करने वाले!
खमोशी दर्द की गम्माज़[6] भी है॥

दिले-बेगाना-खू[7], दुनिया मे तेरा।
कोई हमदम कोई हमराज़ भी है?

तराना हाए-साज़े-ज़िन्दगी[8] मे।
इक आवाज़े-शिकस्ते-साज़[9] भी है॥

है मेअराजे-खिरद[10] भी 'अर्श'-आज़िम[11]।
जुनू[12] का फर्श-पा[13] अदाज़ भी है॥

---

१ इश्क का नग्मा २ घोसले के ३. पक्षी ४ उड़ने की पाबदी ५. हृदय की चुप्पी ६ चुग़ल-खोर ७ दूसरो को पसद करने वाले दिल ८. जीवन के साज़ के सगीत ९ टूटे हुए साज़ का स्वर १०. बुद्धि की चरम सीमा ११. सातवा आकाश (जहा खुदा रहता है) १२. उन्माद १३ पैरों के नीचे का फ़र्श

ग़ज़लें

बिगड़ी हुई क़िस्मत को बदलते नहीं देखा।
आजाये जो सिर पर उसे टलते नहीं देखा॥

क्यों लोग हवा बांधते है हिम्मते-दिल की[1]।
हमने तो इसे गिर के संभलते नहीं देखा॥

हम जौर[2] भी सह लेंगे मगर डर है तो ये है।
ज़ालिम को कभी फूलते-फलते नहीं देखा॥

अरबाब की[3] ये शाने-हरीफ़ाना[4] सलामत[5]।
दुश्मन को भी यूं ज़हर उगलते नहीं देखा॥

वो राह सुझाते हैं हमें हज़रते-रहबर[6]।
जिस राह पे उनको कभी चलते नहीं देखा॥

ऐ 'अर्श' गुनाह भी हैं तेरे दाद के[7] क़ाबिल।
तुझको कफ़े-अफ़सोस[8] भी मलते नहीं देखा॥

◇ ◇ ◇

इश्क़े-बुतां[9] का लेके सहारा कभी-कभी।
अपने खुदा को हमने पुकारा कभी-कभी॥

आसूदह-ख़ातिरी[10] ही नहीं मतमग्र्-ए-वफ़ा[11]।
ग़म भी किया है हमने गवारा कभी-कभी॥

---

१. दिल के साहस की २. अत्याचार ३. मित्रों की ४. प्रतिद्वन्द्विता की शान ५. बनी रहे ६. पथ-प्रदर्शक ७. प्रशंसा के ८. अफ़सोस से हाथ मलना ९. सुन्दरियों का इश्क़ १०. सुख-सन्तोष की इच्छा ११. वफ़ा का लक्ष्य या लालच

इस इन्तिहा-ए-तर्के-मुहब्बत के[1] बावजूद।
हमने लिया है नाम तुम्हारा कभी कभी॥
तूफा का खौफ है अभी शायद करिश्माकार[2]।
आता है सामने जो किनारा कभी कभी॥
तनहा-रवी ने[3] रक्खी हमारे जुनू को[4] लाज।
गो अहले-कारवा ने[5] पुकारा कभी कभी॥
अब क्या कहे दिले-मुतलव्विन-मिजाज को[6]।
अक्सर ये आपका है, हमारा कभी कभी॥
पैहम सितम से[7] इश्क को तस्कीन[8] हो न जाये।
ऐ दोस्त, इल्तिफात[9]! खुदा-रा[10] कभी कभी॥
फरियादे-गम से[11] 'अर्श' सभलता है दिल मगर।
लेते हैं अहले-दिल[12] ये सहारा कभी कभी॥

० ० ०

इक फकत[13] मजलूम का[14] नाला[15] रसा[16] होता नही।
ऐ खुदा दुनिया में तेरी वर्ना क्या होता नही!
क्यो मेरे जौके-तसव्वुर पर[17] तुम्हे शक हो गया।
तुम हो तुम होते हो, कोई दूसरा होता नही॥
हमको राहे-जिन्दगी में[18] इस कदर रहजन[19] मिले।
रहनुमा पर भी गुमाने-रहनुमा[20] होता नहीं॥
सजदे[21] करते भी हैं इन्सा खुद दरे-इन्सा पे[22] रोज।
और फिर कहते भी हैं, बन्दा खुदा होता नही॥

---

१. प्रेम से मुँह मोडने की चरम-सीमा २ चमत्कार दिखा रहा है ३. अकेला चलने ने ४ उन्माद की ५ कारवान वालो ने ६. अनेक-चित्त हृदय को ७ निरन्तर अत्याचार ८. सन्तुष्टि ९ कृपा-दृष्टि १० भगवान् के लिए ११ गम की फरियाद से १२ दिल वाले १३ केवल १४ पीडित का १५. आर्तनाद, फरियाद १६ भगवान तक पहुँचना १७ कल्पना की अभिरुचि पर १८ जीवन-मार्ग में १९. लुटेरे २० पथप्रदर्शक का अनुमान २१. माथा टेकना २२. मनुष्य के दरवाजे पर

नाखुदा को[1] ढूंढ जाकर हल्क़ा-ए-गिरदाब में[2]।
बन्दा-ए-साहिल-नशीं[3] तो नाखुदा होता नहीं॥
'अर्श' पहले ये शिकायत थी खफ़ा होता है वो।
अब ये शिकवा है कि वो ज़ालिम खफ़ा होता नहीं॥

◇ ◇ ◇

पहला सा वो जुनूने-मोहब्बत[4] नहीं रहा।
कुछ-कुछ संभल गये हैं तुम्हारी दुआ से हम॥
यूं मुत्मइन से[5] आए हैं खाकर जिगर पे चोट।
जैसे वहाँ गये थे इसी मुद्दआ[6] से हम॥
आने दो इल्तिफ़ात में[7] कुछ और भी कमी।
मानूस[8] हो रहे हैं तुम्हारी जफ़ा से[9] हम॥
खू-ए-वफ़ा[10] मिली दिले-दर्द-आशना[11] मिला।
क्या रह गया है और जो मांगें खुदा से हम!
पाए-तलब[12] भी तेज़ था, मंज़िल भी थी क़रीब।
लेकिन निजात[13] पा न सके रहनुमा से[14] हम॥

◇ ◇ ◇

दर्द की इब्तिदा[15] भी है, जब्त की[16] इन्तिहा भी है।
क़तरा-ए-अश्क[17] आंख में आके रुका हुआ भी है॥
राहे-फ़ना पे[18] हर जगह खा न फ़रेबे-बंदगी[19]।
देख कि इस मुक़ाम पर[20] सजदा-ए-दिल[21] रवा[22] भी है?
ऐ दिले-कमनज़र[23] ज़रा उस पे भी कुछ नज़र रहे।
दुश्मने-मुद्दआ[24] है जो, खालिक़े-मुद्दआ[25] भी है!

---

१. नाविक को २. भंवर के घेरे में ३. तटवासी ४. प्रेमोन्माद ५. सन्तुष्ट से ६. उद्देश्य ७. कृपा में ८. अभ्यस्त ९. अत्याचार से १०. प्रेम निभाने की आदत ११. पीड़ित हो उठने वाला हृदय १२. तलाश करने वाला पांव १३. मुक्ति १४. पथप्रदर्शक से १५. शुरूआत १६. सहन-शक्ति की १७. आंसू की बूंद १८. विनाश-मार्ग में १९. उपासना का धोखा २०. स्थान पर २१. दिल का प्रणाम २२. उचित २३. संकुचित दिल २४. मनोकामना का शत्रु २५. मनोकामना का उत्पत्ति-कर्त्ता

फुटकर शेर

तहय्युर[1] है हुजूरी में तो बेताबी है दूरी में।
मुसीबत में ये जाने-नातवाँ[2] यूँ भी है और[3] यूँ भी॥

o o o

तवाज़ुन[4] खूब ये इश्क़ो-सज़ा-ए-इश्क़ में[5] देखा।
तबीयत एक बार आई, मुसीबत बार-बार आई॥

o o o

दाग़े-दिल से[6] भी रोशनी न मिली।
ये दिया भी जला के देख लिया॥

o o o

तलस्सुम की[7] फ़ुसूँकारी का[8] कुछ ऐसा असर देखा।
कि ये दुनिया मुझे दुनियानुमा[9] मालूम होती है॥

o o o

न हरम[10] में है वो न दैर[11] में है।
हम तो दोनों जगह पुकार आये॥

o o o

ख़याले-तामीर के अमीरो[12], करो न तख़रीब की[13] बुराई
बग़ौर[14] देखो तो दुश्मनी के करीब ही दोस्ती मिलेगी॥
अताब[15] करने दो 'मर्ग' उनको कि इसमें भी मसलहत[16] निहाँ[17] है।
मिज़ाज को बरहमी[18] मिलेगी तो हुस्न को दिलकशी[19] मिलेगी॥

---

१ विस्मय २ अशक्त जान ३. और ४ सन्तुलन ५. इश्क और इश्क के दण्ड में ६. दिल के दाग़ से ७ तिलस्म की ८ जादू फूंकने का ९. दुनिया जैसी १०. काबे की चार-दीवारी ११ मन्दिर १२ निर्माण के इच्छुक व्यक्तियो १३ विनाश १४. ध्यान से १५ कोप १६ हित १७ निहित १८. क्रुद्धता १९. मनोहरता

न नशेमन[1] है, न है शाखे-नशेमन[2] बाक़ी।
लुत्फ़ जब है कि करे अब कोई बर्बाद मुझे॥

◇ ◇ ◇

है देखने वालों को संभलने का इशारा।
थोड़ी सी नक़ाब आज वो सरकाये हुए हैं॥

◇ ◇ ◇

मेरे दिल की नैरंगी[3] पूछते हो क्या मुझसे?
तुम नहीं तो वीराना तुम रहो तो बस्ती है॥

◇ ◇ ◇

किस का क़ुर्ब[4] कहां की दूरी अपने आप से ग़ाफ़िल[5] हो।
राज़ अगर पाने का पूछो, खो जाना ही पाना है॥

◇ ◇ ◇

ख्वाहिशे-मादूम[6] अच्छी ख्वाहिशे-नाकाम से[7]।
हैफ़[8] उस पर फूल बनकर जो कली मुर्झा गई॥

◇ ◇ ◇

ज़िन्दगी कशमकशे-इश्क़ के आग़ाज़[9] का नाम।
मौत अंजाम इसी दर्द के अफ़साने का॥

---

१. घोंसला २. घोंसले वाली शाखा ३. हालत, जादूगरी ४. समीपता ५. असावधान ६. अप्राप्य इच्छा ७. असफल इच्छा से ८. अफ़सोस ९. इश्क़ की तीव्रता की शुरुआत

'मख़्मूर' जालंधरी

जंग लड़ते हैं सदाक़त की, मुसावात की, एलान करो ।

परिचय

यह १९४० ई० की बात है, उधर दूसरा महायुद्ध भयानक रूप धारण करता जा रहा था और इधर उर्दू साहित्य में विषय और रूप सम्बन्धी नित नये प्रयोग किए जा रहे थे—जो लेखक भी सामान्य स्तर से हटकर कोई नई बात कहता था, उसकी गणना प्रथम श्रेणी के साहित्यकारों में होने लगती थी। फ्रायड के सिद्धांत, जेम्स-जॉयस और डी० एच० लॉरेंस की शैली और टी० एस० इलियट के भावों का अनुसरण ज़ोरों पर था। काम (विषय—Sex) पर बड़ी बेबाकी से क़लम उठ रहे थे और उस समय की धारा के अनुसार उन रचनाओं पर उन्नति तथा प्रगतिशीलता का लेबल लगाया जा रहा था और 'शिष्ट पाठक' उन पर झल्ला रहे थे—यह युग उर्दू शायरी में निर्बंध तथा अतुकांत शायरी का युग था—उन्हीं दिनों 'मख़्मूर' जालंधरी अपने व्यक्तिगत अनुभव तथा प्रेक्षण और अपनी विशेष शैली के साथ साहित्य-क्षेत्र में उत्तीर्ण हुआ। वह हमारे समाज के चेहरे पर से कुछ ऐसी निर्दयता से नोच-नोच कर झिल्लियाँ उतारने लगा कि नैतिकता की रूढ़िगत-परम्पराओं से प्रभावित मस्तिष्क उत्तेजित हो उठे। उनकी ओर से जिन उर्दू लेखकों और कवियों को खुल्लम-खुल्ला गालियाँ दी गईं, 'मख़्मूर' जालंधरी उनमें से एक था। वास्तव में 'मख़्मूर' जालंधरी जिस वातावरण से आया था, वह वातावरण ही ऐसा था कि अपनी नज़्मों में समय तथा समाज की किसी बुराई, किसी घिनावने पात्र को सुधारवादी दृष्टिकोण से नग्न करते हुए भी आप-ही-आप उसकी नज़्मों में ऐन्द्रीय आनन्द का अंश उभर आता था।

गुरबख्शसिंह 'मख्मूर' जालधरी १८ अक्तूबर १६१५ को लालकुर्ती बाजार, जालधर छावनी म एक साधारण दुकानदार के घर पैदा हुआ। जालधर छावनी में लालकुर्ती बाजार आलीशान दोमञ्जिला बारको की भयावह भुजाओ मे घिरा हुआ है। आज उन बारको मे अग्रेज साम्राज्य के अधमवर्गीय (Proletariate) सैनिको की बजाय हमारे अपने अनपढ़, आधे भूखे और आधे नगे सैनिक आबाद हैं। जिन दिनो 'मख्मूर' जालधरी ने इस वातावरण मे आँख खोली लोगो के दिलो मे अपनी पराधीनता की बडी खटक थी। अधमवर्गीय गोरे यद्यपि साम्राज्यशाही गोरो के वैसे ही दास थे जैसे हम उनके, फिर भी साम्राज्यशाही गोरों ने अपने सैनिको के मन-मस्तिष्क मे अपने भारतवासियो के शासक होने का जो विचित्र विचार डाल रखा था, उससे वशीभूत वे जब चाहते सिक्खो की पगडी, मुसलमानो की टोपी और हिन्दुओ की धोती उतार लेते। गोरे पर हाथ उठाने का दण्ड मृत्यु था। लालकुर्ती बाजार मे गिने-चुने साधारण दुकानदारों के अतिरिक्त यहाँ सबके-सब गोरो के 'खिदमतगार' बसते थे—भगी, धोबी, नाई, बहिश्ती, बावर्ची, बैरे, खानसामे, चौकीदार, खलासी, साईस, इत्यादि। और इस निचले वर्ग को खुशामद, जी-हुजूरी, स्थायी भय, भाग्य विमूढता, सतोष आदि प्रवृत्तियो ने नितान्त पशु बना दिया था। ये सब गोरो के फटे हुये जूते, उधडी हुई वर्दियाँ और घिसी हुई जर्सियाँ पहनते। शराब पीकर लडते-झगडते और पुलिस वालो का पेट भरते। घरो मे चूल्हे कभी सुलगते, कभी बुझ जाते। छ महीने काम करते, छ महीने निठल्ले रहते। किसी की बेटी भाग जाती तो किसी का बेटा। 'मख्मूर' को इस वातावरण की भुखमरी और सडाँद ने अत्यन्त प्रभावित किया और यही वातावरण उसकी शायरी का आधार बना। उसकी कुछ नज्मो के शीर्षक देखिये 'महतरानी', 'भूखी जवानियाँ', 'बीम चेहरे', 'धोबन माई'।

उसकी शायरी का श्रीगणेश और विकास किस प्रकार हुआ उसके बारे मे वह स्वय कहता है

"मुझे मेरे बचपन के साथी 'इसी' निचले वर्ग से मिले। मेरे साथियों के बडे-बूढे राग-रग, नाच, कथा आदि के बडे प्रेमी थे। वे अक्सर थानेदारों, गोरा पुलिस और मेम साहिब के सम्बन्ध मे 'बिरहा' गढ़ते, दोहे और चौपाइयाँ गाते। उनकी देखा-देखी मैं भी 'बिरहा' कहने लगा—शेखीखोर, झूठे और शेखचिल्ली ढग के लडको के बारे मे। यह मनोरजन मुझे बहुत पसद आया, क्योंकि इस प्रकार दूसरो पर चोट करने का अवसर और आनन्द मिलता था।

नवीं कक्षा में अपने फ़ारसी के अध्यापक प्रभुसिंह के प्रोत्साहन पर, जिन्होंने मुझे पिंगल आदि सिखाया, मैं बिरहा और दोहों को छोड़कर ग़ज़लें कहने लगा। अब मेरे शेरों की अनियमितता की त्रुटि तो दूर हो गई लेकिन घिसे-पिटे और परम्परागत विषयों को शेर में बांधने की त्रुटि अभी तक मौजूद थी और इसका एक कारण यह था कि अध्यापक प्रभुसिंह ने मुझे मीर 'दर्द' आदि सूफ़ी शायरों के 'कलाम' के अध्ययन तक ही सीमित रखा और मैं एक समय तक शब्दाडंबर में फँसा रहा, और न जाने आज भी फँसा होता यदि 'बशीर' नामक एक गुमनाम शायर से मेरी भेंट न होती······

"बशीर से मेरा परिचय बम्बई में हुआ जहां कालेज से निकलने के बाद मैं इंजीनियरिंग पढ़ने के लिए भेजा गया था। मेरी ग़ज़लें सुनकर 'बशीर' ने उन पर परम्परागत होने का दोष लगाया और मुझे नज़्में लिखने को कहा। वह स्वयं बड़ी रंगीन नज़्में लिखता था और इस प्रसंग में 'अख्तर' शीरानी का रंग अपनाने की कोशिश किया करता था। वह एक बोहीमियन और रोमांटिक टाइप का शायर था। बाल बढ़ाना, उल्टा-सीधा लिबास पहनना, बातचीत में जान-बूझ कर व्यंग और उपहास का पहलू लाना, प्रातः देर से सोकर उठना, महीने में एक बार नहाना, बेतहाशा चाय पीना, साथियों के स्वभाव और कलात्मक बोध से बेनियाज़ होकर ख्वाहमख्वाह विशेषज्ञ बनने और ऊँचे स्तर की बात करने का प्रयास करना, पन्द्रह दिनों में एक-आध संक्षिप्त-सी नज़्म लिखना और यह समझ लेना कि जीवन का कोई महान कर्तव्य पूरा कर दिया है। अध्ययन नाम-मात्र करना, लेकिन शेक्सपियर और मिल्टन से लेकर अंग्रेज़ी के आधुनिक कवियों एज़रा पाऊंड, स्टीफ़न स्पेंडर और आडन तक की कला का मूल्यांकन कर डालना। एक समय तक मैं 'बशीर' की इस प्रकृति से प्रभावित रहा और सुबह-शाम के संपर्क से मुझमें भी बोहीमियनिज्म के कीटाणु घुस आये, लेकिन 'बशीर' के संपर्क से मुझे एक लाभ अवश्य हुआ—मैं परम्परागत, घटिया और अपभ्रंश शायरी से पीछा छुड़ाने में सफल हो गया और मैंने विषय और रूप के अनगिनत प्रयोगों की शुरुआत की···।"

अपने उस प्रयोग-काल में उसने "च्यूंटी के पर', 'तालाब', 'एक औरत को कपड़े पहनते हुए देखकर', 'अनोखा ब्योपारी' आदि नज़्में लिखीं और काफ़ी बदनामी और काफ़ी ख्याति प्राप्त की। उसकी नज़्मों में समाज के अभावसूचक पात्रों का एक असीमित प्रसङ्ग मिलता है। उन दिनों यों भी समाज के भावसूचक पात्रों पर उर्दू लेखकों और शायरों की दृष्टि बहुत कम पड़ती थी

इसलिए कि उस समय के उर्दू साहित्य मे अवसन्नता, व्यक्तिवाद, द्वेषवाद उद्वेगवाद आदि प्रवृत्तियाँ प्रचलित थी। अति असाधारण पात्रो को प्रस्तुत करने वाला यथार्थवादी कहलाता था और इस प्रकार यथार्थवाद के वास्तविक अर्थों को विकृत किया जाता था ('मीराजी' इस प्रकार की शायरी के प्रतिनिधि शायर थे) 'मख्मूर' ने यद्यपि उस समय इन्ही प्रवृत्तियो का साथ दिया तथापि मूलरूप से वह सुधारवादी रहा और अपनी प्रत्येक नज्म मे कोई न कोई नैतिक परिणाम निकालने का प्रयत्न किया। फिर उसकी निर्बंध और मुकात नज्मों मे 'मीराजी' आदि शायरो ऐसी कल्पना, अति-सांकेतिकता और अस्पष्टता भी नही होती थी बल्कि कथा-वस्तु वार्तालाप से परिपूर्ण होने के कारण वे और भी सरल तथा सुगम हो जाती थी। उदाहरणार्थ उसकी उस जमाने की एक नज्म 'कुन्दन' का एक टुकडा देखिए :

> कुन्दन धीरे चलता है और तेजी से घबराता है
> नन्हे बच्चों की फुर्ती चालाकी पर झुंझलाता है
> जब कोई इस्कूल को जाती फूल-सी शोला-खू[1] लडकी
> देखता है, बोल उठता है, 'ये कैसा जमाना आया है
> रंगरूप के बेचने वाली का-सा स्वांग रचाया है
> अच्छा ईश्वर तेरी मर्जी ये भी मुसीबत सहना थी
> शुक्र है अगले वक्तो की बेटी के ऐसे ढंग न थे
> लाज ही उसका जोबन थी और लाज ही उसका गहना थी"
> लेकिन दोशीजा के सरापा[2] मे कुन्दन खो जाता है।

१९४२ ई० मे जब 'मख्मूर' का पहला कविता-संग्रह 'जलवागाह' प्रकाशित हुआ तो उस समय के कुछ आलोचको ने उसे अश्लीलतावादी, और कुछ ने यथार्थवादी कहा। उसकी नज्मो की पैरोडिया की गईं। उसकी नज्मों के सामूहिक प्रभाव को नजर-अंदाज करते हुए उनमे से एक-आध पंक्ति लेकर उन्हें आचार-विरोधी सिद्ध किया गया। यह ठीक है कि उस समय 'मख्मूर' की कला यथार्थवाद का बिगड़ा हुआ रूप लिये हुए थी लेकिन उसे समाज के मूल्यांकन मे जो निपुणता प्राप्त थी और वह जिस मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज के विभिन्न पात्रो का विश्लेषण करता था, उसने धीरे-धीरे उसे वास्तविक यथार्थवाद की ओर आकृष्ट कर दिया। इस रूप से मैं उसे 'नजीर' अकबराबादी

---

१ शोले ऐसी २ सिर से पाँव तक का पूरा शरीर

(उर्दू का प्रथम जन-कवि) की सुन्दर परम्पराओं का उत्तराधिकारी कहूँगा क्योंकि 'नज़ीर' अकबराबादी ने भी रूढ़िगत कविता के विरुद्ध नये-नये प्रयोग किये थे। 'शेफ़ता' ऐसे गंभीर आलोचकों ने उसे अश्लीलतावादी और बाज़ारू कवि कहा क्योंकि वह जनसाधारण की भाषा में बड़ी बेबाकी से उसकी समस्यायें प्रस्तुत करता था और अपने आत्मानुभव तथा अपनी मनोवृत्ति का निःसंकोच वर्णन करता था। 'नज़ीर' की नज़्म 'आंधी' का एक टुकड़ा देखिये :

इस आंधी में अहा-हा-हा अजब हमने मज़े मारे,
फ़लक पर ऐसी-इगरत ने दिखाई दे गये तारे,
रक़ीबों की है अब ख्वारी, ख़राबी क्या लिखूं सारे,
तले कोठे के बैठे अट गये सब गर्द के मारे,
भरी नथनों में उनके ख़ाक दस-दस सेर आंधी में।

१९४२ ई० के बाद 'मख्मूर' की नज़्मों के दो और संग्रह 'तलातुम' और 'मुख्तसिर नज़्में' प्रकाशित हुए। 'तलातुम' की नज़्में उसकी कला-कौशलता को अवश्य प्रकट करती हैं, लेकिन सैद्धान्तिक रूप से उनमें 'मख्मूर' वहीं का वहीं दिखाई देता है। हां 'मुख्तसिर नज़्में' उसके एक ठोस प्रयोग का साक्षी है, जिसकी कुछ नज़्में तो केवल एक पंक्ति की नज़्में हैं। इन अत्यन्त संक्षिप्त नज़्मों में उसके विचारों की गहराई और जीवन-जिज्ञासा के अंश भी मिलते हैं।

१९४४ ई० में जब 'मक्तबा उर्दू' और 'मक्तबा जदीद' (लाहौर के प्रकाशन-गृह) के लिए 'मख्मूर' ने रूसी साहित्य को उर्दू का जामा पहनाने का कार्य आरम्भ किया (अब तक वह टाल्स्टाय का उपन्यास 'वार एण्ड पीस', गोर्की का 'मदर', शोलोखोफ़ का 'एण्ड क्वायट फ़्लोज़ दी डॉन' और 'वर्जन सॉयल अपटर्नड' आदि कई पुस्तकों का अनुवाद कर चुका है) तो उसके अपने कथनानुसार उसे पहली बार मालूम हुआ कि जिस यथार्थवाद का वह अनुयायी था वह वास्तविक यथार्थवाद नहीं था, और उसने समझ लिया कि यथार्थवाद के लिए सामाजिक और राजनीतिक बोध अनिवार्य है। देश के बटवारे ने उसके इस विश्वास को और भी दृढ़ता प्रदान की कि सामाजिक और राजनीतिक बोध के बिना कोई लेखक महान् साहित्य की रचना नहीं कर सकता। उसे मानव-मित्र तथा मानव-शत्रु शक्तियों का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये।

१९४८ ई० में 'मख्मूर' जालंधर रेडियो में नौकर हुआ। यहां रहकर साढ़े तीन वर्ष में उसने डेढ़ हज़ार के लगभग पंजाबी तथा उर्दू में फ़ीचर और

मगरमच्छ के आंसू

(दूसरे महायुद्ध के अन्त पर)

सुनते हैं याद मुसीबत में खुदा आता है
आसरा इक यही मजबूर की तक़दीर में रह जाता है
"खोल दो, वन्द कलीसाओं के[1] दर खोल भी दो
माना मानूस[2] नहीं हाथ दुआओं से, दुआयें मांगें !
ममलिकत[3] पर कहीं खुरशीद न हो जाये गुरूब
हुक्म दे दो कि सभी अपने खुदाओं से दुआयें मांगें !"
जी पे बन जाये तो जिल्लत भी उठा लेते हैं
सुनते हैं बाप गधे को भी मुसीबत में बना लेते हैं
"नाग है अपना मुआविन[4] तो कोई बात नहीं
काम लेना है हमें नाग खजाने पे बिठालो अपने
शहद का घूंट समझ कर सम्मे-क़ातिल[5] पी जाओ
किसी क़ीमत, किसी उजरत पे उसे साथ मिलालो अपने !"
सारा धन जाता हो तो निस्फ़ लुटा देते हैं
सुनते हैं बच्चे जो चोखें उन्हें अफ़यून खिला देते हैं
"सब को बख़्शेंगे मुसाइब की सलासिल[6] से निजात
जंग लड़ते हैं सदाक़त की, मुसावात[7] की, एलान करो
अपनी मनमानी ही आखिर में करेंगे, अब तो
दहर को[8] वादा-ए-पुरकैफ़[9] से मिन्नतकशे-अहसान[10] करो !"

---

१. गिरजाघरों के २. परिचित ३. राज्य ४. साथी ५. हलाहल ६. विपत्तियों की जंजीर ७. समानता ८. संसार को ९. सुखद वायदा १०. उपकार से प्रभावित

अथवा

सलीमा, चान्द की किरन
हर इक ख़याल की दुल्हन
नज़र-नज़र की आरज़ू
नज़र-नज़र की जुस्तजू
शरारतों की जलवागाह, शोख़ियों की अंजुमन
तजल्लियों की[1] शाहराह, ज़रनिगार[2] , ज़ूफ़िगन[3]
सलीमा, उस ज़माने का
हसीं फ़रेब खा गई
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन क़दम उठा गई
क़फ़स की तीलियों को तोड़कर परिन्द उड़ गये
नज़र जो मोड़ सामने पड़ा उसी पे मुड़ गये
मुहब्बत, इस समाज में
कठिन क़दम उठा गई
मगर क़यामत आ गई

(२)

सलीमा, रंगो-बू चमन
शराब जिसका बांकपन
सलीमा, जिसके पैरहन[4]
नज़रनवाज़, सहरफ़िगन[5]

१. प्रकाश की २. कुन्दन-मुखी ३. प्रकाश बिखेरने वाली ४. पहरावे
५. जादू बिखेरने वाला

बड़ी दलेर थी जो अपना राज़ फाश कर गई
रिवायतों का आबगीना[1] पाश-पाश कर गई
छुपे करिश्मे, पाकबाज़
उठे हिजाबे-बेसवा[2]
नदी है मैं की खुल्द में[3]
यहां शराब नारवा
हिजाब उठाके-रस्मो-राह तोडकर चली गई
बुजुर्गतर निगाह में
बड़ा गुनाह कर गई
ग़रीब वालदैन को
युंही तबाह कर गई
जबी पे[4] कुन्बे की सियाह कश्का[5] इक लगा गई
निसाई[6] हुस्न और वकार[7] खाक मे मिला गई
वो शर्मसार कर गई
लबो पे ताने धर गई
दिलों मे ज़ख्म सैकडो
सदा-बहार भर गई
दो छोटी बहनों के लिए नुकीले काटे बो गई
वो उम्र-भर की इज्ज़त अपने मैल मे भिगो गई
बुरी मिसाल बन गई
सलीमा ऐसी नाज़नी
शफ़क़-जमाल[8] , मह्-जबी[9]

---

१. पानी का बुलबुला २. बेसवा की ३. स्वर्ग में ४. माथे पर ५. कलक का टीका ६ स्त्रीत्व ७ दान ८. डूबते सूरज की लालिमा ऐसी सुन्दर ९. चन्द्रमुखी

(३)

सलीमा, खुश-जमाल[1] थी
नहीं वो बदखसाल[2] थी
हुसूले-आरज़ू[3] की धुन में घर से क्यों चली गई
वो दूर वालदैन की नज़र से क्यों चली गई
सलीमा, फूल बेल थी,
नहीं नहीं, चुड़ेल थी
हयाते-पुर-अलम[4] को खुशगवार करने क्यों गई ?
नज़र में, दिल मे मुस्कराते फूल भरने क्यों गई ?
सलीमा, चान्द की किरन
नहीं-नहीं, वो बद-चलन
घराने में 'हमीद' था, 'कमाल' था, 'बुलंद' था
मगर वो गुंडा 'आफ़ताब' उसको क्यों पसंद था ?
सलीमा, हीरे की कनी
नहीं-नहीं वो कुश्ती[5]
बजुर्गों की पसन्द, उस पे मुतमईन न क्यों हुई ?
जो उसका इन्तिखाब था वो उसके साथ क्यों गई ?
सलीमा ऐसी नाज़नीं
शफ़क़-जमाल, मह-जबीं
बड़ा गुनाह कर गई !

---

१. सुन्दर २. बदचलन ३. कामना की प्राप्ति ४. दुखों-भरा जीवन ५. मार डालने के योग्य

चे-मे-गोइयां

अरी कुछ सुना तूने क्या हो गया ?
बहन नास-पीटा ये चूल्हा तेरा ?
कभी एक पल को न ठंडा हुआ
अभी बरतनों का भरा टोकरा
तेरे सामने है पड़ा !

बहन जां लड़ाओ तो कुछ लुक़्मे खाओ
हुआ तेज़ इतना ज़माने का ताओ
कि अब हड्डियां अपनी पीसो तो खाओ
चलो छोड़ो क़िस्मत पे क्यों सर खपाओ
कोई ताज़ा क़िस्सा सुनाओ !

बहन कुछ न पूछो हया उठ गई
चहेती वो नाज़ों पली लाडली
नवेली बहू लाजपत राय की
करेगी कहीं आज कल नौकरी
नहीं लोभ की हद कोई !

ऊई राम ! पूछो तो हम सच बतायें
पढ़ीं और लिखीं सर-बरहना[1] बलायें
न मर्दों से जिस रोज़ शाना भिड़ायें
न जब तक इन्हें देख कर मुस्करायें
वो घर अपने तब तक न आयें !

---

१. नंगे सिर वाली

वहन ग़ैर का हाथ हम पर पड़े
तो लगता है यूं जैसे नश्तर गड़े
यही चाहते हैं वहीं पर खड़े
वो उतनी जगह या गले या सड़े
बुरे हाथ जिस जा पड़े !

वहन मर्द की शान है वो कमाये
कमाया हुआ उसका कुल कुनवा खाये
जो कुछ रूखा-सूखा सा वाहर से लाये
उसे वीवी धोये, संवारे, पकाये
सुघड़ और चतुर नाम पाये !

मुझे देखो ये कोई दावा नहीं
कभी घर में तिनका भी होता नहीं
अगर भूखे सोये तो परवा नहीं
ज़वां पर कभी शिकवा आया नहीं
गिला अपना शेवा नहीं !

वहन तुम से क्या अपनी विपता छुपाऊं
हया रोके है वरना कुर्ता उठाऊं
तो शलवार की खस्ता हालत वताऊं
कई खिड़कियां और रोज़न[1] दिखाऊं
कहां और टांके लगाऊं !

अरी नौकरी तो वहाना है वस
नई पौद सचमुच हविस है हविस
इरादे गुनहगार नीयत नजिस[2]
सदा पायें मर्दों की क़ुरवत[3] में रस
कि घेरे रहें पांच दस !

---

१. झरोके २. अपवित्र ३. सामीप्य

हम तो बहन नखरे आते नहीं
कभी सुर्खी पाउडर लगाते नही
दोपट्टे को सिर से हटाते नही
ये बालो मे चिडिया बनाते नही
ये सीना दिखाते नहीं !

हमारी कनाअत[1] हमारा सिंगार
भला कुछ भी लगता नही रगदार
वो शादी के जोडे जो थे तीन चार
लिया है सब उन पर से गोटा उतार
कि है सादगी खुद बहार !

बहन अब तो गहना भी बचता नही
सुनो तुम से तो कोई पर्दा नही
इक आवेजा[2] भी घर में रखता नही
किसी चोर-उचक्के का खटका नही
जरा दिल घडकता नही !

बहन बात मेरी अधूरी रही
ये अधेर है औरत और नौकरी
जभी तो जमाने की ये गत बनी
न देखा न ऐसा सुना था कभी
अभी उलटी गगा बही !

चलें देके मर्दों के हाथो में हाथ
अगर आज इसके तो कल उसके साथ
करें भोंडे फैशन में मेमो को मात
बस इक बच्चे के बाद पायें निजात
कि औलाद है दुख की रात !

---

१ सतोष २ कानो की बाली

वहन बात फिर बीच में कट गई
नवेली बहू लाजपतराय की
महीनों मुसर से झगड़ती रही
"कि घर में बढ़ी जाती है भुखमरी
मुझे करने दो नौकरी !"

बहन ठीक है पेट भरता नहीं
महीना गुज़ारे गुज़रता नहीं
मगर आदमी इससे मरता नहीं
कोई बेहयाई तो करता नहीं
कुएं में उतरता नहीं !

बहन तेरा मुंह क्यों है उतरा हुआ
लहू जैसे सारा निचोड़ा हुआ
तुझे बैठे-बैठे भला क्या हुआ
अरी फोड़ा निकली तू रिस्ता हुआ
कोई आज झगड़ा हुआ ?

बहन कोई दिन ऐसा कटता नहीं
कि जब आसमां सर पे फटता नहीं
घटाया बहुत खर्च घटता नहीं
इसी वास्ते झगड़ा हटता नहीं
घिरा अब्र[1] छटता नहीं !

बहन भूख का गर्म बाज़ार है
फ़िरंगी न अब उस का व्योपार है
सिरों पर टंगी फिर भी तलवार है
यक़ीनन कोई हम में बटमार है
हमीं में रियाकार[2] है !

---

१. बादल २. धोखेबाज़

वहन बात फिर बीच में कट गई
नवेली बहू लाजपतराय की
महीनों सुसर से झगड़ती रही
"कि घर में बढ़ी जाती है भुखमरी
मुझे करने दो नौकरी !"

वहन ठीक है पेट भरता नहीं
महीना गुज़ारे गुज़रता नहीं
मगर आदमी इससे मरता नहीं
कोई बेहयाई तो करता नहीं
कुएं में उतरता नहीं !

वहन तेरा मुंह क्यों है उतरा हुआ
लहू जैसे सारा निचोड़ा हुआ
तुझे बैठे-बैठे भला क्या हुआ
अरी फोड़ा निकली तू रिस्ता हुआ
कोई आज झगड़ा हुआ ?

वहन कोई दिन ऐसा कटता नहीं
कि जब आसमां सर पे फटता नहीं
घटाया बहुत खर्च घटता नहीं
इसी वास्ते झगड़ा हटता नहीं
घिरा अब्र[1] छटता नहीं !

वहन भूख का गर्म बाज़ार है
फ़िरंगी न अब उस का व्योपार है
सिरों पर टंगी फिर भी तलवार है
यक़ीनन कोई हम में बटमार है
हमीं में रियाकार[2] है !

---

१. बादल २. धोखेबाज़

इसी प्रकार की एक और घटना उसके एक और मित्र ने मुझसे बयान की। उसने बताया कि एक बार वह, 'अख्तर' उल ईमान और उसकी पत्नी के साथ कोई फ़िल्म देखने गया। 'अख्तर' टिकट लेने गया और वह और अख्तर की पत्नी गेट-कीपर से इस बारे में कहकर सिनेमा-हाल में चले गये। उनके भीतर जाने पर गेट-कीपर को याद आया कि साहब के हाथ में सिग्रेट है और सिनेमाहाल में 'धूम्रपान निषिद्ध' था। अतएव जब 'अख्तर' टिकट लेकर उसके पास पहुँचा तो गेट-कीपर ने उसे डपटकर कहा 'हे! देखो, तुम्हारा साहब और मेम साहब अन्दर चला गया है। साहब सिग्रेट पी रहा है। उससे कहना सिग्रेट बुझा दे।"

ये तो खैर इन दिनों की घटनायें हैं जब वह जीवन की छत्तीस 'वसन्त ऋतुएं' देख चुका है और काफी पैसा कमाता है। अपने बाल्यकाल में तो न जाने उसे क्या कुछ देखना और सहन करना पड़ा था। उसका जन्म तो (१२ नवम्बर १९१५ के दिन) ज़िला बिजनौर में एक खाते पीते घराने में हुआ लेकिन पालन-पोषण दिल्ली के एक अनाथालय में। ऐसे बच्चे जिनके माता पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान न दें, बालिग़ होकर प्रायः समाज के माथे का कलंक बन जाते हैं—चोर, ज्वारी, डाकू, क़ातिल! लेकिन इस अंधकारमय पहलू के बावजूद इस चित्र का एक उज्ज्वल पहलू भी है। हीनता तथा अभाव और विपत्तियों के आक्रमण ने उसे बिगाड़ने की बजाय सवार कर उर्दू का एक उल्लेखनीय शायर बना दिया।

ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज दिल्ली से, जहां उसकी फ़ीस माफ़ थी, उसने बी० ए० पास किया। एम० ए० करने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय और मेरठ कालेज की खाक छानी, लेकिन केवल खाक ही छानी। यह १९४४ ई० की बात है जब डब्ल्यू० जैड० अहमद की शालीमार पिक्चर्ज (पूना) में वह 'जोश' मलीहाबादी, 'साग़र' निज़ामी, कृष्णचन्द्र, भरत व्यास आदि साहित्यकारों के दल में जा सम्मिलित हुआ और फिल्मों के लिए कहानियां और संवाद लिखने लगा। शालीमार पिक्चर्ज के टूटने पर बम्बई चला आया और अब तक वहीं है। इस प्रसंग में यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि साहित्य-जगत् में तो वह शायर के रूप में प्रसिद्ध है लेकिन फिल्म-जगत् में प्रोड्यूसर उसे शायर की बजाय संवाद-लेखक समझते हैं और यह कि उसने आज तक कोई फिल्मी गीत नहीं लिखा।

'अख्तर' उल ईमान उर्दू शायरों के उस दल से सम्बन्ध रखता है जो प्रयोग तथा –

[illegible]

वम्बई लोकल ट्रेन के एक बुकिंग-ग्राफ़िस की खिड़की में झांकते हुए उसने कहा "वांदरा के दो फ़र्स्ट क्लास के टिकट !"

पांच का नोट उसके हाथ में था और पांच ही नहीं, उस समय वांदरा पहुँचने के लिए वह पचास रुपये तक खर्च कर सकता था, लेकिन बुकिंग-क्लर्क ने एक बार दोनों हाथों के पंजे और दूसरी वार एक हाथ की चार उंगलियां दिखाते हुए वड़े व्यंग्यात्मक स्वर में कहा "चौदह ग्राने होंगे मिस्टर।"

'मिस्टर' ने पांच का नोट उसकी ओर वढ़ाते हुए मुस्कराकर अपने साथी से कहा "लो, यह भी मुझे उजड्ड और गँवार समझ रहा है।"

"इस में इसका कोई क़ुसूर नहीं" उसके साथी ने मजा लेते हुए कहा, "तुम्हारी शक्ल ही ऐसी है। इस पर तुम लिवास भी ऐसा पहनते हो जिससे तुम्हारे हब्शी होने का शक होता है।"

'ग्रख्तर' उल-ईमान की शक्ल तो खैर इतनी बुरी नहीं, रंग जरूर वहुत काला है और लिवास भी वह कुछ ऐसा नहीं पहनता जिससे उसके हब्शी होने का संदेह हो, क्योंकि इसी लिवास, अर्थात् खद्दर के कुर्ते, पायजामे और चप्पल के साथ दक्षिणी भारत के पार्लियामेंट के मेम्बर दिल्ली में भारत का भाग्य विगाड़ने-सँवारने में योग देते हैं। लेकिन इसमें उसके साथी का भी कोई क़ुसूर न था क्योंकि 'ग्रख्तर' उल-ईमान पार्लियामेंट के मेम्वर की वजाय वेचारी उर्दू भाषा का शायर-मात्र था।

इसी प्रकार की एक और घटना उसके एक और मित्र ने मुझसे बयान की। उसने बताया कि एक बार वह, 'अख्तर' उल-ईमान और उसकी पत्नी के साथ कोई फ़िल्म देखने गया। 'अख्तर' टिकट लेने गया और वह और अख्तर की पत्नी गेट-कीपर से इस बारे मे कहकर सिनेमा-हाल मे चले गये। उनके भीतर जाने पर गेट-कीपर को याद आया कि साहब के हाथ मे सिग्रेट है और सिनेमाहाल मे 'धूम्रपान निषिद्ध' था। अतएव जब 'अख्तर' टिकट लेकर उसके पास पहुँचा तो गेट-कीपर ने उसे डपटकर कहा "हे! देखो, तुम्हारा साहब और मेम साहब अन्दर चला गया है। साहब सिग्रेट पी रहा है। उससे कहना सिग्रेट बुझा दे।"

ये तो खैर इन दिनो की घटनायें हैं जब वह जीवन की छत्तीस 'वसन्त ऋतुए' देख चुका है और काफ़ी पैसा कमाता है। अपने बाल्यकाल मे तो न जाने उसे क्या कुछ देखना और सहन करना पडा था। उसका जन्म तो (१२ नवम्बर १९१५ के दिन) जिला बिजनौर के एक खाते पीते घराने म हुआ लेकिन पालन-पोषण दिल्ली के एक अनाथालय मे। ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा की ओर कोई ध्यान न दें, बालिग़ होकर प्राय. समाज के माथे का कलक बन जाते हैं—चोर, ज्वारी, डाकू, क़ातिल! लेकिन इस अधकारमय पहलू के बावजूद इस चित्र का एक उज्ज्वल पहलू भी है। हीनता तथा अभाव और विपत्तियो के आक्रमण ने उसे बिगाडने की बजाय सवार कर उर्दू का एक उल्लेखनीय शायर बना दिया।

ऐंगलो-ऐरेबिक कालेज दिल्ली से, जहा उसकी फीस माफ थी, उसने बी० ए० पास किया। एम० ए० करने के लिए अलीगढ़ विश्वविद्यालय और मेरठ कालेज की खाक छानी, लेकिन केवल खाक ही छानी। यह १९४४ ई० की बात है जब डब्ल्यू० जैड० अहमद की शालीमार पिक्चर्ज (पूना) मे वह *'जोश' मलीहाबादी, 'साग़र' निज़ामी' कृष्णचन्द्र, भरत व्यास* आदि साहित्य-कारो के दल में जा सम्मिलित हुआ और फिल्मों के लिए कहानिया और सवाद लिखने लगा। शालीमार पिक्चर्ज के टूटने पर बम्बई चला आया और अब तक वहीं है। इस प्रसग मे यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि साहित्य-जगत् मे तो वह शायर के रूप मे प्रसिद्ध है लेकिन फिल्म-जगत् में प्रोड्यूसर उसे शायर की बजाय सवाद-लेखक समझते हैं और यह कि उसने आज तक कोई फिल्मी गीत नहीं लिखा।

'अख्तर' उल-ईमान उर्दू शायरो के उस दल से सम्बन्ध रखता है जो प्रयोग तथा

व्यंजना-वाद के अनुयायी हैं और उस चीज़ को जिसे 'प्रत्यक्ष कविता' (Direct Poatry) कहा जाता है, पसंद नहीं करते। शुरू में वह फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़' और मुईन अहसन 'जज़्बी' की शायरी से बहुत प्रभावित था और प्रतीकवादी और व्यक्तिवादी शायर 'मीराजी' को तो शायद वह अपना गुरु मानता था। लेकिन धीरे-धीरे उसकी शायरी अपना अलग रंग-रूप धारण करती गई और आज उसके समकालीन शायरों में उसकी भावाभिव्यक्ति सबसे अलग है। एक अत्यन्त घायल आवाज़, थकी-थकी शैली जो शायद उसके कटु अतीत की सूचक है, उसकी शायरी की विशेषता है। उसकी नज़्में बड़ी सँभली-सँभली और मन्द गति से चलती हैं। पाठक को साथ लेते हुए, रास्ते के काँटे-कंकरों से बचाते हुए अन्त में वे उसे उस मंज़िल पर ले जाती हैं, जहां पहुँचकर किसी प्रकार की थकान की बजाय पाठक स्वयं को हल्का-फुल्का महसूस करने लगता है—मानो एक भारी बोझ था, जो उसके कंधों से उतर गया हो। ज़रा उसकी एक नज़्म 'अंदोख़्ता' (संचित) देखिये :

कोहरा, नीला वसीतो-बुलंद[१] आसमां
इतना ख़ामोश, ठहरा हुआ, पुरसुकूं[२],
इस तरह देखता है मुझे जैसे मैं,
अपने गल्ले से बिछड़ी हुई भेड़ हूं,
तुम कहां हो मेरी रूह की रोशनी,
तुम तो कहती थीं ये दर्द पाइंदा[३] है,
तुम कहां हो, मेरे रास्तों के दिये,
बुझ गये फिर भी हर चीज़ ताबिंदा[४] है,
मैं मिलों-कारख़ानों के बोझल धुएं,
क़हबाख़ानों[५] का मग़मूम[६] ताबिंदगी,
काहनों[७] की मुहब्बत का फ़ुज़ला[८] जिसे,
रब्बे-मौजूदो-मादूम[९] ने बख़्श दी,
दायमी[१०] ज़िंदगी, मैं तुम्हारे लिए,

---

१. विशाल तथा उच्च २. शांत ३. स्थायी ४. प्रकाशमान ५. वेश्याघरों ६. उदास ७. यहूदियों की-सी शक्ल के सेवक (जादूगर) ८. फोक ९. भगवान जो है और अदृश्य है १०. स्थायी

अजनबी

तू है कच्ची कोंपल अब तक जिसके मौन में प्यार
और मैं गर्मी-सर्दी चखके डालों पर एक तनहा[1] पात
तू सुच्चा मोती मैं हीरा फिरा जो दसों हाथों-हाथ
तू ऊषा की पहली किरन है और मैं जैसे भीगी रात
तू तारों के नूर की धारा मैं गहरा नीला आकाश
मैं हूं जैसे टूटता नग़मा तू है जैसे शाखे-नबात[2]
तू है एक ऐसी शहनाई जिसकी धुन पर नाचे मौत
तेरी दुनिया जीत ही जीत है, मेरी दुनिया ? छोड़ ये बात

तू है एक पहेली जिसको जो बूझे सो जान से जाये
तू है ऐसी मिट्टी, जिससे लाखों फूल चढ़ें परवान
आ मैं तेरा अंग भी छू दूं छोड़ ये भेद और भाव की बात
मैंने वो सरहद[3] छू ली है जहां अमर हो जायें प्राण
ऐ आंखों में चुभने वाली जाने ! कौन वहां रह जाये
जीवन की इस दौड़ में पगली, हम दोनों हैं आज अनजान
लेकिन ऐ सपनों की दुनिया तू चाहे तो रोग मिटें
मैंने दुनिया देखी है तू मेरी बातें झूठ न जान
जीवन की इस दौड़ में नादां याद अगर कुछ रहता है
दो आंसू, एक दबी हंसी, दो रूहों की पहली पहचान

---

१. अकेला   २. मीठे फलों के वृक्ष की शाखा   ३. सीमा

जब और अब

कहा तो ये था कि मेरी चाहत मे गुदगुदी सी थी लोरियो की,
नई - नई कोपलो की सुर्खी नये शुगूफों की[1] ताजगी थी
कहा तो ये था कि मेरी चाहत थी गीत उठती जवानियो का,
कहा ये दिन है कि तेरी आवाज बन गई है सदा - ए - सहरा[2] ,
न जाने किस गोशा - ए - जमी से[3] रुकी-रुकी सी थमी-थमी सी,
घुटी-घुटी सी हजार पर्दों से आज छन-छन के आ रही है।

◇ ◇ ◇

अहदे-वफ़ा

यही शाख[4] तुम जिसके नीचे किसी के लिए चश्मे-नम हो,[5] यहां
अब से कुछ साल पहले,
मुझे एक छोटी सी बच्ची मिली थी, जिसे मैंने आग़ोश[6] में ले के
पूछा था बेटी !
यहा क्यो खड़ी रो रही हो ? मुझे अपने बोसीदा[7] आचल में फूलो
के गहने दिखाकर,
वो कहने लगी मेरा साथी, उधर, उसने उगली उठाकर बताया
उधर, उस तरफ ही
(जिधर ऊँचे महलो के गुंबद, मिलो की सियाह चिमनिया आसमा
की तरफ सिर उठाये खड़ी हैं)
ये कहकर गया है कि मैं सोने-चादी के गहने तेरे वास्ते लेने जाता
हू 'राबी' !

---

१. अधखिली कलियो की २. मरुस्थल की आवाज (जिसे सुनने वाला कोई नही होता) ३. धरती के कोने से ४. शाखा ५. आखों को सजल किये हुए हो ६. गोद ७. फटे-पुराने

आख़िरे-शब[1]

ढली रात तारे झपकने लगे आंख, शबनम के नासुफ़्ता[2] मोती,
सरे-शाख़े-गुल[3] अपने अंजाम से कांप उठे, ख्वाब पूरे-अधूरे,
उड़े जैसे ऊदे, रुपहले, सुनहरे, सियाह, सन्तुजे, भूरे, बादल,
तहे-आसमां[4] रुई के नरम गालों की मानिंद हर सिम्त[5] उड़ते—
फिरे, और नद्दाफ़ की ज़र्ब[6] को भूल कर पल गुज़रते-गुज़रते,
सरे-बालिशे-ख़ाक[7] सब ज़िद्दी बच्चों की मानिंद रोते मचलते,
चढ़ी नींद से चूर होकर वहीं सो रहे, याद की सब्ज़ परियां,
घने जंगलों, लालाज़ारों[8], पहाड़ों, भरी वादियों से गुज़रतीं,
कहीं क़ाफ़े-माज़ी[9] के नमनाक[10] ग़ारों में रूपोश होने लगी हैं।

मुबारक हो मैंने सुना है तुम फूल सी जान की मां बनी हो,
मुबारक ! सुना है तुम्हारा हर इक ज़ख़्म मुंदमिल हो गया है[11]।

○ ○ ○

१. रात्रि का अन्त २. अनबिंधा मोती ३. फूल की शाखा कि सिरे पर ४. आकाश के नीचे ५. ओर ६. धुनिये की चोट ७. धूल-मिट्टी के सिरहाने ८. फुलवाड़ियों ९. अतीत का क़ाफ़ (परियों के रहने का कल्पित स्थान) १०. सजल ११. अच्छा हो गया है

तब्दीली

इस भरे शहर मे कोई ऐसा नही,
जो मुझ राह चलते को पहचान ले,
और आवाज दे "ओ वे, ओ सर-फिरे",
दोनो इक दूसरे से लिपट कर वही,
गिर्दो-पेश[1] और माहौल[2] को भूलकर,
गालिया दें, हंसें, हाथापाई करें,
पास के पेड की छाव मे बैठकर,
घटो इक दूसरे की सुनें और कहे,
और इस नेक रूहो के बाजार मे,
मेरी ये क़ीमती बेवहा[3] जिन्दगी,
एक दिन के लिए अपना रुख मोड ले।

० ० ०

१. आस-पास २. वातावरण ३. बहुमूल्य

अनजान

तुम हो किस वन की फुलवारी अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो· मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?
चलता फिरता आ पहुंचा हूं राही हूं मतवाला हूं,
इन रंगों का जिनसे तुमने अपना रूप सजाया है,
इन रंगों का जिनसे तुमने अपना खेल रचाया है,
इन गीतों का जिनकी धुन पर नाच रहे हैं मेरे प्राण,
इन लहरों का जिनकी रौ में डूब गया है मेरा मान,
मेरा रोग मिटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?
मैं हूं ऐसा राही जिसने देस देस की आहों को,
ले लेकर परवान चढ़ाया और रसीले गीत बुने,
चुनते-चुनते आंसू जग के अपने दीप बुझा डाले,
मैं हूं वो दीवाना जिसने फूल लुटाये ख़ार[1] चुने,
मेरे गीतों और फूलों का रस भी सूख गया था आज,
मेरे दीप अंधेरा बनकर रोक रहे थे मेरे काज,
मेरी जोत जगाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझसे मेरा भेद न पूछो मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?
एक घड़ी एक पल भी सुख का वक़्त है इस राही को,
जीवन जिसका बीत गया हो कांटों पर चलते चलते,
सब कुछ पाया प्यार की ठंडी छांव जो पाई दुनिया में,
उसने जिसकी बीत गई हो बरसों से जलते-जलते,
मेरा दर्द बटाने वाली अता-पता कुछ देती जाओ,
मुझ से मेरा भेद न पूछो, मैं क्या जानूं मैं हूं कौन ?

---

१. कांटे

'सलाम' मछलीशहरी

शायद कि इन्किलाबे-ज़माना के साथ-साथ
मेरी तबाहियों में तुम्हारा भी हाथ है

आईना

"अगर कोई बैरंग लिफ़ाफ़ा आये तो समझ लीजिये, वह सलाम का है" (—मुमताज़ शीरीं)

"जो लड़की उसे खूबसूरत नज़र आती है वह फ़ौरन उस पर एक नज़्म लिख डालता है।" (—क़ुर्रतुल-ऐन हैदर)

"आप से मिलिये, आप सलाम हैं और आपकी शायरी वालैकुम-अस्सलाम!" (—फ़ुर्क़त काकोरवी)

"तुम घबराओ नहीं 'सलाम'! दुनिया उस वक्त तुम्हारी शायरी की क़दर करेगी जब उसका तर्जुमा अंग्रेज़ी में और अंग्रेज़ी से फ्रेंच में होगा और फिर फ्रेंच से मैं उसे उर्दू में तर्जुमा करूँगा" (—'मजाज़' लखनवी)

'सलाम' मछलीशहरी के व्यक्तित्व और उसकी शायरी के बारे में दर्जनों लतीफे मशहूर हैं और चूंकि पिछले पन्द्रह-सोलह वर्ष से उर्दू का कोई अच्छा-बुरा पत्र ऐसा प्रकाशित नहीं हुआ जिसमें सलाम की कोई नज़्म, ग़ज़ल, कहानी, ड्रामा, लेख या सम्पादक के नाम लम्बा-चौड़ा पत्र न छपा हो, इसलिए मेरा ख्याल है कि लोग-बाग उसकी रचनाओं पर विशेष ध्यान नहीं देते और सच बात तो यह है कि इस लेख के लिखने तक स्वयं मैंने भी उसकी बहुत कम चीज़ें पढ़ी थीं। इस पर उसके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विभिन्न मित्रों से जो कुछ मैंने सुना था वह भी कुछ अधिक 'सन्तोषजनक' नहीं था, अतएव मेरे मन में कभी 'सलाम' से मुलाक़ात करने की इच्छा उत्पन्न नहीं हुई—न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही शायर की हैसियत से।

लेकिन किसी के चाहने न चाहने से क्या होता है, 'सलाम' से मेरी मुलाक़ात हुई और जैसा कि कहा जाता है 'खूब' हुई। और फिर लखनऊ रेडियो से तब्दील होकर जब वह दिल्ली रेडियो मे आ गया और कुछ दिनो तक बिन बुलाये मेहमान की तरह मेरे ही यहाँ रहा तो आप अनुमान लगा सकते हैं कि मेरी हालत क्या हुई होगी ? मेरे मित्र मुझ पर तरस खाते कि मुझ पर भगवान् का कोप 'सलाम' मछलीशहरी के रूप मे प्रकट हुआ है जो न तो अच्छी बातें करता है, न अच्छे कपडे पहनता है। इस पर जब वह अपने *आत्म-विश्वास और स्वाभिमान की बातें करता है* तो और भी उपहासजनक हो जाता है । लेकिन मित्रो की बार-बार हिदायतो के बावजूद कि वह अपने शत्रु अधिक बनाता है और मित्र कम बल्कि नही के बराबर, और चूकि उसकी मित्रता या शत्रुता का सम्बन्ध सीधा उसके स्वार्थ से होता है, इसलिए मुझे उस समय के लिए तैयार रहना चाहिए जब मेरा नाम भी उसके शत्रुओ की सूची मे लिखा जाएगा। मैं अभी तक उससे घृणा नही कर सका हूँ और मेरा खयाल है कि घृणा उससे उसका कोई शत्रु भी नही करता। घृणा का नहीं, वह दया का पात्र है।

उर्दू शायरी का यह दयनीय शायर मछली शहर, ज़िला जौनपुर के एक निधन और अशिक्षित घराने मे पहली जुलाई १९२१ को पैदा हुआ। प्रत्यक्ष है कि उच्च शिक्षा के लिए धन की आवश्यकता थी और घर मे धन नही था। अत: वह उर्दू मे मिडिल और अंग्रेज़ी मे दसवीं श्रेणी से आगे न बढ सका और अपनी छोटी-सी आयु म ही अपना और अपने कुटुम्ब का पेट पालने के लिए उसे तरह-तरह के पापड बेलने पडे। एक-एक पैसे को वह दाँतो से पकडता रहा (*और अब तो उसके दाँत और भी मजबूत हो गये हैं*) और चूकि वर्तमान जीवन-व्यवस्था मे पैसे का महत्व बहुत ही अधिक है, पैसे का होना सब कुछ है और पैसे का न होना उदार से उदार मनुष्य को अधम बना देता है, इसलिए दीन-दरिद्र 'सलाम' के मस्तिष्क मे कई प्रकार की मनोवैज्ञानिक गाठें पडती गई। भरी महफ़िलो मे उस पर तरह-तरह के वाक्य कसे जाते हैं। हर समय पिता या पत्नी को रुपया भेजने, मालिक-मकान का किराया चुकाने या जिस होटल मे वह खाना खाता है, वहाँ चालीस के बजाये हर महीने उससे पैंतालीस रुपये ठगे जाने की बातें सुन-सुनकर मित्र-मुलाक़ाती उसे ऐसी नज़रो से देखने लगते हैं जैसे कहना चाहते हो—"तुम स्वयं ही बताओ 'सलाम' ! तुम्हे शायर समझा जाये या कनमैलिया ?" तो या तो उसके

मस्तिष्क में एक और गांठ पड़ जाती है या फिर वह उन लोगों पर बेतरह बरस पड़ता है। ऐसे समय में उसकी हालत और भी दयनीय हो जाती है क्योंकि अपने हीनता-भाव पर वह यह कहकर पर्दा डालने का निष्फल प्रयास करने लगता है कि नई पीढ़ी के लगभग सभी शायर उसके शिष्य या उससे प्रभावित हैं।

लेकिन इन सब बातों के अतिरिक्त मेरे विचार में 'सलाम' की सबसे बड़ी ट्रेजिडी यह है कि उसे बहुत छोटी आयु में ख्याति प्राप्ति हो गई। एक शायर की हैसियत से उसने उस समय आंख खोली जब उर्दू शायरी में रूप-संबन्धी नित नये प्रयोग किये जा रहे थे। नये ढंग में कही हुई प्रत्येक बात बेहद सराही जाती और कथा-वस्तु में चाहे कितना ही नैराश्य या अवसन्नता होती, रूप का नयापन उसे प्रथम श्रेणी की शायरी की पदवी दिला देता। उस काल में जिन उर्दू शायरों ने रूप सम्बन्धी असाधारण प्रयोग किये उनमें नून० मीम० 'राशिद' और 'मीराजी' का नाम सबसे पहले आता है और 'मीराजी' की शायरी तो एक बाक़ायदा स्कूल का दर्जा रखती है जिसकी विशेषता है प्रतीक-वाद तथा कामुकता।

'सलाम' मछलीशहरी इन दोनों शायरों का समकालीन है और उसने भी बहुत-से नये और सफल प्रयोग किये हैं। लेकिन जो चीज उसे 'मीराजी' से अलग करती है वह है विविध विषयों को पकड़ में लाना और जहां तक संभव हो प्रतीकवाद से पहलू बचाना। और जो चीज उसे 'राशिद' से अलग करती है वह है पंक्तियों को तराश-खराश करने की बजाय बड़ी तीव्रगति से उनका आप ही आप ढलते चले जाना।

यहां उस काल के रूप-सम्बन्धी प्रयोगों के गुणों-अवगुणों पर विस्तार से कुछ कहने की गुंजायश नहीं है, लेकिन इस वास्तविकता से किसी प्रकार इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन प्रयोगवादी शायरों ने आधुनिक उर्दू शायरी के विकास में काफ़ी बड़ा योग दिया है।

'सलाम' मछलीशहरी आज भी उसी तीव्रगति से साहित्य-रचना कर रहा है और उसकी इधर की कुछ चीजें काफ़ी पसन्द भी की गई हैं, लेकिन मेरे विचार में यदि वह जीवित है और रहेगा तो अपनी उन्हीं प्रयोग-काल की नज़्मों से।

ड्रॉइंग-रूम

ये सीनरी, ये ताजमहल, ये कृष्ण हैं और ये राधा हैं,
ये कोच है, ये पाईप है मेरा, ये नावल है, ये रिसाला है,
ये रेडियो है, ये कुमकुमे[1] हैं, ये मेज़ है, ये गुलदस्ता है,
ये गांधी हैं, टैगोर हैं ये, ये शाहनशाह, ये मलिका हैं।

हर चीज़ की बाबत पूछती है जाने कितनी मासूम है ये,
हां इस पर रात को सोने से मीठी-मीठी नींद आती है,
हां इसके दबाने से बिजली की रोशनी गुल हो जाती है,
समझी कि नहीं, ये कमरा है, हां मेरा ड्रॉइंग-रूम है ये।

इतनी जल्दी, मज़दूर औरत! आखिर ये गले में बाहें क्यों ?
ले देर हुई अब भाग भी जा, बस इतनी मुहब्बत काफ़ी है,
इस मुल्क के भूखे-प्यासों को पैसे की हाजत[2] काफी है,
इतनी हसमुख खामोशी, इतनी मानूस[3] निगाहें क्यों ?

मैं सोच रहा हूँ कुछ बैठा, पाइप के धूए के बादल में,
मैं छुप-सा गया हूँ इक नाज़ुक तखईल[4] के मैले आंचल में!

---

१. बिजली के बल्ब २. ज़रूरत ३. परिचित ४. कल्पना

सड़क बन रही है

मई के महीने का मानूस मन्ज़र
ग़रीबों के साथी ये कंकर ये पत्थर
वहां शहर से एक ही मील हटकर
—सड़क बन रही है।

ज़मीं पर कुदालों को बरसा रहे हैं
पसीने - पसीने हुए जा रहे हैं
मगर इस मुशक़्क़त[1] में भी गा रहे हैं
—सड़क बन रही है।

मुसीबत है, कोई मुसर्रत नहीं है
इन्हें सोचने की भी फ़ुर्सत नहीं है
जमादार को कुछ शिकायत नहीं है
—सड़क बन रही है।

जवां, नौजवां और ख़मीदा कमर[2] भी
फ़ुसुर्दा जवीं[3] भी बहिश्ते-नज़र भी
वहीं शामे-ग़म भी जमाले-सहर[4] भी
—सड़क बन रही है।

जमादार साये में बैठा हुआ है
किसी पर उसे कुछ इताब[5] आ गया है
किसी की तरफ़ देखकर हंस रहा है
—सड़क बन रही है।

---

१. परिश्रम २. झुकी हुई (बूढ़ी) ३. चिंतित माथा ४. सुबह का सौन्दर्य ५. क्रोध

......ज़रा बैठो
मैं दरिया के किनारे धान के खेतों से हो आऊं
यही मौसम है जब धरती से हम रूई उगाते हैं
तुम्हें तकलीफ़ तो होगी—
हमारे झोंपड़ों में चारपाई भी नहीं होती
नहीं—मैं रुक गई तो धान तक पानी न आयेगा
हमारे गांव में बरसात ही तो एक मौसम है
कि जब हम साल-भर के वास्ते कुछ काम करते हैं
—इधर बैठो,
पराई लड़कियों को इस तरह देखा नहीं करते,
—ये लिप-स्टिक,
ये पाउडर,
और ये स्कार्फ़ क्या होगा ?
मुझे खेतों में मज़दूरी से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती
मेरे होंटों पे घंटों बूंद पानी की नहीं पड़ती
मेरे चेहरे, मेरे बाज़ू पे लू और धूप रहती है
गले में सिर्फ़ पीतल का ये चन्दन-हार काफ़ी है
—बहुत ममनून हूं, लेकिन
हुज़ूर आप अपने तोहफ़े शहर की परियों में ले जायें

......हवा में दिलकशी है
और फ़ज़ा सहबा[1] लुटाती है
ज़रा पीपल की शाखों में
सुनहरे चांद की अंगड़ाइयां देखो
अभी बादल की रिमझिम में नहा-धोकर जो निकली है—!
ग़रीबी एक लानत है—

---
१. लाल मदिरा

तुम्हे परमात्मा ने हुस्न की देवी बनाया है
मेरा ये फर्ज है इस हुस्न को आरास्ता कर दूं
तुम्हारी मुस्कराहट से जरा वहशत बरसती है
मैं इसमे जगमगाती जिन्दगी की रूह भर दूगा
तुम्हारे होटो मे सूखी हुई पत्ती की लर्जिश[1] है
मैं इसमे इक अनोखा रग देकर जान लाऊगा
तुम इस वीराकदे[2] मे किस क़दर मजबूर लडकी हो
तुम्ह मेरी मुहब्बत, मेरी दौलत की जरूरत है
—चलो मैं भी तुम्हारे साथ उन खेतो में चलता हू
हवा मे दिलकशी है और फजा सहबा लुटाता है।
मैं दरिया की हसी लहरो मे इक सगीत ढूंढूंगा
तुम्हारे गाव की सखियो की टोली गीत गायेगी
सुनहरे धान के खेतो की दुनिया झूम जायेगी
नदी से दूर पीपल के किनारे, एक पनघट पर
वहा पाजेब की झकार मे नग़मे बरसते हैं
मैं ये सुनता रहा हू,
आज इनको देख भी लूगा—
अदीबो शायरो ने गाव को जन्नत बताया है—

फरेबे-मज़हबो-सरमायादारी और क्या होगा ?
कि जनता के दिलों को
आसुओ को,
उनकी आहो को,
दबाने के लिए—अपने तईं मसरूर रहने को
अदीबा, शायरो ने गाव को जन्नत बताया है

---

१ कम्पन २ निर्जन स्थान

खुद अपने रंगमहलों में—
किसानों और मज़दूरों की फ़रियादों से बचने को
शहनशाहों ने फ़नकारों से कुछ नग़मे ख़रीदे हैं
—तो फिर सरकार देहातों के नज़्ज़ारों को निकले हैं
मगर अब आलमे-मज़दूरो-दहक़ां[1] और ही कुछ है
ज़मीं पर खेत हैं, लेकिन यहां नग़मे नहीं होते।

० ० ०

१. मज़दूरों-किसानों की हालत।

'मजरूह' सुलतानपुरी

अब खुल के कहूँगा हर ग़मे-दिल 'मजरूह' नहीं वो वक्त कि जब
अश्कों में सुनाना था मुझको आहों में ग़ज़लख्वाँ होना था

परिचय

रूस की क्रांति से पहले क्रांतिकारी दल में एक टुकड़ी ऐसे युवकों की भी थी जो अतीत की प्रत्येक परम्परा को रूढ़ि और सामन्त-काल का जूठन कह-कर उसे समाप्त कर डालने पर उतारू थी और इस सम्बन्ध में कोई सैद्धान्तिक युक्ति भी सुनने को तैयार नहीं थी। अतएव जब वहाँ के महान लेखक तुर्गनेव ने अपने उपन्यासों में ऐसे संकीर्णतावादी (Nihilist) पात्रों को प्रस्तुत करना और उनका खेदजनक परिणाम दिखाना शुरू किया तो उन युवकों ने उसे रूढ़िवादी, प्रतिक्रियावादी बल्कि क्रान्ति-विरोधी तक कह डाला और माँग की कि उसकी समस्त पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया जाय क्योंकि उनके अध्ययन से क्रान्तिकारी युवकों के भटक जाने की सम्भावना है।

कुछ वर्ष पूर्व लगभग इसी प्रकार की एक माँग उर्दू के कुछ लेखकों और शायरों ने भी की। कहने को तो वे भी अपने आपको प्रगतिशील और क्रांतिकारी लेखक और शायर कहते थे लेकिन प्रगतिवाद के वास्तविक अर्थ समझे बिना और क्रांति से यांत्रिक लगाव के कारण उनसे कुछ ऐसी ही भूलें हुईं और चूंकि ऐसे लेखकों और शायरों की संख्या काफ़ी बड़ी थी इसलिए एक समय तक प्रगतिशील साहित्य में गतिरोध तथा शैथिल्य रहा। उन्होंने नई बातें ज़रूर कीं लेकिन अतीत से सम्बन्ध न होने के कारण वे बातें खोखले नारे बनकर रह गईं। यहीं तक बस नहीं, उन्होंने साहित्य के कुछ रूपों को मरते हुए सामन्ती समाज का अंग कहकर उनके उन्मूलन की भी माँग की।

बेचारी उर्दू 'ग़ज़ल' पर भी उनका यह नज़ला गिरा। ग़ज़ल को सामन्ती

समाज का अग और केवल 'आत्मीयता' (Subjectiveness) का चमत्कार कहते हुए वे इस तात्त्विक सिद्धात को भूल गये कि हर नई चीज पुरानी चीज की कोख से जन्म लेती है। भाषा तथा साहित्य और सस्कृति तथा सभ्यता से लकर शारीरिक वस्त्रो तक कोई चीज शून्य म आगे नही बढती बल्कि इसे अपने पिछले फैशन का सहारा लेना पडता है। और जहाँ तक आत्मीयता का सम्बन्ध है, आत्मीयता किसी चिकने घडे का नाम नही है बल्कि आत्मीयता भी पदार्थ-विषमता का ही प्रतिबिम्ब होती है। अपने मन की दुनिया मे रहना किसी पागल के लिए तो सम्भव है लेकिन कोई चेतन व्यक्ति बाह्य परिस्थितियो से प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। इन जोशीले लेकिन विमूढ युवको क बारे मे जो नयेपन के इतने रसिया थे और पुरानी परम्पराओ के इतने विरोधी, उर्दू के एक समालोचक ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि "उन्होने टब के गदले पानी के साथ-साथ टब और बच्चे को भी फेंक देने की ठान ली थी।"

सौभाग्यवश उर्दू के इन सकीर्णतावादी लेखकों और शायरो ने बहुत शीघ्र अपनी भूल स्वीकार कर ली और साहित्य, इतिहास और सामाजिक परिस्थितियो के अध्ययन तथा निरीक्षण के बाद अब वे बच्चे और टब को नही केवल टब के गदले पानी को फेंकने और उसकी जगह निर्मल और स्वच्छ पानी भरने के लिए प्रयत्नशील हैं।

यह ठीक है कि उर्दू शायरी का एक विशेष रूप होने के कारण ग़ज़ल की कुछ अपनी विशेष परम्पराएँ हैं और वह सामन्त-काल की उत्पत्ति है, लेकिन इसका मतलब यह नही है कि ग़ज़ल की परम्पराओ मे कोई परिवर्तन नही हुआ या हो नही सकता। विश्व, समाज और मानव-जीवन की प्रत्येक वस्तु की तरह ग़ज़ल की परम्पराओ मे भी बराबर परिवर्तन होता रहा है और 'मीर', 'सौदा', 'दर्द', 'मोमिन', 'ग़ालिब', 'हाली' और 'दाग़' के कलाम के क्रमश अध्ययन से हम इस परिवर्तन अथवा विकास का रग-रूप देख सकते हैं। जागीरदारी के पतन और इस कारण से ग़ज़ल की अधोगति के बाद बीसवी शताब्दी मे जिन शायरो ने ग़ज़ल की रूढ़िगत परम्पराओ म परिवर्तन लाने का भरसक प्रयत्न किया उनमे हसरत मोहानी, 'इक़बाल', 'जोश', 'जिगर', 'फ़िराक़', 'फ़ैज़' और 'जज़्बी' के नाम सबसे आगे हैं। इस प्रसग मे, 'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र मे नवागन्तुक है।

'मजरूह' सुलतानपुरी ग़ज़ल के क्षेत्र मे नवागन्तुक अवश्य है लेकिन असिद्धहस्त नही। उर्दू ग़ज़ल के शयनगृह म वह एक सिमटी-सिमटाई लजीली

दुल्हन की तरह नहीं बल्कि एक निश्चित तथा निडर दूल्हे की तरह दाखिल हुआ है और कुछ ऐसे स्वाभिमान से दाखिल हुआ है कि शयनगृह का मदमाता वातावरण चकाचौंध प्रकाश में परिवर्तित हो गया है।

'मजरूह' की शायरी में ग़ज़ल के बांकेपन के साथ-साथ ग़ज़ल का सुन्दर स्वरूप भी मौजूद है और चूंकि उसके सुलझे हुए राजनीतिक बोध ने सामाजिक विकास और गति के नियमों को समझ लिया है इसलिए वह सौंदर्य का चित्र प्रस्तुत कर रहा हो या प्रेम का दुख-दर्द, राजनीतिक समस्याओं का उल्लेख कर रह हो या समाज की गति का चित्रण, हमें उसके यहां हर जगह यथार्थवाद की झलक मिलती है और जब वह कहता है कि :

बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफ़ीना[1] मेरा डबो देते॥

या

मेरे काम आ गईं आखिरश[2] यही काविशें[3] यही गरदिशें।
बढ़ीं इस क़दर मेरी मंज़िलें कि क़दम के खार[4] निकल गये॥

या फिर

सर पे हवा-ए-ज़ुल्म चले सौ जतन के साथ।
अपनी कुलाह कज[5] है उसी बांकपन के साथ॥

तो केवल इतना ही नहीं कि 'मजरूह' हमें ग़ज़ल की प्राचीन परम्पराओं का उत्तराधिकारी नज़र आता है बल्कि उसके यहां हमें ऐतिहासिक सच्चाइयों की भी बड़ी सुन्दर झलक मिलती है। खिज़ां, बहार, चमन, साक़ी, महफ़िल, शराब, पैमाने इत्यादि शब्दों से, जो प्राचीन ग़ज़ल के 'पात्र' हैं, 'मजरूह' ने बड़ी कलाकौशलता से अपना काम निकाला है। इन शब्दों को पहनाया हुआ उसका नया अर्थ इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि शायरी के अन्य रूपों की तरह ग़ज़ल भी एक लिबास है जो विचारों के शरीर को ढांपता है और अपनी तराश-खराश और रंग-रूप के आधार पर किसी भी दूसरे लिबास से कम सुन्दर नहीं। 'मजरूह' ने आवश्यकतानुसार इस लिबास में कुछ नये शब्दों द्वारा और भी रंगीनी और खूबसूरती पैदा करने की कोशिश की है। अपनी इस कोशिश में कहीं-कहीं तो वह बहुत सफल रहा है। उदाहरणस्वरूप पूंजीवाद के प्रति अपनी

१. नाव २. आखिर ३. प्रयत्न ४. कांटे ५. टोपी टेढ़ी है।

घृणा प्रकट करते हुए उसके सबसे बड़े लक्षण 'बैंक' को वह इस प्रकार अपने शेर में बांधता है :

जबीं पर[1] ताजे-जर[2], पहलू में जिंदा[3], बैंक छाती पर।
उठेगा बेकफ़न कब ये जनाजा हम भी देखेंगे॥

और क्रान्ति का स्वागत करते हुए वह जमीन, हल, जौ के दाने, और कारखाने ऐसे शब्दों को, जो नज्मों में तो किसी तरह खप सकते हैं लेकिन ग़जल की नाजुक कमर इनका बोझ मुश्किल ही से उठा सकती है, बड़ी शान से यों प्रयोग में लाता है :

अब जमीं गायेगी हल के साज पर नग़मे।
वादियों में नाचेंगे हर तरफ़ तराने से॥
अहले-दिल उगायेंगे खाक से महो-अन्जुम[4]।
अब गुहर[5] सुबक[6] होगा जौ के एक दाने से॥
मनचले बुनेंगे अब रंगो-बू के पैराहन।
अब सँवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से॥

लेकिन कभी-कभी नये शब्दों के प्रयोग की धुन में और राजनीति-सम्बंधी सामयिक आन्दोलनों की धारा में बहकर वह कला की दृष्टि से बेतरह असफल भी रहता है और उस कोमल सम्बंध को भुला देता है जो राजनीतिक बोध और उसके कलात्मक वर्णन के बीच होना चाहिये। उसके ऐसे शेर गालीचे में टाट के पैवंद की तरह खटकते हैं। जरा एक शेर देखिये :

अमन का झंडा इस धरती पर किसने कहा लहराने न पाये ?
ये भी कोई हिटलर का है चेला, मार ले साथी जाने न पाये॥

इस प्रकार के शेर यद्यपि उसकी शायरी में आटे में नमक के बराबर हैं, फिर भी मेरे तुच्छ विचार में 'मजरूह' को इस प्रकार के वर्णन से पहलू बचाना चाहिये, क्योंकि यह भी कुछ उसी प्रकार की संकीर्णता है जिसने रूस के महान कलाकार तुर्गनेव को क्रान्ति-विरोधी ठहराया था और क्रान्ति-आंदोलन में योग देने की बजाय क्रान्ति को हानि पहुँचाई थी।

आधुनिक उर्दू ग़जल का यह क्रान्तिवादी शायर, जो अपने साधारण जीवन में बड़ा-सौंदर्य प्रेमी है, कभी भद्दी बात नहीं करता, कभी भद्दे वस्त्र नहीं पहनता, भद्दा खाना नहीं खाता, भद्दे मकान में नहीं रहता, भद्दी पुस्तकें नहीं

१. माथे पर २. पूंजी का ताज ३. जेलखाना ४. चान्द-सितारे ५ मोती ६. हल्का (कम कीमत का)

रखता और इसीलिए बहुत कम भद्दे शेर कहता है, ज़िला आज़मगढ़ के एक कस्बे निज़ामाबाद में पैदा हुआ और हकीम बनते-बनते संयोग से शायर बन गया। उसकी जीवनी उसकी अपनी ज़बान से सुनिये :

"मैं एक पुलिस कांस्टेबल का बेटा हूँ जो मुलाज़मत के दौरान में आज़मगढ़ यू० पी० में रहे और वहीं कस्बा निज़ामाबाद में १९१९ में मेरी पैदाइश हुई और मैंने अपनी इब्तिदाई तालीम (उर्दू, फ़ारसी, अर्बी) वहीं हासिल की। १९३० में मैं आज़मगढ़ से कस्बा टांडा ज़िला फ़ैज़ाबाद आया और वहाँ अर्बी दर्स निज़ामिया की तकमील (पूर्ति) करना चाही लेकिन कर नहीं सका और इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के अर्बी इम्तिहानों 'मौलवी', 'आलम', 'फ़ाज़ल' की फ़िक्र की कि इस ज़रिये से किसी स्कूल में टीचरी मिल सकेगी। लेकिन 'आलम' तक पढ़कर उसे भी छोड़ दिया और तिब (औषध-ज्ञान) की तकमील के लिए लखनऊ आया और यहाँ अर्बी ज़बान में तिब की तकमील की। यह ज़माना १९३८ का है। चन्द महीने तक मतब (औषधालय) किया लेकिन चूंकि सुलतानपुर में कुछ शेरो-अदब का भी चर्चा था इसलिए मुझे भी शेर कहने का शौक़ पैदा हुआ। १९४१ में 'जिगर' मुरादाबादी ने मुझे एक मुशायरे में सुना और अपने साथ लेकर कई मुशायरों में गये। इस दौरान में उन्होंने मुझे दो बातें बताईं। एक तो यह कि जैसे आदमी होंगे वैसे शायर होंगे। दूसरी बात यह कि अगर किसी का कोई अच्छा शेर सुनो तो कभी नक़ल न करो बल्कि जो गुज़रे (आत्मानुभव हो) वही कहो। बाकायदा इसलाह (संशोधन) मैंने किसी से नहीं ली। बिल्कुल शुरू की दो ग़ज़लों पर 'आसी' साहब मरहूम से इसलाह ली थी लेकिन वे ग़ज़लें मेरे हाफ़ज़े (मस्तिष्क) में बिल्कुल नहीं हैं। १९४५ में एक मुशायरे के सिलसिले में बम्बई आया और यहीं फ़िल्मों के गीत वग़ैरा लिखने लगा और अब तक यहीं हूँ। १९४७ से प्रगतिशील लेखक-संघ से वाबस्ता हूँ और रोज़-बरोज़ (अगरचे फ़ुर्सत कम मिलती है) इसी कोशिश में हूँ कि ग़ज़ल के पसमंज़र (पृष्ठ-भूमि) में मार्क्सिज़्म को रखकर समाजी, सियासी और इश्क़िया शायरी कर सकूं। चुनांचे कुछ लोग कहते हैं कि मैं अच्छा शायर हूँ और कुछ कहते हैं कि अच्छा आदमी हूँ। तुम मुझे दोनों एतबार से जानते हो, जो चाहो फ़ैसला कर लो।"

इस सम्बोधन का 'तुम' चूंकि 'मैं' हूँ इसलिए मेरा फ़ैसला यह है कि 'मजरूह' आदमी भी बहुत अच्छा है और शायर भी बड़ा प्रतिभाशाली।

ग़ज़लें और शेर

हम अपना मुदावा[1] ढूंढ चुके दरियाओं में सहराओं में।
तुम भी जिसे तस्की दे न सके वो दर्दे-जुनूं कम क्या होगा?
गो खाक नशेमन पर अब भी हैं गिरयाकुना[2] अरबाबे-चमन[3]।
जब बर्क़[4] तड़प कर टूटी थी उस वक्त का आलम क्या होगा?
जिस शोख-नजर की महफ़िल में आंसू भी तबस्सुम बन जाये।
वां शम्मा जलाई जायेगी परवाने का मातम क्या होगा?
अब अपनी नजर है बेमाने मफ़हूमे-तमन्ना[5] कुछ भी नहीं।
जब इश्क़ भी था कुछ चीं-ब-जबीं[6], अब हुस्न भी बरहम क्या होगा?
'मजरूह' मेरे अरमानों का अंजाम शिकस्ते-दिल[7] ही सही।
जो खोल के खुद पर हंस न सकूं इतना भी मुझे ग़म क्या होगा?

◇ ◇ ◇

बहाने और भी होते जो ज़िन्दगी के लिए।
हम एक बार तेरी आरज़ू भी खो देते॥
कहां वो शब कि तेरे गेसुओं के साये में।
खयाले-सुबह से फिर आस्तीं भिगो लेते॥
बचा लिया मुझे तूफ़ां की मौज ने वरना।
किनारे वाले सफ़ीना[8] मेरा डबो देते॥

---

१. इलाज २ रोते-धोते ३ चमन के मालिक ४. बिजली ५. आकांक्षा का अर्थ ६. माथे पर बल डाले हुए ७. दिल का टूटना ८ नौका

ये रुके-रुके से आंसू ये घुटी-घुटी-सी आहें।
यूंही कब तलक खुदाया ग़मे-ज़िन्दगी निबाहें ?
कहीं ज़ुल्मतों में[1] घिरकर है तलाशे-दस्ते-रहबर[2]।
कहीं जगमगा उठी हैं मेरे नक़्शे-पा से[3] राहें ॥
तेरे खानमां-ख़राबों[4] का चमन कोई, न सहरा।
ये जहां भी बैठ जायें वहीं इनकी बारगाहें[5] ॥
कभी जादा-ए-तलब[6] से जो फिरा हूं दिल-शिकस्ता।
तेरी आरज़ू ने हंसकर वहीं डाल दी हैं बाहें ॥

◇ ◇ ◇

तेरी चश्मे-शोख़ को क्या हुआ नहीं होती आज हरीफ़े-दिल[7]।
मेरे ज़ोमे-इश्क़[8] की ख़ैर हो ये किसे नज़र से गिरा दिया ॥
शबे-इन्तज़ार की कशमकश में न पूछ कैसे सहर हुई।
कभी इक चिराग़ जला दिया कभी इक चिराग़ बुझा दिया ॥

◇ ◇ ◇

किस किस को हाय तेरे तग़ाफ़ुल[9] का दूं जवाब।
अक्सर तो रह गया हूं झुकाकर नज़र को मैं ॥
अल्लाह रे वो आलमे-रुख़सत कि देर तक।
तकता रहा हूं यूंही तेरी रहगुज़र को मैं ॥

◇ ◇ ◇

मोहतसिब ! साक़ी की चश्मे-नीम-वा[10] को क्या करूं।
मैकदे का दर खुला गर्दिश में जाम आ ही गया ॥
इक सितमगर तू कि वजहे-सद-ख़राबी[11] तेरा दर्द।
इक बला-कश[12] मैं कि तेरा दर्द काम आ ही गया ॥

---

१. अंधेरों में २. पथ-प्रदर्शक के हाथों की तलाश ३. पदचिह्नों से ४. जिनका घर तूने बर्बाद कर रखा है ५. दरबार, कचहरी ६. प्रेम-मार्ग ७. दिल की शत्रु ८. इश्क़ का घमंड ९. बेरुख़ी १०. अधखुली आंख ११. सैकड़ों ख़राबियों का कारण १२. बेतहाशा पीने वाला

हम क़फ़स ! सय्याद की रस्मे-ज़बाँ-बन्दी की खैर ।
बेज़बानो को भी अन्दाज़े-कलाम [1] आ ही गया ।।
क्यो कहूगा मैं किसी से तेरे ग़म की दास्ता ।
और अगर ऐ दोस्त लब पर तेरा नाम आ ही गया !

◇ ◇ ◇

मुझे सहल हो गईं मंज़िलें वो हवा के रुख भी बदल गये ।
तेरा हाथ हाथ मे आ गया कि चिराग़ राह मे जल गये ।।
वो लजाये मेरे सवाल पर कि उठा सके न झुका के सर ।
उड़ी ज़ुल्फ चेहरे पे इस तरह कि शबो के राज़ [2] मचल गये ।।
यही बात जो न वो कर सके मेरे शेरो-नगमे मे आ गई ।
वही लब न मैं जिन्हे छू सका कदहे-शराब मे [3] ढल गये ।।
उन्हे कब के रास भी आ चुके तेरी बज़मे-नाज़ के हादसे ।
अब उठे कि तेरी नज़र फिरे जो गिरे थे गिर के सभल गये ।।
मेरे काम आ गईं आखिरश यही काविशे यही गरदिशे ।
बढ़ीं इस कदर मेरी मंज़िलें कि क़दम के खार निकल गये ।।

◇ ◇ ◇

आहे-जासोज़ [4] की महरूमी-ए-तासीर [5] न देख ।
हो ही जायेगी कोई जीने की तदबीर, न देख ।।
हादसे और भी गुज़रे तेरी उल्फत के सिवा ।
हां ! मुझे देख मुझे अब मेरी तस्वीर न देख ।।
ये ज़रा दूर पे मंज़िल ये उजाला ये सुकूं ।
ख्वाब को देख अभी ख्वाब की ताबीर न देख ।
देख ज़िंदां से परे रंगे-चमन, जोशे-बहार ।
रक्स करना है तो फिर पाव की ज़ंजीर न देख ।।
कुछ भी हो फिर भी दुखे दिल की सदा हू नादा ।
मेरी बातो को समझ तलखी-ए-तकरीर [6] न देख ।।

---

१. बोलने का ढग २. रातो के भेद ३. शराब के प्याले ४. जान तक को जला देने वाली आह ५. प्रभाव-हीनता ६. कटु स्वर

वही 'मजरूह' वही शायरे-आवारा-मिज़ाज ।
कौन उट्ठा है तेरी बज़्म से दिलगीर न देख ॥

◇ ◇ ◇

न मिट सकेंगी तनहाइयां मगर ऐ दोस्त ।
जो तू भी हो तो तबीयत ज़रा बहल जाये ॥

◇ ◇ ◇

सुनते हैं कि कांटे से गुल तक हैं राह में लाखों वीराने ।
कहता है मगर ये अज़्मे-जुनूं सहरा से गुलिस्तां दूर नहीं ॥

◇ ◇ ◇

अलग बैठे थे फिर भी आंख साक़ी की पड़ी हम पर ।
अगर है तिश्नगी[1] कामिल[2] तो पैमाने भी आयेंगे ॥

◇ ◇ ◇

हम तो पा-ए-जानां पर[3] कर भी आए इक सजदा ।
सोचती रही दुनिया कुफ़्र है कि ईमां[4] है ?

◇ ◇ ◇

सवाल उनका जवाब उनका सुकूत[5] उनका खिताब[6] उनका ।
हम उनकी अंजुमन में सर न करते खम तो क्या करते ?

◇ ◇ ◇

मैं अकेला ही चला था जानिबे-मंज़िल मगर ।
लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया ॥
मैं तो जब मानूं कि भर दे साग़रे-हर खासो-आम ।
यूं तो जो आया वही पीरे-मुग़ां[7] बनता गया ॥
जिस तरफ़ भी चल पड़े हम आबला-पायाने-शौक़[8] ।
खार से गुल और गुल से गुलिस्तां बनता गया ॥

---

१. प्यास (कामना) २. पूर्ण ३. महबूब के पैरों पर ४. ईमान ५. चुप्पी ६. सम्बोधन ७. शराब देने वाला बुज़ुर्ग साक़ी ८. जिज्ञासा (प्रेम) के मार्ग पर चलने वाला ऐसा राही जिसके पांव में छाले पड़ गये हों ।

शरहे-ग़म[1] तो मुख्तसर होती गई उसके हुजूर।
लफ्ज जो मुंह से न निकला दास्ता बनता गया॥

◇ ◇ ◇

आ निकल के मैदा मे दो-रुखी के खाने से।
काम चल नही सकता अब किसी बहाने से॥
सुनते हम तो क्या सुनते इक बुजुर्ग की बातें।
सुबह को इलाका[2] क्या शाम के फसाने से॥
वो लगा के सीने से फल्सफा तसव्वुफ[3] का।
शेख जो हसीनो मे फिरते हैं दिवाने से॥
खुदकशी ही रास आई देख बदनसीबो को।
खुद से भी गुरेजा[4] हैं भाग कर जमाने से॥
अब जुनूं पे वो साअत[5] आ पडी कि ऐ 'मजरूह'।
आज जख्मे-सर बेहतर दिल पे चोट खाने से॥

◇ ◇ ◇

'जस्त करता हूं[6] तो लड जाती है मंजिल मे नजर।
हाइले-राह कोई और भी दीवार सही॥
जिन्दगी की कद्र सीखी शुक्रिया तेग़े-सितम[7]।
हां हमी थे कल तलक जीने से उकताये हुए॥
सैरे-साहिल कर चुके ऐ मौजे-साहिल सर न मार।
तुझ से क्या बहलेंगे तूफानो के बहलाये हुए॥

◇ ◇ ◇

मैं हजार शक्ल बदल चुका चमने-जहां मे सुन ऐ सबा।
कि जो फूल है तेरे हाथ मे ये मेरा ही लख्ते-जिगर[8] न हो?
तेरे पा जमी पे रुके-रुके तेरा सर फलक[9] पे झुका-झुका॥
कोई तुझ से भी है अजीम-तर[10] यही वहम तुझको मगर न हो॥

---

१ ग़म की व्याख्या २ सम्बध ३. सूफीवाद ४ दूर (पहलू बचाये हुए) ५. समय (क्षण) ६ छलाग लगाता हूँ ७ जुल्म ढाने वाली तलवार ८. दिल का टुकड़ा ९. आकाश १०. अधिक महान

मेरे होंटों पे तड़पते हैं अभी तक शिकवे।
जाने उसकी वही नीची सी नजर है कि नहीं ?
दिल से मिलती तो है इक राह कहीं से आकर।
सोचता हूं ये तेरी राहगुज़र है कि नहीं ?

◇ ◇ ◇

दुआ देती हैं राहें आज तक मुझ आवला-पा को।
मेरे क़दमों की गुलज़ारी बियाबां से चमन तक है॥

'क़तील' शफ़ाई

•

ग़मे-ज़ात से मेरी ज़िन्दगी ग़मे-कायनात में ढल गई
किसी बज़्मे-नाज़ में खोके भी मुझे कायनात से प्यार है

परिचय

किसी शायर के शेर लिखने के ढंग आपने बहुत सुने होंगे। उदाहरणतः 'इक़बाल' के बारे में सुना होगा कि वे फ़र्शी हुक्का भरकर पलंग पर लेट जाते थे और अपने मुन्शी को शेर डिक्टेट कराते थे। 'जोश' मलीहाबादी सुबह-सवेरे लम्बी सैर को निकल जाते हैं और यों ताज़ादम होकर रचनात्मक काम करते हैं। नज़्म या ग़ज़ल लिखते समय बेतहाशा सिगरेट फूंकने, चाय की केतली गरम रखने और लिखने के साथ-साथ चाय की चुस्कियां लेने, यहां तक कि कुछ शायरों के सम्बन्ध में यह भी सुना होगा कि उनके दिमाग़ की गिरहें शराब के कई पैग पीने के बाद खुलना शुरू होती हैं। लेकिन यह अंदाज़ शायद ही आपने सुना हो कि कोई शायर शेर लिखने का मूड लाने के लिए सुबह चार बजे उठकर बदन पर तेल की खूब मालिश करता हो और फिर ताबड़-तोड़ डंड पेलने के बाद लिखने की मेज़ पर बैठता हो। यदि आपने नहीं सुना तो सूचनार्थ निवेदन है कि यह शायर 'क़तील' शफ़ाई है।

'क़तील' शफ़ाई के शेर कहने के इस अंदाज़ को और उसके कहे हुए शेरों को देखकर आश्चर्य होता है। कितनी अजीब बात है कि इस प्रकार लंगर-लंगोट कसकर लिखे गये शेरों में झरनों का सा संगीत और मधुरता, फूलों की-सी महक और निखार और उर्दू की परम्परागत शायरी के महबूब की कमर ऐसी लचक मिलती है। अर्थात् ऐसे वक्त में जब कि उनके कमरे से खम ठोंकने की आवाज़ आनी चाहिये, वहां के वातावरण में कुछ ऐसी गुनगुनाहट बसी होती है:

चौदहवीं रात के चांद की चाँदनी खेतियों पर हमेशा बिखरती रहे,
ऊँघते रहगुज़ारों पे फैले हुए हर उजाले की रगत निखरती रहे,
नर्म ख्वाबों की गगा बिफरती रहे !
या
रात भर बूँदियाँ रक्स करती रहीं, भीगी मौसीकियों ने सवेरा किया।
या फिर
सोई-सोई फज़ा आँख मलने लगी, सेली-सेली हवाओं के पर तुल गये।

और इसके साथ यदि आपको यह भी मालूम हो जाय कि 'कतील' शफ़ाई जाति का पठान है और एक समय तक गेंद-बल्ले, रैकट, लुगियाँ और कुल्ले बेचता रहा है, चुगीखाने मे मोहर्रिरी और बस की कम्पनियो में बुकिंग-क्लर्की करता फिरा है तो उसके शेरों के लोच-लचक को देखकर आप अवश्य कुछ देर के लिए सोचने पर विवश हो जायेंगे। इस पर यदि कभी आपको उसे देखने का अवसर मिल जाय और आपको यह न बताया जाय कि यह 'क़तील' है तो आज भी पहली नजर मे वह आपको शायर की अपेक्षा एक ऐसा क्लर्क नज़र आयेगा जिसकी सौ-सवासौ तनख्वाह के पीछे आधा दर्जन बच्चे और एक पत्नी जीने का सहारा ढूँढ रही हो। चेहरे-मोहरे से भी वह ऐसा ठेठ पजाबी नज़र आता है जो अभी-अभी लस्सी के बड़े-बड़े दो गिलास पी चुका हो, लेकिन डकार लेना अभी बाकी हो।

'कतील' शफाई का जन्म दिसम्बर १६१६ मे तहसील हरीपुर जिला हज़ारा (पाकिस्तान) मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा इस्लामियाँ मिडिल स्कूल रावलपिंडी मे प्राप्त की, उसके बाद गवर्नमेंट हाई स्कूल मे दाखिल हुआ, लेकिन पिता के देहात और कोई अभिभावक न होने के कारण पढ़ाई जारी न रह सकी। पिता की छोड़ी हुई पूँजी समाप्त होते ही उसे तरह-तरह के 'बिज़नेस' और नौकरियाँ करनी पड़ीं। साहित्य की ओर ध्यान इस तरह हुआ कि क्लासिकल साहित्य मे पिता की बहुत रुचि थी, उन्होंने नन्हे कतील को 'किस्सा चहार दरवेश' और किस्सा हातिमताई' आदि पुस्तकें पढ़ने को दीं और उन्हें पढ़ते-पढ़ते उसे स्वय कहानियाँ लिखने का शौक़ चर्राया। लेकिन बाद मे कहानियाँ लिखने की बजाय उसने केवल इस कारण से शायरी शुरू कर दी कि उसके कथनानुसार उसे कहानी को साफ करने और फिर कापी करने मे बहुत कष्ट होता था। शुरू-शुरू में उसने वही 'आहो, फरियादों' वाली परम्परागत ग़ज़लें कहीं (और मैं समझता हूँ आगे चलकर यही चीज़ उसके लिए हितकर सिद्ध हुई क्योंकि इस प्रकार वह शायरी की पुरानी परम्पराओं से अनभिज्ञ

नहीं रहा) और 'शफ़ा' कानपुरी नाम के एक शायर से इसलाह ली (इसी सम्बन्ध से वह स्वयं को 'शफ़ाई' लिखता है), लेकिन नौकरी के सिलसिले में रावलपिंडी आने पर उसने साहित्य की प्रगतिशील धारा के अनुसरण में काव्य-रूप के नये-नये प्रयोग किये और अहमद नदीम क़ासमी ऐसे शायर के मैत्रीपूर्ण परामर्शों द्वारा उसकी इस शायरी का प्रारम्भ हुआ जो आज हमारे सामने है।

लेकिन कोई परामर्श या संशोधन उस समय तक किसी शायर के लिए हितकर नहीं हो सकता जब तक कि स्वयं शायर के जीवन में कोई प्रेरक वस्तु न हो। लगन और क्षमता का अपना अलग स्थान है लेकिन इस दिशा की समस्त क्षमतायें मौलिक रूप से उस प्रेरणा ही के वशीभूत होती हैं, जिसे 'मनोवृत्तांत' का नाम दिया जा सकता है। अतएव १९४७ में जब वह लाहौर की एक फ़िल्म कम्पनी में गीतकार के रूप में काम कर रहा था, 'चन्द्रकान्ता' नाम की एक एक्सट्रा-गर्ल उसके जीवन में आई। और उसकी शायरी को नई शक्ति और नया रंग-रूप प्रदान कर गई। यद्यपि यह प्रेम केवल डेढ़ वर्ष तक चल सका और उसका परिणाम बिलकुल नाटकीय तथा शायर के लिए अत्यन्त दुखदायक सिद्ध हुआ लेकिन जहाँ तक उसकी शायरी का सम्बन्ध है स्वयं उसके अपने शब्दों में :

"यदि यह घटना न घटी होती तो शायद अब तक मैं वही परम्परागत ग़ज़लें लिख रहा होता जिनमें यथार्थ की अपेक्षा बनावट और फ़ैशन होता है। इस घटना ने मुझे यथार्थवाद के मार्ग पर डाल दिया और मैंने व्यक्तिगत घटना को सांसारिक रंग में ढालने का प्रयत्न किया। अतएव उसके बाद जो कुछ भी मैंने लिखा है वह कल्पित कम और वास्तविक अधिक है।"

यूं उस पर यह नया भेद खुला कि काव्य की परम्पराओं से पूरी जानकारी रखने और अपनी ओर से नये विचार तथा नये शब्द देने के साथ-साथ केवल वही शायरी अधिक अपील कर सकती है जिसमें शायर का व्यक्तित्व अर्थात् उसका 'मनो-वृत्तान्त' विद्यमान हो (जो अनिवार्य रूप से परिस्थितियों से जन्म लेता और बनता है।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि दूसरे महायुद्ध के बाद नई पीढ़ी के जो उर्दू शायर बड़ी तेज़ी से उभरे हैं उनमें 'क़तील' शफ़ाई का अपना एक विशेष रंग है। अब तक 'क़तील' की कविताओं के तीन संग्रह 'हरियाली', 'गजर' और 'जल-तरंग' प्रकाशित हो चुके हैं। अपने कविता-संग्रहों के नाम रखने में उसने किसी अतिशयोक्ति से काम नहीं लिया। ये नाम उसकी संगीतधर्मी शायरी के सूचक हैं।

हरजाई

खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
एक सरशार[1] जवां मैंने खड़ा पाया था।
तमतमाते हुए चेहरे पे सुलगती आंखें,
जैसे महके हुए गुलज़ार का ख्वाब आया था।

सर पे गागर के छलकने से जो तारे टूटे,
आसमां झांक रहा था मुझे हैरानी से।
टन से कंकर जो पड़ा मेरी हसीं गागर पर,
एक नग़मा सा उलझने लगा पेशानी से।

टूटती रात गये घर को पलटना मेरा,
इक लपकते हुए साये ने डराया था मुझे।
"तुम? अरी तुम?" (वही सरशार जवां था शायद),
"जी, यूं ही एक सहेली ने बुलाया था मुझे।"

खेत भरपूर जवानी को लुटा बैठे थे,
हर दराती पे तसलसुल[2] का जुनूं[3] तारी था।
जाने क्या देख रहा था वो मेरे चेहरे पर।
इस क़दर याद है उंगली से लहू जारी था।

---

१. आह्लादित २. निरन्तरता ३. उन्माद

कांच की चूड़ियाँ कल रात न हों हाथों में,
इतनी ऊंची तेरी पाजेब की झंकार न हो।
सरसराता हुआ मलबूस[1] न लहरा जाये,
किसी साये का गुमां[2] भी पसे-दीवार[3] न हो।

जब कभी चांद से पिघली हुई चांदी बरसी,
ऊंघती रात के शाने को झंझोड़ा हमने।
भूलकर भी कभी पलकें न झपकने पाईं,
इस क़दर नींद को आंखों से निचोड़ा हमने।

अब मगर चांदनी रात आके गुज़र जाती है,
पूछता ही नहीं कोई मेरी तनहाई को।
खेत से दूर दमकते हुए दोराहे पर,
ढूंढती हैं मेरी आंखें किसी हरजाई को।

◇ ◇ ◇

---

१. पहरावा २. सन्देह ३. दीवार के पीछे

सरताज

चिलमन से उभरती हैं खनकती हुई किरनें,
गाती है फ़ज़ा[1] में कोई ज़रपोश[2] कलाई,
मैं हल्का-ए-नग़मात में[3] हैरान खड़ा हूँ,
आंखों में समेटे हुए इक जश्ने-तलाई[4]।
ये जश्ने-मुसर्रत जिसे तख़लीक़ किया है[5],
आराम से बीते हुए पच्चास बरस ने,
ये क़ाफ़िला-ए-उम्र की रौंदी हुई मंज़िल,
पूजा है जिसे हिरस को आवाज़े-जरस ने[6]।
ये सास, ये सूखे हुए पत्तो का तरन्नुम[7],
ये जिस्म, ये टूटा हुआ पीतल का कटोरा,
ये रंग, ये तेज़ाब मे डूबी हुई चान्दी,
ये उम्र, ये भादो की हवाओ का हिलोरा।
कुछ भी न सही, ख़ून की बेकैफ़ हरारत[8],
दौलत ने इसे प्यार का हक़ दे तो दिया है,
गुलचीं की मचलती हुई मुश्ताक़[9] नज़र ने।
कोंपल को हिना[10] 'बार क़लक़[11]' दे तो दिया है।
रातो को हवस हो कि गजरदम[12] की हवायें,
गजरो को ये झकार झरोके मे रहेगी,
जब तक न हक़ायक़ से[13] हटा दे कोई पर्दा,
औरत यूं ही अख़लाक़ के धोखे मे रहेगी।

---

१ वातावरण २. सोना-भरी ३. संगीत के घेरे मे ४. सुनहला जश्न ५. रचा है ६. घड़ियाल की आवाज़ ने ७ संगीत ८. आनन्द-रहित गर्मी ९ उत्सुकतापूर्ण १० मेहदी ११. बेचैनी १२. प्रभात १३. वास्तविकताओ से

गीत

तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में वास नई
मेरे मन की आस पुरानी, तेरे तन की आस नई

तू बगिया की तितली बनकर फूल-फूल पर झूले
कली-कली से प्यार बढ़ाये, रुत-रुत के दुख भूले
इक समान है तुझको, सावन हो या सरसों फूले

तेरा जोवन एक पहेली, तेरी आस-निरास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में वास नई

रूप-रंग में तेरी मुंहफट चंचलता इतराये
अंग - अंग में सजी-सजाई सुन्दरता बल खाये
संग-संग अन-देखे सपनों की शोभा लहराये

जीवन के हर मोड़ पे तेरी आस रचाये रास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में वास नई

एक उड़ान से तू उकताये बार-बार पर तोले
एक चाल न भाये तुझको क़दम-क़दम पर डोले
इस पर भी मन मूरख मेरा तेरी ही जय बोले

मेरे साथ पुरानी छाया, काया तेरे पास नई
तेरा आंचल रंग-रंगीला, रंग-रंग में वास नई

ग़ज़लें

प्यार तुम्हारा भूल तो जाऊँ लेकिन प्यार तुम्हारा है।
ये इक मीठा ज़हर सही, ये ज़हर भी आज गवारा है॥
हाथ गये पतवार, सफीने[1] चलते-चलते चूर हुए।
ये है भवर तो ऐ मल्लाहो कितनी दूर किनारा है?
हम तो एक अनोखी ज़िद में अपनी जान पे खेल गये।
तुम्ही बताओ उजडी रातो! क्या जीता क्या हारा है?
ओ बेरहम मुसाफिर हँस कर साहिल की तौहीन न कर।
हमने अपनी नाव डबोकर तुझको पार उतारा है॥

० ० ०

तुम्हारी अंजुमन से उठ के दीवाने कहाँ जाते?
जो वाबस्ता हुए तुम से वो अफसाने कहा जाते?
निकल कर दैरो-काबा से[2] अगर मिलता न मैखाना।
तो ठुकराये हुए इन्सा खुदा जाने कहा जाते?
तुम्हारी बेरुखी ने लाज रख ली बादा-खाने की।
तुम आंखो से पिला देते तो पैमाने कहा जाते?
चलो अच्छा हुआ काम आ गई दीवानगी अपनी।
वगरना हम ज़माने भर को समझाने कहा जाते?
'क़तील' अपना मुक़द्दर[3] गम से बेगाना अगर होता।
तो फिर अपने-पराये हम से पहचाने कहा जाते?

---

१. नौकायें २ काबे और बुतखाने से ३. भाग्य

इक जाम खनकता जाम, कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ।
इक होशरुबा[1] इनआम, कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ॥
वो देख सितारों के मोती हर आन बिखरते जाते हैं ।
अफ़लाक पे[2] है कुहराम[3], कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ॥
गो देख चुका हूँ पहले भी नज़्ज़ारा दरियानोशी का ।
एक और सलाए-आम[4], कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ॥
ये वक़्त नहीं है बातों का पलकों के साये काम में ला ।
इलहाम[5] कोई इलहाम, कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ॥
मदहोशी में एहसास के ऊँचे ज़ीने से गिर जाने दे ।
इस वक़्त मुझे दे आम, कि साक़ी रात गुज़रने वाली है ॥
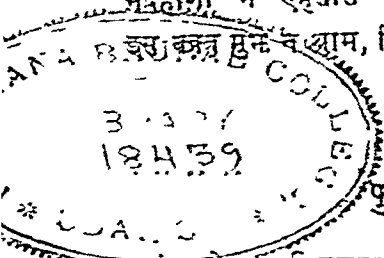
फुटकर शेर

भंवर से बच निकलना तो कोई मुश्किल नहीं लेकिन ।
सफ़ीने[6] ऐन दरिया के किनारे[7] डूब जाते हैं ॥

◇ ◇ ◇

न जाने कौन सी मंज़िल पे आ पहुंचा है प्यार अपना ।
न हमको एतबार उनका, न उनको एतबार अपना ॥

◇ ◇ ◇

एक ज़रा सा दिल है जिसको तोड़ के भी तुम जा सकते हो ।
ये सोने का तौक़[8] नहीं है ये चांदी की दीवार नहीं ॥
मल्लाहों ने साहिल-साहिल मौजों की तौहीन तो कर दी ।
लेकिन फिर भी कोई भंवर तक जाने को तैयार नहीं ॥

---

१. होश उड़ा देने वाला २. आकाश पर ३. शोर-वावेला ४. आम दावत ५. वह बात जो भगवान की ओर से मन में डाली जाए ६. नौकायें ७. ठीक किनारे पर ८. गले की जंजीर

◇ ◇ ◇